Published by
K. Mittra,
at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

# समर्पण

गवालियर-राजकीय

शिल्प-वाणिज्य विभाग के इन्स्पेक्टर-जनरल तथा

प्रयाग विश्व-विद्यालय के फ़ेलो

श्रीयुत राव बहादुर

**बाबू श्यामसुन्दर लाल साहिब**

बी० ए०, सी० आई० ई०

के

कर-कमलों में

सादर और सविनय

**समर्पित**

# लार्ड चेस्टरफ़ील्ड

फ़िलिप डारमर स्टानहोप, अर्ल आफ़ चेस्टरफ़ील्ड, का जन्म २२ सितम्बर सन् १६९४ ईसवी को लंडन नगर में हुआ। बाल्यावस्था में ही उसकी माता की मृत्यु हो गई थी इसलिए उसकी नानी ने उसका पालन-पोषण किया। उसने कैंब्रिज में शिक्षा पाई और वहाँ क़ानून तथा दर्शन-शास्त्र का अध्ययन किया परन्तु प्रसिद्ध वक्ताओं के व्याख्यान पढ़ने की ओर उसकी विशेष प्रवृत्ति थी।

वह थोड़ी ही उम्र में लास्टविथियल (Lostwithiel) की ओर से पार्लिमेंट का मेम्बर निर्वाचित हुआ था। उसकी सम्भाषण-शक्ति की प्रबलता देख उसके प्रतिद्वंद्वियों ने इसलिए उसे व्याख्यान देने से रुकवाना चाहा था कि उसकी अवस्था तब छोटी थी। सन् १७२६ ई० में वह चेस्टरफ़ील्ड का अर्ल हुआ। द्वितीय जार्ज के सिंहासनासीन होने से उसको राजकीय विषयों में योग देने का ख़ूब अवसर मिला। सन् १७२८ ई० में वह Ambassador Extraordinary बनाकर हालेंड भेजा गया। सन् १७३० ई० में वह Steward of the Household बनाया गया पर इस पद को उसने सन् १७३३ में छोड़ दिया।

लार्ड चेस्टरफ़ील्ड राबर्ट वालपोल का प्रतिद्वंद्वी था। वह केवल अद्वितीय वक्ता ही न था पर "क्राफ़्ट्स्मैन", "वर्ल्ड" इत्यादि समाचार-पत्रों में लेख भी लिखा करता था। बहुत राज-सम्मान प्राप्त करने के अनन्तर सन् १७४५ ई० में वह आयर्लैंड का लार्ड लेफ़्टिनेंट बनाया गया। वहाँ एक वर्ष के भीतर ही उसने अपनी सुनीति से बड़ी ख्याति प्राप्त की और सबका स्नेह-पात्र बन गया। सन् १७४६ ई० से सन् १७४८ ई० तक वह सेक्रेटरी आफ़् स्टेट रहा। स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण उसने इस पद का परित्याग कर दिया। इसके कुछ वर्ष बाद ही वह बहिरा हो गया और वक्तृता देने में असमर्थ हो गया किन्तु उसने अपनी लेखनी को विश्राम न दिया। उसने समाचार-पत्रों में बहुत से लेख भेजे जिनमें से वे दो भी थे जिनके कारण डाक्टर जान्सन ने उसको एक पत्र लिखा था जो आज तक प्रसिद्ध है।

डाक्टर जान्सन उस समय के महाविद्वानों में गिना जाता है। उसकी विद्वत्ता पर मुग्ध होकर चेस्टरफ़ील्ड ने उससे इतनी मित्रता बढ़ा ली कि वह सदा इसके घर आने-जाने लगा। पर बहुत आवागमन से उसकी क़दर चेस्टरफ़ील्ड के यहाँ इतनी घट गई कि कभी-कभी वह द्वार पर से लौटा दिया जाता और कभी घंटों अकेला बैठा रहता तो भी चेस्टरफ़ील्ड से मुलाक़ात न होती। इस अनादर से कुढ़कर उसने चेस्टरफ़ील्ड के यहाँ, जिसको कि वह अपना संरक्षक या सहायक समझता था, जाना छोड़ दिया। वर्षों परिश्रम करके और अकथनीय कष्ट

उठाकर उसने अपना प्रसिद्ध कोष तैयार किया। तब चेस्टर-फ़ील्ड ने उसकी प्रशंसा में वे दो लेख, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, "वर्ल्ड" नामक पत्र में इस आशय से छपवाये कि डाक्टर जान्सन अपना कोष मेरे समर्पण करे। उसका अभिप्राय समझकर डा० जान्सन ने, कि जिसने सात वर्ष से उसके घर जाना छोड़ दिया था, बड़ा मुँहतोड़ उत्तर दिया जिसका भावार्थ यह है—

"माई लार्ड,

"मुझे 'वर्ल्ड' के स्वामी से विदित हुआ है कि आपने उस समाचार-पत्र में दो पत्र छपवाये हैं जिनमें मेरे कोष की प्रशंसा की गई है तथा लोगों को उसके देखने का परामर्श दिया गया है। बड़े आदमियों से इतनी प्रशंसा होना बड़ी बात है; पर मैं, जिसको बड़े आदमियों से बहुत कम सम्मान मिला है, नहीं जानता कि किन शब्दों में आपको धन्यवाद दूँ।

"जब पहलेपहल आपसे मुलाक़ात हुई तब आपके थोड़े से उत्साह-वर्धक वाक्य सुनकर मैं अपने को बहुत कुछ समझने लग गया था और आपको अपना संरक्षक मानता था। मुझे आशा थी कि आपके हाथों मुझे वह सम्मान प्राप्त होगा जो संसार में बिरलों ही को होता है; पर मेरी आशा निराशा मात्र निकली। थोड़े दिन बाद ही आपके यहाँ आने-जाने का मेरा उत्साह मारा गया और मैंने आपकी तरफ़ जाना किसी तरह भी मुनासिब नहीं समझा। एक बार सर्वसाधारण में भी मैंने

आपकी इतनी प्रशंसा की कि जितनी मुझ गवाँर से हो सकती थी; लेकिन उस पर भी आपने मेरी कुछ परवा न की।

"आज सात वर्ष हो गये कि या तो मैं आपके द्वार से ही लौटा दिया जाता था या बाहरी बैठक में अकेला बैठा-बैठा चला आता था। उस समय भी मैं बड़े कष्ट से अपना कोष तैयार करने में लग रहा था जिसे कि अब बिना आपके किसी उत्साह-वर्धक वाक्य के, बिना आपकी सहायता के तथा बिना आपकी कृपादृष्टि के, मैंने अपने आपही पूरा कर पाया है और अब वह प्रकाशित होने को है। मुझे आपसे ऐसे व्यवहार की आशा नहीं थी क्योंकि इससे पहले मेरा किसी संरक्षक से पाला नहीं पड़ा था। क्या उसी को संरक्षक कहते हैं जो अगाध जल में डूबते हुए और अपने जीवन के लिए हाथ-पैर फटकारते हुए मनुष्य की ओर दृष्टिपात भी न करे और जब वह किनारे पर आ जाय तब उसे ख़ूब सहायता देने को तैयार हो जाय? आपने यदि मेरे परिश्रम पर कुछ पहले ध्यान दिया होता तो अवश्य आपकी कृपा होती लेकिन अब देर हो गई और अब मुझे कुछ आकांक्षा भी नहीं है। जब मुझे कुछ लाभ आपसे नहीं हुआ तब मैं आपकी प्रशंसा स्वीकार करके धन्यवाद देने (या समर्पण करने) में असमर्थ हूँ अर्थात् मैं नहीं चाहता कि लोग समझें कि मैंने यह काम एक संरक्षक की सहायता से पूरा कर पाया है जब कि ईश्वर की कृपा से केवल मैं ही (बिना किसी की सहायता के) उसको पूरा करने में समर्थ हुआ हूँ।

"मैंने जितना काम किया है उसमें किसी भी विद्या-प्रेमी ने मेरी कुछ भी सहायता नहीं की है, अतएव मैं किसी का कृतज्ञ नहीं। और मुझे कुछ परवा भी नहीं है क्योंकि आशा का वह स्वप्न, जिसमें अपनी स्थिति का मुझे बहुत गर्व था, अब दूर हो गया है।"

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

चेस्टरफ़ील्ड बड़ा विद्वान्, बुद्धिमान् तथा सदाचारी था। वह बड़ा भारी व्याख्याता, सुलेखक तथा राजनीति-विशारद था। वक्तृत्व में उसकी तुलना सिसरो से की जाती है। २४ मार्च सन् १७७३ ई० को उसकी जीवन-लीला समाप्त हुई।

# भूमिका

सांसारिक व्यवहार में कृतकार्य होने के लिए शिष्टाचार के समयोचित नियमों का जानना भी प्रत्येक मनुष्य को अत्यन्त आवश्यक है। उनकी अनभिज्ञता से बड़े-बड़े विद्वानों का भी सभ्य समाज में उपहास होता देखा गया है। हर एक समय में शिष्टाचार के नियम बदलते रहते हैं। यदि प्राचीन नियमों का अवलोकन किया जाय तो अब वे असङ्गत लगते हैं क्योंकि जन-समुदाय की रुचि में परिवर्तन होता रहता है। ऐसी ही अवस्था भिन्न-भिन्न देशों के आचार की भी है। एक देश का आचार अन्यदेशीयों को उपहासजनक प्रतीत होता है, परन्तु यदि कोई ऐसा विद्वान्, जिसे वास्तव में मनुष्य-प्रकृति का पूर्ण अनुभव हो गया हो, शिष्टाचार पर अपने सामान्य विचार लिखे तो हर एक देश और समय में उनसे बहुत कुछ लाभ हो सकता है क्योंकि सम्पूर्ण संसार में शिष्टाचार का मूल-तत्त्व तो एक ही है। आत्म-गौरव के साथ ही साथ दूसरों के मनोभाव पर उचित ध्यान रखने को ही शिष्टाचार कहते हैं। अँगरेज़ी भाषा में शिष्टाचार को 'एटी-केट' ( etiquette ) कहते हैं। 'एटीकेट' का अर्थ पहले केवल उस टिकट का था जो किसी बैग पर उसके अन्तर्गत वस्तु का नाम लिखकर लगा दिया जाता था। जैसे उससे

बैग की वस्तु जान ली जाती थी उसी भाँति मनुष्य के आचार से ही उसकी योग्यता और शिक्षा का बोध होता है इसलिए 'एटीकेट' शब्द शिष्टाचार-वाचक हो गया है।

शिष्टाचार के नियमों का पालन करने से अकथनीय लाभ होता है। राज-सभा में तो उनका पालन किये बिना काम ही नहीं चल सकता। हर एक मनुष्य का आचार केवल उसकी भावना से शिष्ट हो सकता है। बहुधा देखा गया है कि मनुष्य जितने उच्च पद पर होते हैं उतना ही अधिक शिष्टाचार पर ध्यान देते हैं। जो यह सोच लेते हैं कि उनका आचार शिष्ट-जनोचित न होने पर भी केवल शिक्षा के कारण सभ्य-समाज में उनका आदर होगा वे बड़ी भारी भूल करते हैं।

अँगरेज़ी भाषा में शिष्टाचार पर अनेक पुस्तकें हैं लेकिन इस विषय पर लार्ड चेस्टरफ़ील्ड ने जो पत्र अपने पुत्र को लिखे थे वे अधिक लोकप्रिय हैं। लार्ड चेस्टरफ़ील्ड ने अपने पुत्र को उन सब विषयों में पारङ्गत करना चाहा था जिनका जानना सभ्य-समाज के एक व्यक्ति को अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए उसने कोई विशेष पुस्तक न लिखकर उसे केवल कुछ पत्र लिखे थे जिसमें उनके द्वारा लौकिक व्यवहार के आवश्यक विषयों का महत्त्व बातोंबात उसके चित्त पर अङ्कित हो जाय। उसके पत्र शिष्टाचार के नियम और सांसारिक ज्ञान से परिपूर्ण हैं और उनके पढ़ने से पैतृक उत्कण्ठा पूर्ण करने के स्वाभाविक साधन और रहस्य प्रकट होते हैं। उन्हीं पत्रों के

भाव लेकर लार्ड चेस्टरफ़ील्ड का पुत्रोपदेश ( Lord Chesterfield's Advice to his Son ) नामक पुस्तक का निर्माण हुआ है।

यह उसका स्वतन्त्र अनुवाद है। उसके किसी-किसी विषय का सम्बन्ध पाश्चात्य देशों की ही सामाजिक अवस्था और शिष्टाचार से था तथा कोई-कोई स्थल ऐसे थे जो यहाँ के मनुष्यों के उपयोगी नहीं थे; इसलिए अनुवाद में उनका समावेश नहीं किया गया। कई एक आवश्यक विषयों को इस देश की समाज-व्यवस्था के अनुकूल बनाने के लिए कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन भी करना पड़ा है परन्तु ऐसे स्थल बहुत कम हैं। ऐतिहासिक नामों का संक्षिप्त वृत्तान्त, जहाँ तक उपयोगी समझा गया, पाद-टीका में लिख दिया गया है। मूल पुस्तक के साथ प्रकाशक ने Colton's Lacon का कुछ भाग भी लगा दिया है इसलिए उसका अनुवाद भी इसमें सन्निविष्ट कर दिया है। यदि इस पुस्तक के पढ़ने से सर्व-साधारण को कुछ भी लाभ हुआ तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

आगरा<br>२५। १२। १९११

ऋषीश्वरनाथ भट्ट

# विषय-सूची

| विषय | | | पृष्ठ-संख्या |
|---|---|---|---|

# कर्त्तव्य-शिक्षा

अर्थात्

# लार्ड चेस्टरफ़ील्ड का पुत्रोपदेश

## असावधान मनुष्य




सावधान मनुष्य प्राय: बड़ा मन्द-बुद्धि अथवा आडम्बर-शील होता है। उसके साथियों को उससे बड़ी अरुचि होती है। वह सभ्यता की साधारण रीति भली भाँति नहीं जानता। वह सीधी तरह तो बात-चीत करता नहीं, परन्तु जो बात हो रही हो उसके बीच में बार-बार अपनी ही कुछ बात ऐसे ले बैठता है जैसे कोई स्वप्न में चौंक उठता हो। देखने में तो ऐसा जँचता है कि वह विचार में डूब रहा है परन्तु सम्भव है कि वह लेशमात्र भी विचार न कर रहा हो। वह देखने पर अपने अन्तरङ्ग मित्र को या तो पहचानता नहीं, और जो पहचान भी ले तो उसके साथ इस ढंग से बात-चीत

करता है मानो किसी दूसरे काम से फँस रहा है। वह अपनी नित्य के बर्ताव में आनेवाली चीज़ों को ज़रा भी सँभालकर नहीं रख सकता। टोपी एक कमरे में, छड़ी दूसरे में, और जो तसमे न बँधे हों तो जूतों को तीसरे में छोड़ जाना उसके लिए कोई बड़ी बात नहीं। यह इस बात का बड़ा भारी प्रमाण है कि या तो उसका मन इतना निर्बल है कि वह एक समय में एक से अधिक विचार नहीं कर सकता, या इतना आडम्बरशील है कि वह किसी बड़े आवश्यक विचार में मग्न देख पड़ता है। सृष्टि के आदि से लेकर आज तक सर आइज़क न्यूटन * ( Sir Isaac Newton ) तथा मिस्टर लाक †( Mr. Locke ) प्रभृति अनेक

---

* सर आइज़क न्यूटन बड़ा प्रसिद्ध गणितज्ञ और दार्शनिक था। २५ दिसम्बर सन् १६४२ ई० को लिंकनशायर में उसका जन्म हुआ। वह एक बार अपनी वाटिका में बैठा था। उस समय वृक्ष से एक सेब गिरा। वह उसके गिरने के कारण की खोज करने लगा और इस परिणाम पर पहुँचा कि पृथ्वी हर एक वस्तु का अपनी ओर आकर्षण करती है। २० मार्च सन् १७२७ ई० को उसकी मृत्यु हुई।

† मिस्टर लाक एक प्रख्यात तत्त्ववेत्ता था। वह सन् १६३२ ई० में रिङ्गटन नगर में उत्पन्न हुआ। उसने एम० ए० की उपाधि लेने के अनन्तर वैद्यक का अभ्यास किया। सन् १६६० ई० में उसने अपना "मनुष्य-बुद्धि पर एक प्रबन्ध" (Essay on Human Understanding) नामक ग्रन्थ छपवाया जिससे यूरोप भर में उसकी बड़ी ख्याति हुई। इसके बाद उसने और भी कई ग्रन्थ लिखे। सन् १७०४ ई० में उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई।

अनुसन्धानशील महापुरुषों में अन्य-मनस्कता का होना आवश्यक कहा जा सकता है, क्योंकि यदि वे लोग केवल एक मुख्य विषय में एकाग्र होकर दत्त-चित्त न होते तो उनको सफलता प्राप्त न हुई होती, परन्तु स्वतन्त्र मनुष्य का अन्य-मनस्क होना ठीक नहीं।

चाहे जिस विषय की बात हो रही हो, जो मनुष्य उस पर अपना ध्यान नहीं दे सकता वह किसी अंश में भी काम अथवा बात-चीत करने के योग्य नहीं है। जब ध्यान न देने-वाले मनुष्य की ओर मैं देखता हूँ तब उससे दूर रहना ही मुझे अच्छा लगता है। मैं असावधानता और असभ्यता सहन नहीं कर सकता, इससे वहाँ ठहरना मुझे बहुधा भारी हो जाता है।

असावधान मनुष्य के पास रहने की अपेक्षा कुछ मुरदे के पास रहना मुझे अच्छा लगता है, क्योंकि मुरदे से चाहे कोई आनन्द भले न मिले पर इतना तो है कि वह मेरा अपमान नहीं करता। असावधान मनुष्य तो गुप्त रीति से स्पष्टतया जताता है कि मैं उसके ध्यान के योग्य नहीं हूँ। इसके अतिरिक्त असावधान मनुष्य कभी अपने मित्रों के शील-स्वभाव, व्यवहार तथा आचरण आदि की जाँच नहीं कर सकता। जो उत्तम पुरुषों की मण्डली में कदाचित् उसका प्रवेश हो जाय तो जन्म भर उनकी सङ्गति में रहकर भी वह सुधर नहीं सकता। बहरे और असावधान मनुष्य दोनों से बात-चीत करने में कोई

भेद नहीं। हमें स्पष्ट मालूम पड़ता है कि न वह हमारी बात सुनता है, न गिनता है और न समझता है। इससे उसके साथ बात-चीत करना वास्तव में बड़ी भारी भूल है।

## ध्यान

जिस प्रसंग की बात हो रही हो उस पर कितने ही मनुष्य पूरा ध्यान नहीं दे सकते या देते ही नहीं; और उस समय दूसरे विषय को अपने विचार से किसी भाँति भी दूर नहीं रख सकते! ऐसे मनुष्य काम करने अथवा सुख भोगने के योग्य नहीं होते। किसी सभा, समाज या भोज में जाकर यदि कोई मनुष्य अपने मन में रेखागणित का सिद्धांत सिद्ध करता हो तो वह किस काम का? वह समाज में बिलकुल नहीं जँचता। ऐसे ही यदि कोई मनुष्य एकान्त में बैठकर कठिन प्रश्न हल कर रहा हो उस समय वह नाच-रङ्ग का विचार करे तो मेरी सम्मति में वह कभी गणित में कुशल न होगा।

जो एक समय में केवल एक काम करेगा उसे दिन भर में प्रत्येक काम करने को पूरा समय मिलेगा, परन्तु जो एक ही समय में दो काम ले बैठेगा उसके काम का पूरे वर्ष में भी पूरा न पड़ेगा।

उतावली, चिल्लाहट और घबराहट जैसे कातर और छछोरे लोगों के यथार्थ चिह्न हैं वैसे ही निश्चल और एकाग्र ध्यान उत्तम बुद्धि का लक्षण है।

ध्यान दिये बिना वास्तव में कुछ नहीं होता। जो किसी कार्य में चित्त को एक ओर न रख सके वह सचमुच विचार-शक्ति-हीन है और इससे वह मूर्ख अथवा विक्षिप्त गिना जाता है। तुम्हें प्रत्येक वस्तु को देख लेना चाहिए, पर इतनी फुर्ती से कि सभा में बैठे हुए सब लोगों की चेष्टा, मुख के भाव और शब्द का तुमको एक साथ ज्ञान तो हो जाय किन्तु किसी को यह विदित न होने पावे कि तुम उनकी ओर टकटकी लगाये हुए भीतरी परताल कर रहे हो। ऐसी फुर्तीली और भीतरी देख-भाल जीवन में बड़े काम की होती है और ऐसा अभ्यास साधन से पड़ जाता है। परन्तु जो प्रसङ्ग चल रहा हो उस पर ध्यान न रखना या विचारहीन होना, जिसे असावधानपन कहते हैं, मनुष्य को उलटा ऐसा मूर्ख अथवा विक्षिप्त के समान बना देता है कि अगर मुझसे पूछो तो इनमें और उसमें सचमुच कोई अन्तर नहीं रह जाता। मूर्ख में पहले ही से विचार-शक्ति नहीं होती, विक्षिप्त मनुष्य में से वह जाती रहती है और असाव-धान मनुष्य में, जिस समय वह असावधान हो, नहीं रहती।

सारांश यह है कि संसार का यथार्थ ज्ञान बिना पूरा ध्यान दिये हुए कभी नहीं हो सकता। बहुत से वृद्ध मनुष्यों को इस संसार में अनेक वर्ष पर्यन्त रहने पर भी अपनी चञ्चलता और अन्यमनस्कता के कारण संसार का ज्ञान प्राप्त न हो सका। इससे वे वृद्ध होने पर भी केवल बालक-समान हैं। कितने ही बाहरी व्यवहार जिनके अनुसार सब लोग चलते हैं और

कितनी ही युक्तियाँ जिनके सीखने का हर एक यत्न करता है, ऐसी हैं कि उनसे किसी अंश में उनका असली बर्ताव छिपा रहता है, उनका बाहरी आचार साधारण रीति से दूसरों से मिल जाता है परन्तु ध्यान देकर देखनेवाले बुद्धिमान् और चतुर मनुष्य उनकी सच्ची प्रकृति जान लेते हैं।

इसके अतिरिक्त और कई एक विषयों में भी साधारण ध्यान रखना आवश्यक है। जिसको ऐसा ध्यान नहीं रहता उसे मनुष्य आत्म-गौरव तथा स्व-प्रीति के अयोग्य समझते हैं, जिनकी उत्पत्ति प्रत्येक मनुष्य के स्वभाव के साथ होती है। क्योंकि जिन मनुष्यों का हम सत्कार करते हैं उन्हें हम कितना चाहते हैं और कैसा गिनते हैं इस बात का पता भी इससे ही लगता है। यदि तुम किसी को भोजन के लिए बुलाओ तो तुमको चाहिए कि उसकी रुचि के अनुसार पदार्थ बनवाकर उसको खिलाओ और उस पर इस बात को बातों-बात विदित कर दो कि अमुक द्वारा तुमको प्रिय पदार्थ की सूचना हो गई थी इसलिए तुम उसको बनवा सके। दूसरी अमूल्य सेवा की अपेक्षा ऐसे बर्ताव से उसके चित्त को बड़ा आनन्द और गौरव होगा कि मेरा इतना सम्मान हुआ। प्रायः मनुष्यों को कितनी ही वस्तुएँ पसन्द नहीं होतीं, जो तुम उनकी बिना इच्छा के अथवा अनजान से उन्हें परसवा दो तो वे अपने को अपमानित और तिरस्कृत समझेंगे। यह बात उन्हें सदा याद रहेगी। ऐसी छोटी-छोटी बातों के ऊपर तुम जितना ध्यान

देोगे उतनी ही प्रत्येक मनुष्य के मन में यह भावना होगी कि "यह मेरे ऊपर इतना ध्यान देता है" और इससे उसका मन तुम्हारी ओर और भी अधिक आकर्षित होगा। तुम अपने ही मन में विचार करो कि दूसरा मनुष्य जो तुम्हारा इस भाँति छोटी-छोटी बातों में मान करे तो स्वप्रीति तथा अभिमान के कारण तुम कितने अधिक प्रफुल्लित होगे। ये स्वाभिमान और प्रीति हर एक जीवित मनुष्य में होती हैं। पीछे तुम देखोगे कि तुम्हारा मन उस मनुष्य की ओर कितना खिंच जाता है और उसी के कहने और करने के अनुसार ही तुम्हारी रुचि भी हो जायगी। इसी भाँति का जो तुम सब मनुष्यों से बर्ताव करो तो तुम्हें वैसा ही लाभ हो।

## अनेक प्रकार की असभ्यता

बहुत से योग्य तथा बुद्धिमान् मनुष्यों में कुचेष्टा करने की टेव और बुरी आदत होती है और उनका व्यवहार असभ्य होता है। इससे उनसे घृणा तथा वैराग्य पैदा होते हैं जो न तो दूसरे अमूल्य गुणों से दूर हो सकते, न ढके जा सकते हैं। असभ्यता का दुर्गुण दो बातों से पैदा होता है—अच्छी सङ्गति न रखने से अथवा उस पर ध्यान न देने से।

जब कोई असभ्य मनुष्य भद्र जनों की मण्डली में जाय तो बहुत सम्भव है कि उसकी धोती पैरों में उलझ जाय और वह गिर पड़े; या कम से कम ठोकर तो खाय। इस घटना के

अनन्तर वह जाकर ऐसे स्थान में बैठे कि जहाँ उसे नहीं बैठना चाहिए। बैठते ही उसकी टोपी गिर पड़े और फिर उसे उठाने में उसकी छड़ी गिर जाय। छड़ी उठाने में उसकी टोपी फिर दूसरी बार गिर पड़े जिससे कि एक घड़ी से पहले वह स्वस्थ होकर न बैठ सके। यदि वह दूध पिये तो उसका मुख जल जाय, कटोरा गिर पड़े और धोती बिगड़ जाय। पीने के समय वह अवश्य खाँसे जिसमें पास बैठनेवालों पर छींटे पड़ें। इन सब बातों के अतिरिक्त उसके हाथ-पैर की चाल तथा चेष्टायें अद्भुत होती हैं, जैसे कि मुँह बनाना, नाक में अँगुली गेरना या रूमाल में नाक साफ़ कर उसे देखना। इन कारणों से मण्डली के सब लोग उससे विरक्त हो जाते हैं। जब हाथों में कुछ नहीं होता तब उनका ख़ाली होना उसे नहीं सुहाता और वह नहीं समझता कि उन्हें कहाँ धरे। उसके ख़ाली हाथ छाती और कमर के बीच में सदा चलते ही दीखते हैं। वह अपने कपड़े नहीं पहनता और संक्षेपत: और सभ्य मनुष्यों के समान कुछ नहीं करता। यह तो ठीक है कि ऐसी बातें कुछ हानिकारक नहीं पर ये समाज में अरुचिकर तथा हास्यजनक मालूम होती हैं। जो पुरुष अपने साथियों को प्रसन्न करना चाहे उसे इन्हें अवश्य छोड़ना चाहिए।

कितने काम करने चाहिएँ इसका विचार करने से ही तुम सहज में जान जाओगे कि तुम्हें किस ढंग से चलना चाहिए। सभ्य अनुभवी पुरुषों की रीति के ऊपर योग्य ध्यान दिया

करोगे तो तुम्हें इन रीतियों का ज्ञान हो जायगा और वैसे ही बर्ताव का अभ्यास पड़ जायगा।

ऐसे ही बातचीत करने में भी असभ्यता होती है। कठोर भाषा बोलना, अशुद्ध उच्चारण करना तथा अपशब्द बोलना निन्दित और नीच सङ्गति के लक्षण हैं। यदि अपनी बात-चीत में कोई नीच आदमियों की कहावत लाओगे तो उससे तुम्हारी तुलना हो जायगी कि तुम नौकर-चाकरों से उच्च पद के मनुष्यों की सङ्गति में कभी नहीं रहे हो।

ऐसे ही मन की भी एक असभ्यता है जिसे साधन से दूर करना चाहिए—जैसे कि कोई नाम भूल जाना, उसके स्थान में दूसरा कहना तथा किसी से बात-चीत करने में "अमुक का क्या नाम है" ऐसे कहना। जो बात तुम पूरी-पूरी नहीं जानते उसे कहने बैठो और बीच में कहना पड़े कि "शेष मैं भूल गया हूँ" तो ऐसी बात बुरी और भद्दी मालूम होती है। जिस बात को जो मनुष्य पूर्ण रीति से जानता हो उसे ही वह बात कहनी चाहिए नहीं तो सुननेवालों को सुख के बदले व्याकुलता और श्रम होता है।

## लज्जा

कितने ही आदमियों को शरमाने की आदत पड़ जाती है। जब कोई मनुष्य उनके साथ बातचीत करता है तब वे घबरा जाते हैं। वे बराबर उत्तर नहीं दे सकते और लज्जा

कारण तुतलाकर बोलते हैं। ऐसे बिना कारण भय करने से यथार्थ में उनकी हँसी होती है।

सच्ची और बनावटी लज्जा में सचमुच बड़ा अन्तर है। पहली की प्रशंसा तथा दूसरी की हँसी होती है। घबराये बिना अथवा मुँह चढ़ाये बिना जो मनुष्य सभ्य मण्डली में जाकर बातचीत नहीं करता वह स्वयं अपना तिरस्कार करता है। जो आदमी अधीर, डरपोक तथा शरमीला होता है वह गुणवान् होने पर भी न तो संसार में कभी उन्नति कर सकता है और न उससे कोई काम बन सकता है। प्रत्युत्पन्न, चपल-प्रकृति तथा धृष्ट मनुष्य सर्वदा उसे पीछे छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं। बोलने बोलने में बड़ा अन्तर है। एक मनुष्य कोई बात इस भाँति कहता है कि उससे वह निर्लज्ज गिना जाता है और दूसरा मनुष्य वही बात दूसरी रीति से कहता है तो उससे वह नम्र तथा योग्य गिना जाता है। बुद्धिमान् और अनुभवी मनुष्य अपना स्वत्व प्रतिपादन करने और अपना काम निकालने में निर्लज्ज के समान ही नहीं बल्कि उससे भी अधिक हठ करता है पर उसमें बाहर से नम्रता दिखाने की उपयुक्त निपुणता होती है। ऐसा करने से वह दूसरों का मन हर लेता है और अपना काम भी बना लेता है। पर एक हठ धृष्टता से होता है जिससे लोगों को बड़ा दुःख होता है और अपना काम भी नहीं बनता।

बहुत से मनुष्य मण्डली में जाने से शरमाते हैं। हममें जब कोई विचित्रता नहीं तब हम क्यों शरम करें? जिस रीति

से हम अपने घर में बिना शरमाये सुख से चले जाते हैं उसी भाँति जहाँ हर एक भाँति के मनुष्य हों ऐसे समाज में क्यों न जाया जाय! दुर्गुण और अज्ञान से ही लज्जित होना चाहिए पर जब ये नहीं तब हमें बेधड़क चाहे जहाँ जाने में क्या हानि है? व्यर्थ लज्जा से ही युवक बुरी सङ्गति में पड़ जाते हैं। यदि कोई विचार कर ले कि वह मण्डली के मनुष्यों को प्रसन्न नहीं कर सकता तो वास्तव में वह उन्हें प्रसन्न नहीं कर सकेगा। जैसे डरपोक अत्यन्त डर से किसी समय जीवन से निराश हो जाय वैसे ही कितने ही मनुष्य लज्जा में रहकर और उसके आयास से दुखी होकर उलटे निर्लज्ज हो जाते हैं। निर्लज्जता के समान दुःखदायक और कोई दोष नहीं है इसलिए उसे अवश्य छोड़ना चाहिए। इन दोनों के बीच के मार्ग पर चलना चाहिए। यह अच्छी सङ्गति में रहनेवाले पुरुषों के लक्षण हैं जो प्रत्येक मण्डली में निश्चल तथा स्वस्थ रहते हैं।

मण्डली में जाने पर क्षुद्र मनुष्य शरमा जाता है और घबराने लगता है। कोई कुछ पूँछे तब भी घबरा जाता है और उत्तर देने में उसे बड़ी कठिनता पड़ती है, परन्तु अनुभवी सभ्य मनुष्यों को ऐसा नहीं करना पड़ता। वे सभा में आनन्द भरे, स्वस्थ तथा कार्यपटु रहते हैं। उच्च पदवी के लोगों से वे शरमाते नहीं वरन् बिना घबराये उनका योग्य सत्कार करते हैं। वे साधारण लोगों के साथ जिस स्वस्थता से बातचीत

करते हैं उसी से राजा के साथ करते हैं। बाल्यावस्था में अच्छी सङ्गति में रहने से और बड़े आदमियों के साथ बातचीत का व्यवहार रखने से यह बड़ा लाभ होता है। शिक्षित मनुष्य अपने से नीचे पद के लोगों के साथ बिना अभिमान के और उच्च पदवी के लोगों के साथ आदर और स्वस्थता से बातचीत करते हैं। इसके अतिरिक्त जो मनुष्य बुद्धिमान् हो परन्तु अनुभवी न हो उसकी अपेक्षा कम बुद्धिमान् तथा अनुभवी मनुष्य की अधिक प्रशंसा होती है। सभ्यता और विश्वासोत्पादक वचन साथ-साथ होने चाहिएँ।

## सङ्गति

अच्छी सङ्गति रखने से अपने विषय में लोगों का अच्छा विचार होता है। ख़ासकर सांसारिक जीवन के आरम्भ में तो अच्छी सङ्गति की बड़ी आवश्यकता है। अपने आपको अच्छा कहने या समझने से कोई मण्डली अच्छी नहीं होती। अच्छी सङ्गति बहुधा कुलीन, प्रतिष्ठित तथा सच्चरित्र मनुष्यों के समागम को कहते हैं। जब कोई कुल और पदवी से हीन मनुष्य भी उत्तम प्रकार के कलाकौशल में ज्ञान प्राप्त कर प्रसिद्ध हो जाता है तब उसे लोग प्रसन्नता से अच्छे समुदाय में सन्निविष्ट कर लेते हैं। अच्छी मण्डली में भी बहुधा ऐसी गड़बड़ होती है कि बहुत से कुलहीन, अप्रतिष्ठित तथा गुण-रहित मनुष्य

अपनी धृष्टता से उसमें घुस बैठते हैं और बहुत से अच्छे पुरुषों की सहायता से उसमें चले जाते हैं। ऐसे सभ्य-समाज में रहने से शिष्टाचार तथा परिष्कृत भाषा सीखना यथार्थ में बन सकता है, क्योंकि वहाँ दोनों के ऊपर समान ध्यान रक्खा जाता है। जिस मण्डली में केवल परिष्कृत भाषा बोली जाती हो पर संशोधित रीतियों का प्रचार न हो उसे अच्छी मण्डली नहीं कहते क्योंकि परिष्कृत भाषा बोलना आने से ही सब अच्छे नहीं हो सकते। इसी भाँति जो बुद्धिमान् हों पर उनकी स्थिति नीच हो तो उन्हें अच्छे साथियों में नहीं गिनना चाहिए। परन्तु ऐसे लोगों के साथ बहुत व्यवहार न रखने के कारण उनका अपमान भी नहीं करना चाहिए। जिस मण्डली में केवल विद्वान् हों वह प्रतिष्ठा के योग्य तो है परन्तु उसे हम सुसङ्गति नहीं कह सकते क्योंकि उसका संसार के साथ बहुत कम सम्बन्ध होने के कारण उसमें वर्तमान समय की संशोधित रीतियों का प्रचार नहीं होता। यदि हम ऐसी मंडली में जा सकें तो हमें कभी कभी वहाँ जाना चाहिए। इससे दूसरी मण्डलियों में हमारा सत्कार होगा। तीक्ष्ण-बुद्धि युवकों को बुद्धिमान् तथा कवियों की मंडली में जाने से बड़ी प्रसन्नता होती है, पर जो बुद्धि तीक्ष्ण न हो तो ऐसी मण्डली में जाने का गर्व रखना केवल मूर्खता है। ऐसी मण्डलियों में बार-बार जाना चाहिए और जो बात वहाँ होती हो वह विवेक और धैर्य से ध्यान में रखनी चाहिए। लोगों को हास्य-प्रिय मनुष्य

बहुत अरुचिकर होता है। जैसे स्त्री बन्दूक देखकर डरती है कि यह कहीं अपने आप छूटकर मुझे कुछ हानि न पहुँचावे ऐसे ही बहुत से लोग हँसी करनेवालों से डरते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। उनसे जान-पहचान रखनी चाहिए। उनके पास बार-बार जाना बड़ा लाभकारक है परन्तु उनके पीछे दूसरों की सङ्गति नहीं छोड़नी चाहिए। और इतना अधिक सम्बन्ध उनके साथ नहीं करना चाहिए जिससे लोगों के मन में यह भावना हो कि तुम उनके हेल-मेल के हो।

सबसे बढ़कर यह बात है कि अपने से उच्च पदवी के मनुष्यों की सङ्गति करो क्योंकि उससे उन्नति होती है और नीच सङ्गति से अवनति होती है। यहाँ उच्च पदवी से अच्छे कुल से आशय नहीं है किन्तु उत्तम गुण तथा सांसारिक प्रतिष्ठा से है।

अच्छी सङ्गति दो भाँति की है। एक तो राज्य में जिनकी प्रतिष्ठा हो और जीवन सुख से बिताते हों। दूसरे जो अपने असाधारण गुण से विख्यात हों या किसी अमूल्य कला-कौशल में प्रवीण हों। नीच सङ्गति तो कभी करनी ही न चाहिए। वह प्रत्येक बात में नीच होती है। पदवी में नीच, बुद्धि में नीच, आचार में नीच और गुण में भी नीच होती है। मूर्खता और पाप की जड़ अभिमान है। इसके ही कारण अगुआ बनने के अभिप्राय से बहुत से मनुष्य बिलकुल नीच सङ्गति में पड़ जाते हैं। वहाँ वे ऐसी हुकूमत करते हैं जिससे उनकी प्रशंसा और

चाहना होती है। परन्तु वे तुरन्त नीच हो जाते हैं और अच्छी सङ्गति में जाने के योग्य नहीं रहते।

सङ्गति के विषय में मैं तुमको बहुत बता चुका। अब किसी मण्डली का आचार ग्रहण करने के पहले जो सावधानता बर्तनी चाहिए उसके विषय में कुछ लिखता हूँ। संसार में बिलकुल अनुभव-शून्य मनुष्य जब किसी मण्डली में प्रवेश करता है तब उस मण्डली के और मनुष्य जिस ढङ्ग से चलते हों उसी भाँति चलना वह निश्चय करता है, पर ऐसा करने में उससे बहुधा भूल हो जाती है। वह सभ्य तथा शौक़ीन मनुष्यों के व्यसन तो जान ही लेता है। मण्डली में कितने ही मनुष्य प्रभावशाली होते हैं और उन्हें मण्डली के और मनुष्य चाहते तथा उनकी प्रशंसा करते हैं। वह उन्हें शराबी, व्यसनी तथा जुआरी देखता है इससे वह उनके दुर्गुण ग्रहण कर लेता है क्योंकि उनके दोषों को उत्तम मानकर वह यह समझता है कि उनके ही कारण उनकी बड़ाई तथा प्रताप है। परन्तु सत्य बात तो इससे उलटी है क्योंकि उन्होंने अपनी बुद्धि, विद्या और गुणों से आदर पाया है। केवल उनके ऐसे साधारण व्यसनों के कारण ही विचार-शील मनुष्य उन्हें क्षुद्र गिनते हैं और उनकी निन्दा करते हैं। यह ऊपर से स्पष्ट मालूम पड़ेगा कि ऐसे मिश्रित गुणों में अच्छे गुणों के कारण लोग कुछ अवगुणों को क्षमा तो कर देते हैं पर पसन्द नहीं करते। जो किसी मनुष्य में दुर्भाग्य से कोई दुर्गुण हो और वह उसे दूर न कर

सके तो उसे उससे ही सन्तोष करना चाहिए परन्तु दूसरों से नवीन दुर्गुण नहीं ग्रहण करने चाहिएँ। स्वाभाविक दुराचारी मन की अपेक्षा दूसरों के दुर्गुणों का अनुकरण करने से युवक दसगुने अधिक बिगड़ जाते हैं।

अच्छे साथियों के जो उत्तम गुण हों उन्हें ही तुम ग्रहण करो। उनका विवेक, उनकी चाल, उनके मधुर शब्द तथा उनके बातचीत करने का उत्तम ढंग सीखो। पर यह निश्चय जान लो कि इतना होने पर भी जो उनमें कोई दुर्गुण है तो उतना ही उनमें दोष है। जैसे किसी बहुत सुन्दर मनुष्य के मुख पर दुर्भाग्य से एक मस्सा होने से वैसा ही कृत्रिम मस्सा तुम अपने मुख पर बनाने के लिए तैयार न हो; ऐसी ही बहुत सी बातों से पूर्ण मनुष्य में जो थोड़ा सा अवगुण हो तो उसे ग्रहण करने का यत्न तुमको नहीं करना चाहिए। तुमको उलटा ऐसे समझना चाहिए कि जो मस्सा न होता तो उसमें कमी क्या रहती? इसी भाँति अच्छे साथियों में जो इतना अवगुण न होता तो और क्या चाहिए था?

शिष्ट मण्डली में जिनसे तुम्हारा आदर हो ऐसे गुण ग्रहण करने की शिक्षा मैं दे चुका। अब सम्भाषण के नियम लिखता हूँ जो कि सांसारिक व्यवहार में अत्यन्त उपयोगी और आवश्यक हैं।

---

# सम्भाषण के नियम

## बात-चीत करना

जब तुम समाज में बैठे हो तब बार-बार बोलो पर कोई लम्बी-चौड़ी बात मत कहो। बार-बार बोलने से सुननेवाले चाहे प्रसन्न न हों पर उन्हें श्रम तो न होगा।

## मण्डली में बहुत बात-चीत करने के पहले उसके आदमियों के चरित्र के ज्ञान की आवश्यकता

जो तुम्हारी समझ में आवे उसे एकदम बोल उठने के पहले तुम्हें अपने साथियों की स्थिति और उनके स्वभाव को जानना चाहिए। मण्डली में अच्छे आदमियों की अपेक्षा बुरे अधिक होते हैं और जिनकी निन्दा हो उनकी अपेक्षा जो निन्दा के पात्र हों उनकी संख्या अधिक होती है। तुम किसी सद्गुण की बड़ी प्रशंसा करो और वह मण्डली के कितने ही मनुष्यों में स्पष्ट रीति से न हो अथवा तुम किसी दुर्गुण की बहुत निन्दा करो और उससे कितने ही मनुष्य ग्रसित हों तो तुम्हारे सामान्य विचार पर भी लोग यह कल्पना करेंगे कि विशेष-कर उनके ऊपर ही तुमने अपने वाग्बाण चलाये हैं। ऊपर के विचार से तुम्हें भली भाँति विदित हो जायगा कि यदि कोई

बात ऐसी कही जाय जो तुम पर घटित हो सके तो तुमको भी यह शंका नहीं करनी चाहिए कि वह तुम्हारे ऊपर ढालकर कही गई है।

## कहानी तथा बे-मेल बातें न कहना

कहानियाँ बहुत कम कहनी चाहिएँ। अगर वे समय पर ख़ूब न जँचें और छोटी न हों तो कभी नहीं कहनी चाहिएँ। हर एक बात जो आवश्यक न हो उसे छोड़ दो और एक बात के ऊपर दूसरी बात जँचती है या नहीं इस बात का ध्यान रक्खो। कहानियाँ बार-बार कहने से तुममें विचार-शक्ति का बड़ा अभाव मालूम होगा।

## लोगों का हाथ पकड़ना

अपनी बात सुनाने के लिए किसी का हाथ मत पकड़ो क्योंकि जो वह तुम्हारी बात नहीं सुनना चाहता तो तुम्हें उसे पकड़ने की अपेक्षा अपनी जीभ को पकड़ना चाहिए।

## लम्बी-चौड़ी बातें और काना-फूसी करना

ऐसे मनुष्य कान में बात करने के लिए या धीमे स्वर से अपनी व्यर्थ लम्बी बात कहने के लिए मण्डली में से एक भाग्यहीन मनुष्य को ढूँढ़ लेते हैं। यह बड़ा नीच काम है और कितने ही अंश तक तो छल है क्योंकि जन-समुदाय में हर एक मनुष्य को अपने इच्छानुसार बात-चीत करने की स्वतन्त्रता

है। कदाचित् किसी ऐसे बातून से तुम्हारा पाला पड़ जाय तो धीरज से अथवा इस ढंग से कि जिससे वह जाने कि तुम उसकी बात ध्यान से सुनते हो उसे सुनना चाहिए। वह यदि उपकार के योग्य हो तो उसके साथ उपकार करना चाहिए क्योंकि उसकी बात ध्यान देकर सुनने की अपेक्षा और किसी भाँति वह तुम्हारा इतना अनुगृहीत न होगा, पर जो उसकी बात पूरी न होने पावे और तुम उसे छोड़कर चले जाओ या व्याकुल होकर अधीर हो जाओ और यह उसे विदित हो जाय तो इसके बराबर दुःख भी उसे और किसी बात से न होगा।

## जो बात-चीत करता हो उसकी बात पर ध्यान न देना

तुम्हारे साथ जो भलामानस बात-चीत करता हो उसकी बात पर केवल ऊपरी ध्यान देने से बढ़कर पशुतुल्य तथा उद्वेगजनक और कोई बात नहीं है। यह कभी क्षमा नहीं की जाती है। मैं ऐसे बहुत मनुष्यों को जानता हूँ जिन्होंने ध्यान न देने से भी छोटी बात के ऊपर क्रोध करके ऐसा बर्ताव करनेवाले की ख़ूब ख़बर ली है। मैंने ऐसे बहुत से मनुष्य देखे हैं जो, तुम जब उनके साथ बात करते हो तब, तुम्हारे सामने न देखें अथवा तुम्हारी बात ध्यान देकर न सुनें वरन् उलटा इधर-उधर दिवालों की ओर देखें, खिड़की के बाहर देखें, कुत्ते के साथ खेल करें, हुलास की डब्बी को जल्दी-जल्दी फिरावें

या नाक साफ़ करें। इससे उनके मन का तुच्छ, निर्गुण तथा चंचल होना स्पष्ट प्रतीत होता है और यह भी विदित होता है कि वे नीच सङ्गति में रहे हैं।

जिनके मन में स्वप्रीति हो उनकी बात के ऊपर ध्यान न देने से उन्हें कितनी घृणा तथा क्रोध होगा—यह बात तुम भली भाँति सोच लो। मैं तुमसे फिर कहता हूँ कि कैसी ही स्थिति अथवा पदवी का मनुष्य हो, उसमें स्वाभिमान तथा स्वप्रीति अवश्य होगी। तुम्हारे नौकर को भी मारने से इतना बुरा नहीं लगेगा जितना अपमान और तिरस्कार करने से लगेगा। इसलिए जो तुमसे बात-चीत करे उस पर यथार्थ में ध्यान देना चाहिए और ऊपर से दिखाना भी चाहिए कि तुम ध्यान देते हो।

## कोई कुछ कहता हो उसके बीच में न बोल उठना

कोई बात-चीत करता हो उस समय बीच में बोल उठना या नई बात कहकर सुननेवाले का ध्यान फेरना असभ्य व्यवहार की पराकाष्ठा समझी जाती है। इस बात को बालक तक जानते हैं।

## नया विषय कहने की अपेक्षा प्रस्तुत विषय ग्रहण करने की श्रेष्ठता

जिस मण्डली में तुम शामिल हो उसमें अपनी ओर से नया विषय आरम्भ करने की अपेक्षा जो विषय चल रहा हो उसी

का सुनना ठीक है। जो तुममें योग्यता है तो तुम उसे, प्रत्येक विषय पर, किसी न किसी अंश में प्रकट कर सकते हो और जो वह नहीं है तो तुम्हारे लिए अपनी बात कहने की अपेक्षा औरों की बात पर ही बकवाद करना बेहतर है।

## मण्डली में अपनी विद्वत्ता को छिपाना

किसी विशेष समय के अतिरिक्त तुम्हें अपनी विद्वत्ता कभी प्रकट नहीं करनी चाहिए। विद्वानों के लिए उसे रख छोड़ो और जो तुमसे मिले उसे दिखाने की अपेक्षा जो उसे जानना चाहे उसे दिखाओ। ऐसा करने से तुम बड़े नम्र गिने जाओगे और अपनी विद्या से बढ़कर विद्वान् समझे जाओगे। अपनी मण्डली के और मनुष्यों से अधिक बुद्धिमान् अपने को मत दिखाओ। जो मनुष्य अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिए आडम्बर करता है उससे लोग बार-बार प्रश्न करते हैं और जो उस समय ऊपरी बनावट विदित हो जाय तो उसकी हँसी और तिरस्कार होता है। कदाचित् उत्तर ठीक भी निकले तो लोग उसे घमण्डी बताने लगते हैं। सच्ची योग्यता तो सदा अपने आप ही प्रकाशित हो जाती है।

## किसी के विरुद्ध कुछ कहना हो तो नम्रता से कहना

जब तुमको किसी मनुष्य के मत तथा भाषण के विरुद्ध कुछ कहना हो तब तुम्हारे बोलने का ढंग, मुख का भाव, तथा शब्द

और स्वर, निराडम्बर, स्वाभाविक, कोमल तथा शान्त होने चाहिएँ। जब विरुद्ध बोलना हो तब "मैं भूलता न हूँ तो," "मुझे निश्चय नहीं पर ऐसा लगता है कि," "मैं समझता हूँ कि," इत्यादि नम्रता के वाक्यों से आरम्भ करना चाहिए। न तो स्वयं तुम्हें कुछ बुरा लगा और न तुमने अपने प्रतिपक्षी को कुछ बुरा लगाना चाहा। यह जताकर विवाद के अन्त में तुमको उत्तम, मीठे तथा सुन्दर शब्द कहने चाहिएँ क्योंकि बहुत देर विवाद होने से दोनों पक्षवालों के मन प्रतिकूल हो जाते हैं।

## जहाँ तक हो विवाद नहीं होने देना

यथासम्भव किसी ऐसी मण्डली में विवाद और विरोध की बात नहीं होने देनी चाहिए जिसमें सब भाँति के मनुष्य हों क्योंकि इससे दोनों पक्षवालों के मन विवाद होने तक एक दूसरे के प्रतिकूल हुए बिना नहीं रहते। जो ऐसी बात बढ़ गई हो तो धीरे से उसे तुच्छ बताकर हँसी में टाल देना चाहिए।

## सदा शान्त स्वभाव से विवाद करना

हमें ऐसा लगता हो या हम जानते हों कि हमारी बात ठीक है तो भी हमें आग्रह या क्रोध से विवाद नहीं करना चाहिए। हमें अपना अभिप्राय बड़े शान्त-चित्त और नम्रता से प्रकट करना चाहिए। जो ऐसा करने से भी काम नहीं चले तो यह कहना चाहिए कि "हम आपस में एक दूसरे को इस बात

की प्रतीति नहीं करा सकते और यह कोई आवश्यक बात भी नहीं है, इसलिए अब हमें दूसरी बात करनी चाहिए" ऐसे कहकर बात बदल देने का यत्न करना चाहिए।

## प्रत्येक मण्डली में उसी की विशेष रीति के अनुसार बर्तना

यह बात तुम याद रक्खो कि प्रत्येक मण्डली का कुछ न कुछ विशेष ढंग अवश्य होता है। प्रत्येक जन-समूह की रुचि भिन्न होती है। जो बात एक स्थान में योग्य हो उसका दूसरे स्थान में अनुचित होना सम्भव है।

## परिहास

एक भाँति की परिहास की बात अगर एक मण्डली में बहुत प्रिय हो तो दूसरी में वह अप्रिय होती है और उससे अरुचि होती है। एक मण्डली में उसकी विशेष प्रथा, बर्ताव और बोल-चाल की रीति के कारण कोई ख़ास शब्द या चेष्टा बहुत पसन्द की जाती है परन्तु वह विशेष गुण जिस मण्डली में न हों वहाँ वही शब्द, चेष्टा आदि बिलकुल पसन्द नहीं आते। एक मण्डली में तुम्हें किसी बात से बहुत आनन्द हुआ हो इस कारण तुम उससे भिन्न रुचिवाली अन्य मण्डली में भी वह बात कहने लग जाओ तो वहाँ वह केवल नीरस ही न लगेगी किन्तु यदि समय और प्रसङ्ग उचित न हुए तो उससे सङ्-

साथ के लोगों का क्रोध उत्पन्न होगा। कभी-कभी कितने ही मनुष्य कोई बात कहने को हों तो आरम्भ में ही कहते हैं कि "मैं तुमसे एक अति उत्तम बात कहता हूँ।" या "संसार की सर्वोत्तम बात कहता हूँ।" इससे सुननेवालों के मन में बड़ी आशा उत्पन्न हो जाती है और जो दैवयोग से वह बात उत्तम न निकले तो वे निराश हो जाते हैं और यह उत्तम परिहास की बात का कहनेवाला भी मूर्ख बनता है।

## आत्म-प्रशंसा

जहाँ तक हो किसी भी प्रसङ्ग में तुम अपने विषय में कुछ मत कहो। कितने ही मनुष्य किसी कारण या आवश्यकता के बिना ही एकाएक अपना वर्णन करने लग जाते हैं। इससे उनकी धृष्टता सूचित होती है। अधिकांश मनुष्य अपने विचार से युक्तिपूर्वक अपनी प्रशंसा आरम्भ करते हैं। वे बहुत से दोषों को अपने ऊपर आरोपित करके उनको निवारण करने के लिए अपने सद्गुणों की सूची कह डालते हैं—

"हम स्वीकार करते हैं कि हमारा अपने विषय में कुछ कहना बहुत अनुचित है और इस बात से हमें बहुत घृणा भी है परन्तु जो अन्याय से हमारे ऊपर अपमानपूर्वक दोषारोपण नहीं किया जाता तो हम कभी अपने गुणों के विषय में कुछ न कहते।" ऐसे मनुष्य यह नहीं समझते कि मिथ्या अभिमान के ऊपर पड़ा हुआ यह विनय का पतला परदा इतना

पारदर्शक है कि जिन मनुष्यों में ज़रा भी विचार-शक्ति है उनसे यह उसे छिपा नहीं सकता।

कितने ही मनुष्य इससे भी अधिक विनय और प्रपंच से अपना काम चलाते हैं। वे पहले तो अपने में बहुत अवगुण बताते हैं पर पीछे उनके होने से अपने को भाग्यहीन कहकर मुख्य सद्गुणों के अभाव से अपने को दोषी ठहराते हैं—

"दुःखी लोगों को देखकर हमें दया आये बिना नहीं रहती। उन्हें सहायता करने का प्रयास किये बिना हमसे रहा नहीं जाता। यदि हम सांसारिक प्राणियों को दुर्दशा में देखें तो उन्हें उससे मुक्त किये बिना हम नहीं रह सकते। वास्तव में देखा जाय तो हमारी स्थिति ऐसा करने के योग्य नहीं है। हम जानते हैं कि कभी-कभी सत्य बोलना विवेक-शून्यता-सूचक होता है परन्तु हमसे सच बोले बिना नहीं रहा जाता। सारांश यह है कि इन अवगुणों के कारण हम संसार में जीने के योग्य भी नहीं हैं फिर हमारे उत्तम होने की तो बात ही क्या है। परन्तु अब हम इतने वृद्ध हो गये हैं कि यह पुरानी चाल बदल नहीं सकते इसलिए हमें किसी न किसी भाँति बाक़ी के दिन पूरे करने हैं।" यद्यपि नाट्य-गृह की रंग-भूमि पर भी इस भाँति बनना बहुत हास्य-जनक और असंगत होता है तो भी संसार की रङ्ग-भूमि पर यह बार-बार देखने में आता है। मिथ्या अभिमान और गर्व मनुष्य-प्रकृति में इतने दृढ़ होते हैं कि वे बहुत छोटे-छोटे विषयों में भी देखने में आते हैं। हम

प्राय: देखते हैं कि मनुष्य ऐसे विषय में प्रशंसा के उत्सुक रहते हैं जिसमें उनका कहना सत्य होने पर भी वे प्रशंसा-भाजन नहीं होते। कदाचित् कोई कहे कि वह छ: घंटे में १०० मील घोड़े पर गया तो इस बात का झूठ होना सम्भव है; पर जो सच भी हो तो क्या हुआ। केवल यह मालूम हो गया कि वह बहुत अच्छा पोस्टमैन बन सकता है। यदि कोई मनुष्य बार-बार शपथ खाकर कहे कि एक ही बार मैं छ: या आठ बोतल शराब पी गया तो मानना तो यही चाहिए कि वह झूठा है पर जो वह झूठा न हो तो उसे पशु ही समझना चाहिए। मिथ्याभिमानी मनुष्य ऐसी-ऐसी सहस्रों मूर्खता की बातें करता है पर उसका अभिप्राय पूरा नहीं होता। इन बुराइयों के दूर करने का केवल यही एक उपाय है कि अपने विषय में कभी कुछ न कहा जाय। परन्तु यदि कोई बात हो रही हो और उसके बीच में अपने विषय में कुछ कहना पड़े तो तुम भले ही कहो पर ऐसा एक शब्द भी उच्चारण मत करो जिससे यह बोध हो कि तुम आत्म-प्रशंसा करते हो।

तुम्हारा आचरण चाहे जैसा हो वह छिप नहीं सकता; पर तुम्हारे कहने से उस पर कोई विश्वास नहीं करेगा। तुम्हारे कहने से न तो तुम्हारे दोष ढकेंगे और न तुम्हारी विद्वत्ता प्रकट होगी। पर यदि तुम अपने गुणों के विषय में कुछ न कहोगे तो जो मनुष्य तुमसे ईर्ष्या अथवा तुम्हारा तिरस्कार और परिहास करते होंगे वे भी तुम्हारे गुणों की योग्य प्रशंसा किये

बिना न रह सकेंगे। जो तुम ही स्वयं आत्म-प्रशंसा करोगे तो उसे बड़ी युक्ति से गुप्त रखने पर भी मनुष्य तुम्हारे विरुद्ध हो जायँगे और अपनी कार्य-सिद्धि से तुम्हें निराश होना पड़ेगा।

## दुर्बोध तथा अस्पष्ट बात न कहना

बात-चीत में कोई दुर्बोध तथा अस्पष्ट बात कहने से सावधान रहना चाहिए। ऐसा आचार केवल उत्तम चरित्र के विरुद्ध ही नहीं है किन्तु इससे तुम्हारे ऊपर संशय भी हो सकता है। जो तुम किसी के साथ अस्पष्ट बात करोगे तो वह भी तुम्हारे साथ वैसा ही करेगा। इससे तुम्हारे ज्ञान की उन्नति नहीं होगी। बात-चीत में भीतर तो विवेक तथा सङ्कोच रखना और बाहर से भोलापन, स्पष्ट वक्तापन तथा सरलता दिखाना बुद्धि की सबसे बढ़कर उत्तमता है। तुम्हें स्वयं सावधान रहकर तथा देखने में स्वाभाविक स्पष्टता जताकर औरों को असावधान करना चाहिए। जो तुम अविचार और असावधानता से बोलोगे तो मण्डली के अनेक मनुष्य, जितना सम्भव होगा उतना, उससे लाभ उठावेंगे।

## जिसके साथ बात-चीत करना हो उसके मुख के सामने देखकर बोलना

जिसके साथ बात-चीत करते हो उसके मुख के सामने देखकर सदा बोलो। ऐसा न करने से यह समझा जायगा

कि तुम शरमाते हो। इसके अतिरिक्त तुम्हें सुननेवाले के मुख पर से इस बात के जानने का लाभ नहीं होगा कि तुम्हारी बात का उसके ऊपर क्या असर हुआ। मनुष्यों का यथार्थ अभिप्राय जानने के लिए मैं अपने कानों की अपेक्षा आँखों पर अधिक भरोसा रखता हूँ क्योंकि कान केवल यह बता सकते हैं कि अमुक बात सुनने की उनकी इच्छा है परन्तु आँखें तो उस वस्तु को भी देखे बिना नहीं रहतीं कि जिसके देखने की मुझे आवश्यकता नहीं है।

## निन्दा

किसी की निन्दा न तो ख़ुशी से सुननी चाहिए और न उसे याद रखना चाहिए। उससे समय पर तो अपनी ईर्ष्या या अहंकार की तृप्ति हो जाती है पर शान्तिपूर्वक विचार करने से बोध होगा कि अन्त में बहुत हानि होती है। दूसरों की निन्दा का सुननेवाला भी चोर के समान निन्दित समझा जाता है।

## सार्वजनिक विचार नहीं करना

बात-चीत में किसी समाज के ऊपर कभी आक्षेप नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से आवश्यकता के बिना ही तुम्हारे अनेक शत्रु हो जायँगे। पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी अच्छी बुरी होती हैं और सम्भव है कि मनुष्यों में बुरों की अपेक्षा अच्छे अधिक हों। इसी भाँति वकील, योद्धा, धर्मोपदेशक, राज-कर्मचारी,

नगरनिवासी आदि सबमें होते हैं। वे सब मनुष्य हैं। सब एक से ही मनोविकार तथा विचारों के अधीन होते हैं। उनकी भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा के अनुसार उनकी रीति में अन्तर हो जाता है। उनके किसी समूह के ऊपर बुरे विचार प्रकट करना जितना अन्याय-पूर्ण है उतना ही मूर्खता-युक्त है। यदि एक व्यक्ति को कोई बात बुरी लगे तो वह उसे क्षमा कर सकता है पर जन-समूह से ऐसा नहीं होता। अनेक युवक धर्म-गुरुओं को दोष लगाना शिष्टाचार और परिहास समझते हैं पर यह बड़ी भारी भूल है। धर्म-गुरु भी तो मनुष्य ही हैं। कोई ख़ास वस्त्र पहनने से वे अच्छे या बुरे नहीं कहे जा सकते। बुद्धि-हीन मनुष्य चतुर मनुष्यों में अपनी गणना कराने के लिए प्रजा तथा भिन्न-भिन्न समाजों के ऊपर चाहे जैसे विचार प्रकट कर डालते हैं। मनुष्य की परीक्षा उसकी जाति, आजीविका या पदवी से नहीं किन्तु अपने अनुभव से करनी चाहिए।

## नक़ल करना

नीच तथा छिछोरे मनुष्यों के लिए नक़ल करना एक सामान्य रुचिकर विनोद है पर बड़े आदमी इसको बहुत बुरा समझते हैं। परिहास के दृष्टि-बिन्दु से देखा जाय तो भी ऐसी आदत बिलकुल असभ्य गिनी जाती है। तुम्हें न तो किसी की नक़ल करनी चाहिए और न उसे पसन्द करना चाहिए। क्योंकि जिसकी नक़ल की जाय उसका अपमान होता है

और यह बात मैं तुमसे पहले कई बार कह चुका हूँ कि अपमान कभी भूला नहीं जा सकता।

## शपथ खाना

मण्डली में तुमने बहुत से मनुष्यों को बात-चीत में शपथ खाते हुए बहुत बार सुना होगा। उनकी समझ में इससे उनकी बात भूषित होती है पर यह उनकी बड़ी भारी भूल है। जो शपथ खाते हैं उनसे कोई समाज अच्छा नहीं कहा जा सकता है। ऐसे मनुष्य प्रायः नीच शिक्षावाले होते हैं क्योंकि विना कारण शपथ खाना जैसा दुष्ट-प्रकृति-सूचक है वैसा ही अज्ञान तथा मूर्खता से युक्त है।

## कथन में परिहास

मण्डली में बैठकर तुम कोई बात कहो तो जो वह गर्व या अपमान से अथवा घबराहट या मूर्खता से दाँत निकालकर कही जायगी तो उसे कोई नहीं गिनेगा और सब उसकी निन्दा करेंगे। इसके सिवा जो तुम बड़बड़ाओगे या अस्पष्ट तथा अविनीत वाक्य कहोगे तो वे उससे भी अधिक बुरे लगेंगे।

## अपनी या दूसरों की घरेलू दशा पर बात-चीत नहीं करना

तुम्हें अपनी या दूसरों की घरेलू दशा पर बात-चीत कभी नहीं करनी चाहिए। तुम्हारे घर की बात केवल दूसरों को

निष्प्रयोजन ही न होगी किन्तु उससे उनको व्याकुलता होगी। इसी भाँति दूसरों के घर की बात तुम्हारे लिए निरुपयोगी है। घरेलू विषय बड़े सूक्ष्म होते हैं। हर एक कुटुम्ब के बाहरी दिखाव के ऊपर विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि उसमें पुरुष और स्त्री का, माता-पिता और लड़कों का, तथा उनके बनावटी मित्र आदि का आन्तरिक सम्बन्ध बाहरी दिखाव से इतना भिन्न होता है कि अपना उद्देश्य पवित्र होने पर भी बहुधा भूल हो जाती है।

## कथन में स्पष्टता

यदि मण्डली में कोई रसहीन अथवा अस्पष्ट परिहास करे तो वह मूर्ख बने बिना नहीं रहता। यदि उसका परिहास पसन्द न आवे और लोग चुप रह जायँ अथवा दुर्भाग्य से उससे ही कोई उसे समझाने को कहे तो उस परिहासयिता की ग्राम्य और व्याकुल दशा पहले से भी अधिक बुरी हो जायगी जिसका, वर्णन की अपेक्षा, अनुभव सुगमता से किया जा सकता है।

## गुप्त भाव

जो बात तुमने एक मण्डली में सुनी हो उसे दूसरी में कहने से सावधान रहना चाहिए। चाहे कोई बात देखने में तुच्छ मालूम पड़ती हो पर सम्भव है कि उसके फैलने से उसका

परिणाम हमारी कल्पना से बढ़कर बुरा निकले। वार्तालाप में हर एक मनुष्य को यह विश्वास होता है कि यदि किसी बात के गुप्त रखने के लिए स्पष्ट कहा न जायगा तो भी उसे दूसरे स्थान में नहीं कहना हर एक मनुष्य का कर्तव्य है। पर इस भाँति जिसके मन में बात नहीं टिकती उसके सहस्रों समाजों में शामिल होने पर भी उसे कोई नहीं गिनता और सब उससे उदासीनता से बात-चीत करते हैं।

## मण्डली के अनुसार बातचीत करना

जिसके साथ तुम वार्तालाप करते हो उसके योग्य विषय पर ही तुम्हें सदा बात-चीत करनी चाहिए। मेरी राय में तुमको धर्मोपदेशक, पण्डित, सेनापति और स्त्रियों के साथ एक ही विषय पर और एक ही प्रकार की बात करना उचित नहीं।

## मण्डली में हास्य हो तो उसे अपने ऊपर नहीं समझना

साधारण तथा अशिक्षित मनुष्य यदि सभ्य मण्डली में आ पड़ते हैं तो समझते हैं कि मण्डली का ध्यान उन्हीं की ओर है। वहाँ यदि कुछ गुप्त बात हो तो वे यथार्थ में यही समझते हैं कि हमारी ही बात हो रही है। कोई हँसे तो समझते हैं कि हमारी हँसी की जा रही है। कदाचित् कोई कुछ अस्पष्ट बात कहे और वह बलात्कार से उनमें घटित हो सकती हो

तो उनको यही निश्चय होता है कि वह उन्हें ही लक्ष्य करके कही गई है। इसका परिणाम यह होता है कि पहले तो उनका चेहरा फीका पड़ जाता है और पीछे उन्हें क्रोध आ जाता है। शिक्षित मनुष्य कभी ऐसा नहीं समझते और जो समझ भी जायँ तो कभी यह प्रकट नहीं होने देते कि मण्डली में उनका अपमान हुआ, प्रतिष्ठा कम हुई या हँसी हुई। पर जब किसी बात से उनका तिरस्कार भली भाँति प्रकट हो जाय तब तो उन्हें आत्म-गौरव के कारण उचित रीति से क्रोध आ ही जाता है। छिछोरे मनुष्य छोटी-छोटी बातों में विवादशील, द्वेषी, आतुर तथा तामसी होते हैं। उनके मन में बहुधा यह सन्देह होता है कि सब लोग हमारी निन्दा करते हैं और वे जो कुछ कहते हैं हमारे ऊपर ढालकर कहते हैं। जो समाज में हास्य हो तो समझते हैं कि सब लोग हमारे ऊपर हँसते हैं। इस पर वे स्वयं क्रोध करके जितने उनसे कहे जा सकें असभ्य वचन कह डालते हैं और अपनी समझ से सच्चा साहस दिखाकर अपने को वृथा झञ्झट में फँसा लेते हैं। छिछोरे मनुष्यों की बातचीत से ही मालूम हो जाता है कि वे अच्छी शिक्षा अथवा सङ्गति से वञ्चित रहे हैं। वे जो बात कहते हैं वह प्रायः उनके घर की, नौकरों की, कुटुम्ब में उनकी सरल व्यवस्था की या पड़ोसियों की होती है और वे उसे सरस बातों के समान ज़ोर देकर करते हैं। ऐसे मनुष्यों को तो गपशप का अवतार ही कहना चाहिए।

---

## गाम्भीर्य

उपर्युक्त प्रसन्नता तथा परिहास के साथ ही साथ दिखाव और चाल-ढाल में कुछ बाहर का भारी भरकमपना रखने से मनुष्य का अधिक गौरव होता है। शरीर की अनुचित चञ्चलता और मुख का निरन्तर हास्य छछोरेपन के यथार्थ चिह्न हैं।

## मितव्ययता

बुद्धिमान् मनुष्य को जितना व्यय करने से लाभ तथा आदर दोनों मिलते हैं, मूर्ख को उससे अधिक व्यय करने से भी दोनों में से एक भी नहीं मिलता। बुद्धिमान् मनुष्य समय तथा धन का समान उपयोग करता है और स्वयं अथवा दूसरों को जिससे न कुछ लाभ हो, न प्रसन्नता हो ऐसे काम में वह कभी एक मिनट या एक पैसा भी व्यय नहीं करता। मूर्ख जिस वस्तु की आवश्यकता न हो उसे ख़रीदता है पर जिसकी ज़रूरत हो उसमें कभी एक पैसा भी ख़र्च नहीं करता। खिलौनों की दूकान पर जाय तो वह मनोहर वस्तु लिये बिना हट नहीं सकता। तमाखू की डिबिया, घड़ी, तथा लकड़ी की मूँठ इत्यादि चीज़ें तो उसकी जेब ख़ाली कराये बिना रह नहीं सकतीं। उसके नौकर तथा व्यापारी उसकी बेवकूफ़ी से लाभ उठा उसे ठगते हैं और कुछ समय के उपरान्त उसके पास

अनेक भाँति की निष्प्रयोजन तथा हास्य-जनक वस्तुएँ होने पर भी उसे आश्चर्य होता है कि जीवन की आवश्यक और सुखदायक चीज़ें तो मेरे पास अभी तक नहीं हैं।

नियम और सावधानता के न होने से सबसे अधिक धन होने पर भी आवश्यक व्यय का पूरा नहीं पड़ेगा परन्तु उनके होने से प्राय: थोड़े धन से ही आवश्यक व्यय पूरा हो सकेगा। जहाँ तक हो जो कुछ तुम ख़रीदो उसके दाम नक़द दे दो, उधार का झगड़ा मत रक्खो, और नक़द भी अपने सामने चुकाने की आदत रक्खो। उसमें नौकरों की गोलमाल नहीं होनी देनी चाहिए क्योंकि वे दलाली लेने का मौक़ा ढूँढ़ा करते हैं। यदि कुछ साधारण घर के ख़र्च की चीज़ों का हर महीने उधार लेना आवश्यक हो तो कुछ हानि नहीं पर उधार का रुपया अपने हाथ से समय पर चुका देने में आलस्य नहीं करना चाहिए। गर्व में आकर कोई अनावश्यक वस्तु नहीं ख़रीदनी चाहिए, चाहे सस्ती हो, चाहे महँगी। आय-व्यय का हिसाब एक कापी में रक्खो क्योंकि जो मनुष्य अपना आय-व्यय जानता है उसके यहाँ कभी कमी नहीं पड़ती। ऐसा कहने से तुम यह मत समझना कि हर एक आने या पैसे का हिसाब रक्खा जाय कि जिसको तुम किराये आदि में ख़र्च करो। इसमें तो केवल समय नष्ट होता है। आलसी और लोभी मनुष्य ऐसी छोटी-छोटी वस्तुओं पर ध्यान रखते हैं और ऐसा हिसाब लिखने में कागज़ और स्याही वृथा नष्ट करते हैं

पर यह याद रक्खो कि संसार की और रीतियों के समान मितव्ययता में भी उपयुक्त बातों पर उचित ध्यान रखना तथा तुच्छ बातों पर ध्यान न देना तुम्हारा कर्तव्य है।

## मित्रता

तरुण मनुष्यों को जो बात मन में हो उसके कह डालने की आदत होती है जिससे धूर्त तथा अनुभवी मनुष्य उनका सत्यानाश कर देते हैं। यदि कोई धूर्त उनसे कहे कि मैं तुम्हारा मित्र हूँ तो वास्तव में वे उसे मित्र समझने लगते हैं और इस क्षणिक मित्रता के वचन से उसमें बिना विचारे अविकल विश्वास करने लगते हैं। इससे केवल सदा उनकी हानि ही नहीं होती किन्तु कभी कभी तो इसका बड़ा बुरा परिणाम होता है। ऐसी मौखिक मित्रता से सावधान रहना चाहिए। जब ऐसा मित्र अपने पास आवे तब उससे बड़े विनय से मिलना चाहिए पर उसके कहने पर बिलकुल भरोसा नहीं करना चाहिए। उसके साथ बिना विश्वास के बात-चीत करनी चाहिए। यह कभी नहीं समझना चाहिए कि पहली ही मुलाक़ात अथवा थोड़े ही परिचय में लोग मित्र हो जाते हैं। सच्ची मित्रता तो शनैः-शनैः होती है और वह भी पारस्परिक गुणों का ज्ञान और उनकी समानता हुए बिना दृढ़ कभी नहीं होती।

युवकों में एक दूसरी भाँति की नाम मात्र की मित्रता

होती है। ऐसी मित्रता समय पर तो गाढ़ी होती है पर भाग्य-वश बहुत दिन नहीं निभती। अकस्मात् एक स्थान में समागम होने से और व्यसन तथा विषय के एक मार्ग में पड़ने से ऐसी मित्रता एकदम हो जाती है। धन्य है ऐसी मित्रता को! और वह भी व्यसन और विषयासक्ति से दृढ़! इस भाँति नीति और सदाचार के विरुद्ध मित्रता करके धोखा देनेवालों को न्यायाधिकारियों से दण्ड मिलना चाहिए। ऐसे नीच सम्बन्ध को मित्रता कहना क्या उनकी मूर्खता और अज्ञान नहीं है? वे निकृष्ट कामों के लिए एक दूसरे को रुपया उधार दे देते हैं और जो कोई उनका ज़रा भी अपमान करे तो अपनी अपराध-शून्यता साबित करने के लिए लड़ने को तैयार हो जाते हैं। वे आपस में एक दूसरे से, जानते हों या न जानते हों, सब कुछ झूँठ ही कह देते हैं। परन्तु अन्त में किसी कारण से मित्रता शीघ्र टूट जाती है। फिर वे एक दूसरे से इस भाँति व्यवहार रखते हैं मानो कभी परिचय भी न हुआ हो। यदि वे कुछ व्यवहार रक्खें भी तो केवल इसलिए कि पारस्परिक विश्वासपात्रता का हास्य करें।

जो बात सामान्य रीति से कहने पर भी सम्भव प्रतीत हो उसे तुम्हारे चित्त में जमाने के लिए यदि कोई शपथपूर्वक हठ से कहे तो तुम जान लो कि वह तुम्हें ठगने आया है और उस बात के समझाने में तुम्हें कोई लाभ अवश्य है नहीं तो वह कदापि इतनी युक्ति नहीं करता।

मित्र और साथियों में बड़ा अन्तर होता है। बड़ा मिलन-सार और सभ्य साथी बहुधा बड़ा अयोग्य और हानि-कारक मित्र निकलता है। जैसी लोगों की सम्मति तुम्हारे मित्र के विषय में होगी वैसी ही तुम्हारे विषय में भी होगी। स्पेन देश की एक कहावत है कि "तुम किसके साथ रहते हो, यह मुझसे कहो तो मैं बता सकता हूँ कि तुम कैसे हो।" कोई मनुष्य धूर्त या छछोरे मनुष्यों से मित्रता करे तो भद्र मनुष्य सहज में समझ लेते हैं कि या तो यह कोई दुष्ट काम करनेवाला है या ऐसा कोई काम किया है जिसे छिपाना चाहता है। तुम्हें मूर्ख तथा तुच्छ मनुष्यों से मित्रता नहीं करनी चाहिए। उनकी संख्या अधिक होती है इसलिए उनसे मित्रता ( जो उनके साथ सम्बन्ध को मित्रता कह सकें ) न की जाय तो उनके साथ अकारण द्वेष होने का प्रसङ्ग भी कभी नहीं आने देना चाहिए। ऐसे धूर्त और छछोरे लोगों के साथ लड़ाई या मित्रता करने से उनसे निर्भयता के साथ दूर रहना मैं तो अधिक श्रेष्ठ समझता हूँ। तुमको उनकी मूर्खता और अवगुणों की समालोचना निःसन्देह खुले मैदान करनी चाहिए। पर वे यह न समझ सकें कि तुम उनके शत्रु हो। उनकी शत्रुता भी उनकी मित्रता से कम हानिकारक नहीं है। प्रायः सबके साथ आन्तरिक सङ्कोच रख सामने सरलता से बोलना चाहिए क्योंकि जैसे उदासीनता दिखाने से उन्हें बड़ी अरुचि होगी वैसे ही अपने चित्त की बात कह देने से उनसे बड़ी हानि होगी। ऐसा

मध्यम गुण बहुत कम मनुष्यों में पाया जाता है। मनुष्य छोटी-छोटी बातों में गूढ़ और विरक्त हो बहुत से जो उनके मन में हो उसे मूर्खता में बक जाते हैं; ये दोनों बातें हास्यजनक हैं।

## शिक्षा

शिक्षा का यह लक्षण बहुत ठीक हुआ है कि "बहुत अच्छी समझ, बहुत अच्छा स्वभाव और थोड़ा दूसरों के लिए स्वार्थ त्यागना जिससे दूसरे भी अपने लिए स्वार्थ का त्याग करें—इन उत्तम गुणों के परिणाम को शिक्षा कहते हैं।"

उत्तम संस्कार शीघ्र नहीं आ सकते और वे भी सब नहीं आ सकते। वे बाल्यावस्था में ही मिलने चाहिएँ नहीं तो कभी सहज में नहीं मिलते। जो बाल्यावस्था में वे एक बार दृढ़ हो जायँ तो पीछे कभी नहीं मिटते क्योंकि उनका अभ्यास पड़ जाता है।

केवल शिक्षा के कारण ही लोग हमें देखकर हमारी ओर एकदम आकर्षित होने लगते हैं, अन्यान्य बुद्धि की बातें जानने को तो बहुत समय चाहिए। झुककर नमस्कार करने और नियमपूर्वक आचार में कुछ शिक्षा नहीं होती; सरल, सभ्य तथा सम्मान-सूचक व्यवहार से शिक्षा जानी जाती है। बिना बुद्धि के शिक्षा भी बहुधा रद्द हो जाती है क्योंकि जो बात किसी खास समय एक मनुष्य को बहुत अच्छी लगी हो

वही सम्भव है कि दूसरे समय और मनुष्यों को बुरी लगे। शिष्टाचार की भी रीतियाँ हैं जैसे कि किसी से "महाशय" या "महाराज" लगाये बिना "हाँ" या "नहीं" कहना बिलकुल असभ्य है। कोई अपने से बातचीत करता हो उस पर ध्यान न देना या सभ्यता से उसको उत्तर न देना भी उतनी ही असभ्यता है। ऐसे व्यवहार से जो अपने साथ बातचीत करता हो वह मन में समझता है कि हम उससे घृणा करते हैं और उत्तर अथवा ध्यान देने के योग्य उसे नहीं समझते। शिक्षित मनुष्य के साथ जो कोई बातचीत करता है उसे वह सभ्यता से उत्तर देना नहीं भूलता। शिक्षित मनुष्य कहीं जाय तो स्वयं नीचे आसन पर बैठता है पर जब कोई ऊँचे पर बैठने को कहे तो जो आसन उसके योग्य हो उस पर जा बैठता है। यदि वह भोजन करने बैठे तो पहले नहीं खाने लगता है। धीरे-धीरे सभ्यता से खाता है और हँसते-मुख तथा ख़ुशी से सबके साथ खाकर उठता है। वह मुँह बनाकर यह कभी नहीं जताता कि उसे कोई काम अप्रसन्नता से करना पड़ता है।

सम्पूर्ण उत्तम संस्कार मिलने में जितनी कठिनता होती है उतनी और किसी बात में नहीं होती इसलिए उनका मिलना सबसे अधिक आवश्यक है। अतिशय नम्रता, धृष्टता तथा लज्जा की अच्छे संस्कारों में गणना नहीं है। कभी-कभी कुछ शिष्टाचार आवश्यक होता है, कुछ निश्चलता भी सर्वथा ज़रूरी है और बाह्य नम्रता से परम योग्यता सूचित होती है।

सुवर्ण के समान सद्गुण और विद्या में भी स्वाभाविक बल होता है पर जो उनको साफ़ न किया जाय तो उनकी बहुत कुछ कान्ति जाती रहती है। अधिकांश मनुष्य मैले सुवर्ण की अपेक्षा चमकती हुई पीतल को अधिक पसन्द करते हैं। फ्रांस के लोग अपने आनन्दमय, सरल तथा योग्य गुणों से कितने ही पाप ढके रखते हैं।

लार्ड बेकन* ने कहा है कि "सभ्यता का व्यवहार सदा प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए मानो एक प्रशंसा-पत्र है।" वास्तव में यह सद्गुणों को पहले ही प्रकाशित कर देने का रुचिकर साधन है जिससे मनुष्यों को बड़ी सुगमता होती है।

शिक्षित मनुष्यों को राज-सभा के आचार का भी ज्ञान रखना चाहिए। भिन्न-भिन्न राज-सभाओं में राजा के आदर-सत्कार करने का नियम भिन्न-भिन्न भाँति का होता है और

---

* लार्ड बेकन का जन्म लंडन नगर में २२ जनवरी सन् १५६१ ई० को हुआ। १३ वर्ष की उम्र में उसने ट्रीनिटी कालेज में प्रवेश किया परन्तु कुछ काल के अनन्तर ही वह स्वदेश को लौट आया। वहाँ उसने क़ानून पढ़ा और कुछ दिन तक वकालत की। सन् १६१२ में वह मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया गया। जब वह इस पद पर था तब उस पर उत्कोच ( रिश्वत ) लेने का अभियोग लगाया गया जिसे उसने स्वयं अङ्गीकार भी कर लिया। बेकन अद्वितीय विद्वान् था। दर्शनशास्त्र की ओर उसकी विशेष प्रवृत्ति थी। उसने विज्ञान के कई उत्तम ग्रन्थ लिखे हैं। सन् १६२६ में उसकी जीवन-लीला समाप्त हुई।

जो उसका ज्ञान नहीं हो तो पहले से ही पूछ ताछकर उसे जान लेना चाहिए जिससे कि समय पर त्रुटि न हो।

ऐसे मनुष्य बहुत कम हैं कि जो कुछ व्यक्तियों को अपने से वास्तव में श्रेष्ठ मानकर भी उनका योग्य सत्कार नहीं करते। अनुभवी तथा शिष्ट मनुष्य सरल तथा स्वाभाविक रीति से उनका पूरा आदर-सत्कार करते हैं और उसमें कुछ आडम्बर नहीं करते। जो सुसङ्गति में न रहे हों ऐसे मनुष्य सत्कार तो करते हैं पर वह असभ्य लगता है और यह मालूम हो जाता है कि वे अनभ्यस्त काम कर रहे हैं। ऐसा करने में उन्हें बड़ी कठिनता पड़ती है। पर मैंने कभी नहीं देखा कि कोई मनुष्य किसी ऐसे जनसमुदाय में जाकर कि जिसकी वह प्रतिष्ठा करता हो, आलस्य करे, सीटी बजावे, या सिर खुजलावे। इसलिए ऐसी मण्डली में केवल यही बात ध्यान देने के योग्य है कि अन्य सब भद्र मनुष्यों के बर्ताव के अनुसार ही सरल तथा सुन्दर रीति से सबका आदर-सत्कार किया जाय।

जिस समुदाय में भिन्न भिन्न प्रकार के मनुष्य हों वहाँ जिसका प्रवेश होने दिया उसका कम से कम उस समय तो और लोगों के समान ही अधिकार है, इसलिए उसके साथ सभ्यता से बर्तना ही न्याय है। सरलता में कोई हानि नहीं परन्तु असावधानता और अनादर का बिलकुल निषेध है। अगर कोई तुम्हारे निकट आकर निरर्थक तथा मूर्खता की बातें करने लगे तो जो तुम उस समय बिलकुल ध्यान नहीं दोगे तो

उसे यह भास होगा कि तुम उसे मूर्ख गिनते हो और उसकी बात को सुनने के योग्य नहीं समझते। यह उसे नहीं मालूम होने देना चाहिए। इससे तुम्हारी ग्रामीणता सूचित होती है। जिन वस्तुओं पर सबका समान अधिकार है उनमें से तुम्हें कोई वस्तु, अर्थात् कोई खाने का पदार्थ या अच्छा आसन, अपना ही नहीं समझना चाहिए। तुम्हें उसको स्वयं न लेकर पहले औरों को देना चाहिए। ऐसा करने से तुमको हानि न होगी क्योंकि और लोग तुम्हें उसे अवश्य दे देंगे और तुम्हें अपना पूरा-पूरा भाग मिले बिना भी नहीं रहेगा।

तीसरी भाँति की अच्छे संस्कारों की रीति तो प्रत्येक स्थल की भिन्न होती है। यह केवल प्रत्येक देश की ही भिन्न नहीं होती किन्तु एक देश के प्रत्येक नगर में भी भिन्न-भिन्न होती है। लेकिन इसका आधार भी ऊपर की दोनों रीतियाँ हैं। मूल तत्त्व तो वे ही हैं। प्रत्येक स्थान के आचार के अनुसार उनका ही भिन्न-भिन्न रूप हो जाता है। ऊपर की दोनों रीतियाँ जानने से ही यह रीति तो ध्यान देने और देखने से सहज में आ जाती है। वास्तव में देखा जाय तो यही शिक्षा की कान्ति, परिष्कार तथा उत्कर्ष है। इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य जहाँ जाता है वहाँ की स्थानिक रीति के ऊपर ध्यान रखता है और शिक्षित तथा शिष्ट मनुष्यों के आचार के अनुसार ही आचरण करता है। भद्र मनुष्य जिस भाँति अपने से श्रेष्ठ, समान तथा नीच पदवी के लोगों से व्यवहार रखते हैं उसकी

वह देख-भाल करता रहता है। छोटी-छोटी बातों को भी छोड़ना नहीं चाहिए। वे चित्रकार के चित्र पर अन्त में क़लम फेरने के समान हैं। जैसे किसी भद्दे चित्र को पूर्ण करते समय अन्त में चित्रकार सावधानता से उस पर एक दो क़लम फेर-कर उसकी छबि बदल देता है ऐसे ही अन्य शिष्ट मनुष्यों की हर एक बात की परताल करने से मनुष्य के आचरण में भी भेद हो जाता है। अशिक्षित मनुष्य को यह बात नहीं मालूम होती है; केवल रसज्ञ ही इसकी परीक्षा कर सकते हैं। बुद्धि-मान् मनुष्य शिष्ट मनुष्यों के भाव, वस्त्र तथा चाल-ढाल पर भी भली भाँति ध्यान रखता है और उनका अनुकरण करता है। ऐसा शरीर का लालित्य बहुत आवश्यक है। मनुष्य बुद्धि के द्वारा गुणों को समझें उसके पहले ही उनके विचार लावण्य के कारण अपने विषय में उत्तम हो जाते हैं। लावण्य मोहिनी रूप है जिससे सबका मन अपनी ओर आकर्षित हो जाता है। इसका इतना आश्चर्यदायक प्रभाव होता है कि इसे लोग ईश्वरीय गुण गिनते हैं।

सारांश यह है कि मनुष्य-जाति से आदर तथा प्रशंसा प्राप्त करने के लिए जैसे विद्या, प्रतिष्ठा और सद्गुण की आवश्यकता है वैसे ही बातचीत और साधारण व्यवहार में रुचिकर होने के लिए सभ्यता और शिक्षा भी ज़रूरी हैं। संसार में अच्छी बुद्धि-वाले कम होते हैं और जिनमें अच्छी बुद्धि नहीं होती वे बुद्धि-मानों की योग्यता जान नहीं सकते, पर सब मनुष्य प्रायः विनय,

भलमनसाहत और मीठी बोल-चाल से ही मनुष्य की तुलना कर लेते हैं क्योंकि वे इनका अच्छा प्रभाव अनुभव करते हैं और इनसे ही समाज में स्वस्थता तथा आनन्द रहता है।

अब उपसंहार में मैं तुमसे इतना ही कहता हूँ कि बिना शिक्षा के अगाध विद्या भी निःसंदेह अरुचिकर तथा आयास-जनक होती है और बिना विद्या के शिक्षा भी किसी काम की नहीं होती। परन्तु विद्या से शिक्षा को दृढ़ सहायता मिलती है और शिक्षा से विद्या झलक उठती है और उसमें सुन्दरता आ जाती है। अशिक्षित मनुष्य न तो अच्छी सङ्गति के योग्य होता है और न उसमें उसका प्रवेश हो सकता है। जिस मनुष्य को बिलकुल शिक्षा नहीं मिली वह व्यवहार और सङ्गति दोनों के अयोग्य होता है।

इसलिए तुम्हें अपने विचार और कर्म्मों का प्रधान लक्ष्य उत्तम शिक्षा ही रखनी चाहिए। जो मनुष्य अपनी उत्तम शिक्षा के कारण प्रसिद्ध हैं उनका आचरण और व्यवहार सावधानता से देखते-भालते रहो और उनका तुम केवल अनु-करण ही न करो किन्तु उनसे उत्तम होने का उद्योग करो जिससे अन्त में तुम उनके समान तो हो जाओ। यह बात निश्चय जानो कि जैसे धर्म-सम्बन्धी सद्गुणों में दान श्रेष्ठ है ऐसे ही सब सांसारिक गुणों में उत्तम शिक्षा है। देखो, यह और गुणों को कैसा झलकाती है और अपनी कमी को कैसे छिपाती है।

# लालित्य

शरीर की, चेहरे की तथा बोलने की रीति की मनोहरता बहुत आवश्यक है। यदि कोई सभ्य मनुष्य एक बात मनोरञ्जक ढंग में सुन्दरता और स्पष्ट रीति से कहता है तो उससे अन्य मनुष्य प्रसन्न होते हैं पर उसी बात को यदि कोई असभ्य मनुष्य मुँह बनाकर अस्पष्ट रीति से कहता है तो उससे उनको व्याकुलता होती है। कामदेव की कामिनी रति को भी कवि इन तीनों भूषणों से युक्त मानते हैं और इनके बिना सौन्दर्य को भी वृथा बताते हैं। सरस्वती को भी इन तीनों भूषणों की आवश्यकता है क्योंकि इनके बिना विद्या में आकर्षण शक्ति नहीं होती।

समान योग्यतावाले मनुष्यों में एक विशेष मनुष्य हमें औरों की अपेक्षा अधिक प्रसन्न करता है तथा हमारा मन हर लेता है। इस बात की गम्भीरता से जाँच करने पर अनुभव होता है कि जो हमें प्रसन्न कर सकते हैं उनमें मनोहरता होती है पर औरों में वह नहीं होती। मैंने देखा है कि मनोरञ्जक आकृति, सुन्दर शरीर तथा मनोहर अवयवों से युक्त स्त्रियाँ किसी का मनोरञ्जन नहीं कर सकतीं पर साधारण स्त्रियाँ लावण्य होने से प्रत्येक मनुष्य को मोहित कर लेती हैं।

मनुष्य-जाति में लालित्य न होने के कारण बहुधा यथार्थ गुणी पुरुषों का भी अनादर और अपमान होता है परन्तु

लालित्य से क्षुद्र बुद्धि, साधारण ज्ञान और अल्प योग्यतावाले मनुष्यों का भी आदर और प्रशंसा होती है।

अब मैं यह लिखता हूँ कि लालित्य क्या है और उसे किस भाँति सम्पादन करना चाहिए।

## भाषण

प्रथम भाषण से ही प्रायः मनुष्य की तुलना हो जाती है। जो उसकी बोल-चाल से प्रसन्नता हो तो उसमें गुण न होने पर भी लोग उसको गुणी समझ लेते हैं पर उसकी बोल-चाल कठोर हो तो लोग बिना विचारे उसे बुरा बताने लगते हैं और यदि उसमें वास्तव में गुण हों तो उन्हें भी नहीं मानते। यूरुप में यदि किसी कुलीन स्त्री के हाथ में से पङ्खा गिर पड़े तो असभ्य उसे उठाकर जैसे देता है वैसे ही शिक्षित मनुष्य भी देता है परन्तु देने-देने में बड़ा अन्तर हो जाता है। शिक्षित मनुष्य पङ्खा देते समय सुन्दर शब्द कहकर उसे प्रसन्न करता है परन्तु असभ्य मनुष्य ऐसी अनुचित रीति से उसे देता है कि इतने ही में उसकी हँसी होती है। शिक्षित मनुष्य का आचरण सभ्य और गति सुन्दर होनी चाहिए। जब वह किसी समाज में जाय तब उसे अपने आचरण और भाषण पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए। उसे दीनता बिना मानप्रद, अतिशय परिचय बिना सरल, आडम्बर बिना सभ्य और बाह्य प्रपञ्च तथा युक्ति बिना सान्त्वना-शील होना चाहिए। सांसारिक

व्यवहार में स्त्री तथा पुरुष दोनों का बुद्धि की अपेक्षा हृदय के ऊपर अधिक आधार रहता है। हृदय का मार्ग इन्द्रियों के द्वारा है, इसलिए उनके नेत्र तथा कानों को प्रसन्न करने से आधा काम तो हो गया समझना चाहिए।

## प्रसन्न करने की युक्ति

यह बड़ी पुरानी और सच्ची कहावत है कि जो राजा अपनी प्रजा के हृदय में राज्य करते हैं उनका ही राज्य निर्भय और स्वतन्त्र होता है—सेना की अपेक्षा लोक-प्रियता उनके राज्य की अधिक अंश में रक्षा करती है और प्रजा के मन में भय की अपेक्षा भक्ति होने से ही सब उनकी आज्ञा में रहते हैं। साधारण मनुष्यों पर भी यह बात कितने ही अंशों में वास्तव में घटित होती है। जिन मनुष्यों में दूसरों को प्रसन्न करने और जिनके साथ बातचीत करें उनसे प्रीति सम्पादन करने की उत्तम युक्ति होती है वे बलवान् होते हैं और ऐसा बल दूसरी भाँति नहीं मिल सकता। इसकी सहायता से उनके अभ्युदय होने में सुगमता होती है और किसी भाँति उनका अधःपतन होता हो तो वह भी नहीं होता। तुम्हारे समान-वयस्क युवकों में से अधिकांश मिलनसारी को आवश्यक नहीं समझते पर जब वृद्ध तथा पण्डित हो जाते हैं तब वे उस गुण को प्राप्त करने का वृथा प्रयत्न किया करते हैं जिसका वे असावधानता के कारण तरुण अवस्था में सम्पादन नहीं कर सके। यह उपयोगी साधन तीन मुख्य कारणों से उन्हें प्राप्त नहीं होता।

१ गर्व, २ प्रमाद, तथा ३ अनुचित लज्जा। पहली बा
में मुझे तुम पर शङ्का नहीं है। ऐसी नीच बात तो तुम्हारे मन में आ ही नहीं सकती। कमरा झाड़ने या जूता साफ़ करनेवाले नौकर की अपेक्षा अपने उत्तम होने का विचार तुम नहीं कर सकते और मुझे विश्वास है कि तुम करते भी नहीं होगे; परन्तु तुम्हारे और उसके बीच में जो अन्तर दैवयोग से हो गया है उसे देख तुम्हें आनन्द होना अनुचित नहीं कहा जा सकता। तुम इस लाभ का सुख भोगो, पर जो इससे हीन हों उनका अपमान मत करो और ऐसा कोई काम मत करो जिससे उन्हें इस लाभ की न्यूनता का स्मरण हो। मैं तो व्यवहार में अपने समान पद के मनुष्यों की अपेक्षा नौकर तथा नीच पद के मनुष्यों के साथ अधिक सचेत रहता हूँ क्योंकि मुझे यह आशङ्का रहती है कि कहीं वे मुझ पर यह शङ्का न करने लगें कि दैवयोग से जो अनुचित अन्तर मेरे और उनके बीच में हो गया है उसे उन्हें जताने की मेरी इच्छा है। युवक इस बात पर पूरा-पूरा ध्यान नहीं देते और मिथ्या कल्पना कर लेते हैं कि आज्ञापक प्रकृति और अधिकार-सूचक स्वर, उत्साह तथा साहस के चिह्न हैं।

दूसरी बात पर योग्य ध्यान न देने से सदा लोगों को यह अनुमान होगा कि हम घमण्डी हैं तथा औरों का तिरस्कार करते हैं। यदि यह सच हो तो अक्षम्य है। इस बात में युवक बहुत अपराध करते हैं जिससे भलेमानसों को बड़ा क्रोध होता है। किसी विशेष परिचित समुदाय तथा बुद्धिमान्, सुन्दर, प्रतिष्ठित

और तेजस्वी मनुष्यों पर ही वे पूर्णतया ध्यान देते हैं तथा और मनुष्यों को अपने दृष्टिपात के योग्य भी नहीं समझते, इसलिए उनके साथ साधारण सभ्यता का व्यवहार भी नहीं करते। यह मैं स्पष्टतया स्वीकार करता हूँ कि जब मैं तुम्हारे बराबर था तब मुझमें भी अनेक दोष थे और उनमें से यह भी एक था। कुछ राज-समाज से मैं मोहित हो गया था और उसे प्रसन्न रखने का मैं अधिक ध्यान रखता था। उसके अतिरिक्त और सबको मैं साधारण सभ्यता के योग्य भी नहीं समझता था। राजमंत्री, विद्वान्, मनोहर स्त्रियाँ तथा तेजस्वी और नामाङ्कित मनुष्यों पर मैं पूर्ण ध्यान देता था तथा चतुरता से उनका आदर-सत्कार करता था पर अतिशय अविवेक तथा मूर्खता के कारण और लोगों की ओर मैं देखता भी नहीं था इसलिए वे मुझसे अप्रसन्न रहते थे। इस मूर्खता के कारण परिचित स्त्री-पुरुषों में से मेरे सहस्रों शत्रु हो गये। मैंने उन्हें बिलकुल तुच्छ तो गिना पर जब मुझे उनकी उत्तम सम्मति की आवश्यकता हुई तब मेरे साथ अपकार करने का उन्हें अच्छा साधन मिल गया। वास्तव में तो मेरी मूर्खता से ऐसा हुआ था पर वे मुझे घमण्डी समझते थे। कुरूप स्त्रियों तथा मध्यम श्रेणी के मनुष्यों को मैं मूर्खता से तिरस्कार के योग्य समझता था और उनका अनादर करता था इससे वे सब मेरे शत्रु हो गये थे; पर ज़रा ध्यान देने और साधारण सभ्यता के व्यवहार से ही मैं उन्हें मित्र बना सकता था। यह बात ठीक है कि यह काम प्रायः अरुचिकर

लगता है तथा मलिन और आलसी मनुष्यों और वृद्धों तथा कुरूप स्त्रियों पर लोग बड़ी अप्रसन्नता से ध्यान देते हैं लेकिन बहुत से लोगों से प्रशंसा तथा परिचय प्राप्त करने का यह मूल्य बहुत कम है। इनकी प्राप्ति तो इससे अधिक मूल्य पर भी योग्य है। तुमको एक और उपदेश देकर अब यह बात समाप्त करता हूँ। तुम्हारा जिन पुरुषों तथा स्त्रियों से परिचय हो उन्हें विशेष मनोयोग और भाषण से तुम अपना बना लो और प्रत्येक मनुष्य को भी साधारण सभ्यता तथा ध्यान से इतना प्रसन्न रक्खो कि यदि वह तुमको भली भाँति न चाहे तो भी या तो तुम्हारी प्रशंसा ही करे या तुम्हारे विषय में कुछ न कहे।

अनुचित लज्जा से युवा मनुष्यों को बहुत मित्र बनाने में केवल हानि ही नहीं होती पर उससे उनके अनेक शत्रु हो जाते हैं। वे किसी काम को ठीक जानकर भी उसे करने से शरमाते हैं और किसी भद्र मनुष्य या स्त्री की तात्कालिक हँसी से डर-कर विपरीत काम भी कर बैठते हैं। मेरे साथ भी ऐसा हो चुका है। जब मैं अपने विचार से शिष्ट-समाज में होता था तब मेरी बहुधा यही इच्छा रहती थी कि न तो कोई तुच्छ मनुष्य मुझे मिले और न बुलावे। केवल तात्कालिक हास्य के भय से मैं शरमाकर अयोग्य रीति से उत्तर दे ऐसे मनुष्यों को अप्रसन्न किया करता था। उस समय मैंने यह विचार नहीं किया कि जो मनुष्य अब मेरी हँसी करते हैं वे पीछे इस कारण से ही मेरा आदर करेंगे।

अपनी विचार-शक्ति के अनुसार जो ठीक हो तथा अपने से बढ़कर अनुभवी, पण्डित और शिक्षित मनुष्यों को जो कुछ करता देखो उसे करने के लिए भय अथवा लज्जा के बिना तुम सदा तैयार रहो।

मेरे इतना कहने पर तुम कदाचित् कहोगे कि हर एक मनुष्य को प्रसन्न रखना असम्भव है। यह बात मैं अङ्गीकार करता हूँ। पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि जहाँ तक हो सके वहाँ तक भी तुम सबको प्रसन्न करने का यत्न न करो। मैं तो यह भी निःसन्देह स्वीकार करता हूँ कि हर एक मनुष्य के कुछ न कुछ शत्रु अवश्य होंगे। पर मैं तुमसे अपने बड़े अनुभव से सत्य कहता हूँ कि जिसके मित्र अधिक तथा शत्रु कम हों वह बड़ा बलवान् होता है और सुगमता से बहुत ऊँची पदवी पर पहुँच जाता है क्योंकि उससे ईर्ष्या करनेवाले बहुत कम होते हैं। यदि उसका अधःपतन हो तो वह भी बहुत धीरे-धीरे होता है और सब उस पर करुणा करते हैं। यह बात ग्रहण करने के योग्य है। मैंने जो रीति बताई है उसके अनुसार तुम्हें इसे ग्रहण करना चाहिए। अब उपसंहार में दो उदाहरण देकर मैं इस विषय को समाप्त करता हूँ।

आरमंड का भूत-पूर्व ड्यूक राज्य में सबसे निर्बल मनुष्य था; पर साथ ही साथ वह बुद्धिमान् तथा मिलनसार भी था। उसकी राजनैतिक तथा सांग्रामिक शिक्षा का सरल तथा कोमल स्वभाव के साथ संयोग होने से उसमें ऐसी यथार्थ सुजनता,

अद्भुत आकर्षण-शक्ति और युक्ति से ध्यान देने की आदत हो गई थी कि इन्होंने उसकी बुद्धि की कमी को ढक लिया था। इन गुणों के कारण बहुत से मनुष्य उससे प्रेम तो करते थे पर उसका उतना आदर नहीं करते थे। एन (Anne)* नामक रानी की मृत्यु के अनन्तर उस पर कलङ्क लगाया गया था पर केवल ऊपरी दिखाव के लिए ही उसके दोषी ठहराने की आवश्यकता थी, क्योंकि जिन लोगों को दोषी ठहराना आवश्यक था उनके साथ वह भी शरीक था। यद्यपि उस समय पक्षपात बहुत था तो भी उस पर दोष लगाने में किसी की यह इच्छा नहीं थी कि उसे कुछ हानि हो, इसी लिए उस पर बल-पूर्वक दोषा-रोपण नहीं किया गया था। साधारण दोषारोपण के प्रश्न को हाउस आफ़ कामन्स के जितने सभासद स्वीकार करते थे उनसे बहुत कम मनुष्यों ने इस ड्यूक पर दोष स्वीकार किया था। राज्य के प्रधान मन्त्री मिस्टर स्टानहोप ने, जिसने कि इस पर दोष लगाया था, बहुत शीघ्र राजा को समझा-बुझाकर इसके लिए कुछ प्रबन्ध करवाना और दूसरे दिन राजा के सम्मुख इसे

---

* ग्रेटब्रिटन और आयरलैंड की रानी एन का जन्म ६ फ़रवरी सन् १६६४ ई० को हुआ। सन् १६८३ में डेनमार्क के राजा के भाई प्रिंस जार्ज से उसका विवाह हुआ। तृतीय विलियम की मृत्यु के अनन्तर सन् १७०२ में वह राजसिंहासन पर बैठी। उसके राज्य की सबसे बड़ी बात इँगलैंड और स्काटलैंड का मेल था, जिससे दोनों का नाम ग्रेट-ब्रिटन हुआ। उसकी मृत्यु २० जुलाई सन् १७१४ को हुई। अँगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि पोप, स्विफ़्ट, तथा एडीसन इसके समय में ही हुए थे।

उपस्थित कराना चाहा था पर राचेस्टर के भूतपूर्व बड़े पादरी आटरवरी ने समझा कि ड्यूक आरमंड के हटने से जैकोबाइट* पक्ष की हानि होगी इसलिए उसने स्वयं जाकर इस बेचारे मन्द-बुद्धि ड्यूक से कहा कि तुम यहाँ से भाग जाओ। यहाँ तुम अपमान के साथ सेवा में रक्खे जाओगे और क्षमा नहीं किये जाओगे। जब इसके ऊपर मृत्यु-दण्ड का वारंट जारी हुआ तब लोगों का मन बिगड़ा और नगर में घबराहट पैदा हो गई। संसार में इसका कोई ख़ास शत्रु नहीं था किन्तु सैकड़ों मित्र थे। इसका कारण यह था कि हर एक मनुष्य को प्रसन्न करने की इसकी स्वाभाविक इच्छा रहती थी, जिसको पूरा करने में वह बुद्धि को छोड़ अपनी शिक्षा तथा युक्ति से भी काम लेता था। दूसरा उदाहरण मार्लबोरो के भूत-पूर्व ड्यूक का है। वह प्रसन्न करने की युक्ति की आवश्यकता जानता था इसलिए उसने इसे भली भाँति सम्पादन किया था। उसने इसके द्वारा सबसे बढ़कर लाभ उठाया था। जिसे वह चाहता अपना बना लेता था। वह यह भली भाँति समझता था कि प्रत्येक मनुष्य को अपना बना लेने में कुछ न कुछ लाभ अवश्य है इसलिए वह हर एक को अपना लेता था। मन्त्री तथा सेनापति के पद पर होने के कारण उसके राजकीय तथा पाक्षिक शत्रु बहुत थे; पर उसका

---

* जैकोबाइट वे कहाते थे जो सन् १६८८ के राज्य-व्यतिक्रम के अनन्तर भी राज्य-च्युत राजा द्वितीय जेम्स और उसकी सन्तति के अनुगामी रहे।

ख़ास शत्रु एक भी न था। यद्यपि उसका चरित्र लोभ-लाञ्छित था तथापि वे लोग उससे स्वयं प्रेम करते थे जिन्होंने प्रसन्नता से उसे निकाल दिया होता, उसका अपमान किया होता और सम्भव है कि उसे दोषी ठहराया होता। वह सबको प्रसन्न, और अपनी ओर आकर्षित करने में अधिक लगा रहता था। उसके मुख पर असाधारण मिठास और नम्रता, भाषण की रीति में कोमलता तथा प्रत्येक चेष्टा में लावण्ययुक्त गौरव था। वह बिलकुल क्षुद्र मनुष्यों को प्रसन्न करने के लिए तुच्छ बातों पर भी एक सा तथा सूक्ष्म ध्यान रखता था। उसे केवल यही युक्ति मालूम थी। इस पर वह बड़ा ध्यान रखता था और इससे लाभ उठाता था क्योंकि इसके समान राज्य-लोभी, घमण्डी तथा कृपण मनुष्य और कोई नहीं हुआ।

## मनोरञ्जक विषयों को पसन्द करना

सभ्य मनुष्य सदा मनोरञ्जक विषयों को पसन्द करने में भी पूर्ण ध्यान देता है। वह उत्तम विषयों में ही शामिल होता है क्योंकि वह यह भली भाँति समझता है कि सामान्य विषयों के ग्रहण करने से मनुष्य क्षुद्र गिना जाता है। यह कहे बिना मैं नहीं रह सकता कि बिना गान-विद्या में कुशल हुए किसी बाजे को उठाकर बजाने लगना भलेमानस को नहीं सुहाता। गान-विद्या की गणना उत्तम कलाओं में है और वह किसी भद्र मनुष्य के अयोग्य भी नहीं है पर कोई शिष्ट मनुष्य सभ्य-समाज

में बाँसुरी या सारङ्गी का बजाना न जानकर यदि उसे बिगाड़े तो वह क्षुद्र गिना जाता है। तुम्हारी गान में रुचि हो तो तुम उसे सुनो, सारङ्गीवाले को पैसे देकर उससे सारङ्गी बजवाओ पर तुम स्वयं भूलकर भी कभी सारङ्गी मत बिगाड़ो। इससे भद्र मनुष्य भी क्षुद्र तथा तिरस्कार के योग्य हो जाता है और बहुधा बुरी सङ्गति में पड़कर उत्तम विषयों में उपयोग करने के योग्य समय को वृथा नष्ट करता है।

## गपशप

सभ्य-समाज में जिस भाँति गपशप होती है वैसी ही गपशप करना तुमको सीखना चाहिए। तुमको यद्यपि यह बात बहुत तुच्छ जँचती है पर जिसमें सब भाँति के मनुष्य हों ऐसी मण्डली तथा भोज में यह बात अत्यन्त उपयोगी है। बातचीत में कभी-कभी प्रदेश के राजाओं के विषय में बातें होने लगती हैं और उनमें बड़ा आनन्द आता है। प्रायः भिन्न-भिन्न राजाओं की सेना की संख्या, उनकी उत्तमता या अधमता, अथवा उनकी रण-शिक्षा या वस्त्र के विषय में बात चल उठती है। कभी-कभी राजा तथा बड़े आदमियों के कुटुम्ब, विवाह तथा सम्बन्ध का प्रसङ्ग चल उठता है और कभी-कभी प्रसिद्ध तमाशे, नाच तथा स्वाँग इत्यादि के महत्त्व पर गपशप होती है। ऐसे अवसर पर भोजन के पदार्थों की प्रशंसा करने का ढङ्ग भी जानना चाहिए। यह तो ठीक है कि ये बातें बहुत तुच्छ हैं पर इनसे ही बार-

बार अधिक काम पड़ता है इसलिए इन्हें भी लालित्य के साथ प्रकाशित करना चाहिए।

## स्वच्छता

अङ्ग सदा स्वच्छ रखना चाहिए। हाथ, दाँत तथा नखों को तो अवश्य साफ़ रखना चाहिए। मलिन मुख से यथार्थ में बुरा परिणाम होता है। उससे दाँतों में असह्य पीड़ा होती है, वे गलने लगते हैं तथा मुख में से दुर्गन्धि आने लगती है, इसलिए भलेमानस उसे पसन्द नहीं करते। मलिन हाथ तथा कुरूप नख के समान निन्दनीय और कोई अवयव नहीं होता। नख बढ़ने नहीं देने चाहिएँ; उनके किनारे चिकने, गोल तथा साफ़ रखने चाहिएँ जिसमें वे काले न दीखें। चाहे जो कुछ हो, कान या नाक में अँगुली कभी नहीं डालनी चाहिए क्योंकि इससे मनुष्य-समाज में असभ्य और अपवित्र माना जाता है। प्रति दिन प्रातःकाल कानों को भली भाँति धोना चाहिए और नाक साफ़ करने के पीछे उसे रूमाल में नहीं देखना चाहिए। ये बातें इतनी तुच्छ दीखती हैं कि इनका कहना भी अनुचित मालूम होता है पर जब देखोगे कि सहस्रों तुच्छ बातों के इकट्ठी होने से ही प्रसन्न करने के लिए एक बड़ी बात बन जाती है तब मेरी समझ में इन छोटी-छोटी बातों को तुम्हें तुच्छ नहीं कहना पड़ेगा। बहुधा स्वच्छ अङ्ग तथा स्वच्छ वस्त्र जितने स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं उतने ही दूसरों को बुरे न लगने के लिए भी

ज़रूरी हैं। जो मनुष्य बीस वर्ष की अवस्था तक स्वच्छता पर ध्यान नहीं देता वह चालीस वर्ष की आयु में मलिन हो जाता है और पचास वर्ष में उसकी मलिनता असह्य हो जाती है। मैं सदा से इसे एक सिद्धान्त समझता रहा हूँ और अपने अनुभव से मैंने इसे सच पाया है।

## सहानुभूति

जब सभ्य मनुष्यों को अपने से उच्च, समान तथा नीच पद के मनुष्यों के साथ शोक या हर्ष में सहानुभूति प्रकाशित करते तुम सुनो तो तुम्हें उनके कथन पर पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए। उनके स्वर तथा मुख के भाव का भी स्मरण रखना चाहिए क्योंकि समयानुकूल आकृति से सब प्रसन्न होते हैं। सभ्य मनुष्य में भाषण की एक विशेष रीति होती है। वह समय के अनुसार भाव दिखाकर सहानुभूति प्रकाशित करता है। किसी का विवाह हुआ हो और उसे धन्यवाद देना हो तो सभ्य मनुष्य हँसमुख होकर उससे मिलने पर कहेगा कि "अहा हा! क्या ही आनन्द का अवसर है। क्या तुम इस बात का अनुभव कर सकते हो कि मेरे चित्त में जो आनन्द का स्रोत इस समय उमड़ रहा है वह मेरे वचन से कहीं बढ़कर है।" यदि कोई विपत्ति-ग्रसित हो तो उसके पास जाकर वह मलिन मुख करके मन्द स्वर से कहेगा कि "हा, हंत! कैसे शोक की बात है। हा! मुझे आपका दुःख अपना सा मालूम होता है। हा! दुर्दैव! क्या यह वज्र हमारे ही सिर पर गिरना था।"

## वाणी

चाहे जो भाषा बोली जाय पर शुद्ध वाणी हर एक सभ्य मनुष्य को भली भाँति सीखनी चाहिए। उत्तम सङ्गति के शिष्ट मनुष्यों में कोमल वाणी स्वाभाविक होती है।

## वस्त्र

प्रसन्न करने की युक्ति प्राप्त करने का एक साधन पोशाक भी है इसलिए इस पर भी ध्यान देना चाहिए क्योंकि मनुष्य के वस्त्रों से ही उसके आचरण तथा समझ के विषय में विचार किये बिना किसी से नहीं रहा जाता। वस्त्रों में जितना आडम्बर होता है उतनी ही मनुष्य की बुद्धि में कमी समझी जाती है। बुद्धिमान् मनुष्य पोशाक में कुछ चटक-मटक नहीं करते। वे तो स्वयं ही स्वच्छ रहते हैं परन्तु असभ्य मनुष्य दूसरों को दिखाने के लिए ऐसा करते हैं। आसपास के रहने-वाले बुद्धिमान् और सभ्य मनुष्य जैसे वस्त्र पहनते हों वैसे ही प्रत्येक मनुष्य को पहनने चाहिएँ। जो उनसे अधिक शृङ्गार करता है उसे रूप-गर्वित कहते हैं और जो बुरी पोशाक पहनता है वह बड़ा असावधान गिना जाता है; पर बुरे वस्त्र पहनने की अपेक्षा चटक-मटक करना अच्छा है क्योंकि जैसे-जैसे अवस्था तथा विचारशक्ति की उन्नति होगी वैसे ही वैसे चटक-मटक की अवनति होती जायगी।

साधारण और रूप-गर्वित मनुष्य के वस्त्रों में केवल इतना ही अन्तर है कि रूप-गर्वित अपने वस्त्रों से अपनी प्रतिष्ठा समझता है और बुद्धिमान् इस बात पर हँसता है। पर वह यह भी जानता है कि पोशाक में चूक भी कभी नहीं होनी चाहिए। ऐसी अनेक रीतियाँ यद्यपि मूर्खता-युक्त हैं पर बुद्धिमान् मनुष्यों को उनके अनुसार ही बर्तना चाहिए। पुरुष-द्वेषी डायोजिनीस्* बड़ा बुद्धिमान् था जो उनसे घृणा करता था पर यह बात प्रकट करना उसकी मूर्खता थी।

वस्त्रों में किसी रूप-गर्वित से समानता अथवा उससे बढ़कर होने का यत्न नहीं करना चाहिए पर जिनसे हँसी न हो और गर्व न मालूम हो ऐसे वस्त्र पहनने चाहिएँ। आसपास

---

* डायोजिनीस् ग्रीस का एक तत्ववेत्ता हो गया है। उसे लोग 'मनुष्य-द्वेषी' कहा करते थे क्योंकि वह सबसे अलग वन में रहता था और किसी से कुछ मतलब नहीं रखता था। जब सिकन्दर कोरिन्थ में राज्य-सिंहासनासीन हुआ तब वहाँ के सब प्रसिद्ध मनुष्य उसे धन्यवाद देने आये परन्तु डायोजिनीस् नहीं आया। इस कारण सिकन्दर स्वयं उसके दर्शन करने गया और उसे धूप में बैठा पाया। सिकन्दर ने पूछा कि "क्या मैं किसी भाँति आपकी सेवा कर सकता हूँ?" डायोजिनीस् ने उत्तर दिया कि "केवल इस भाँति खड़े होने से जिसमें मेरे ऊपर की धूप न रुके।" उसके निरीह उत्तर का सिकन्दर के चित्त पर बड़ा असर हुआ और उसने अपने साथियों से, जो इस असभ्य उत्तर से क्रुद्ध हो गये थे, कहा कि "अगर मैं सिकन्दर न होता तो डायोजिनीस् होना पसन्द करता।"

के रहनेवाले समान-वयस्क विचारवान् मनुष्य जैसे कपड़े पहनते हों, जिनके वस्त्र अव्यवस्थित तथा चटक-मटक के न कहाते हों, उनके समान वस्त्र पहनने का ही हमको सदा स्मरण रखना चाहिए।

एक बार वस्त्र पहनकर उन पर फिर ध्यान नहीं देना चाहिए। वस्त्र अव्यवस्थित होने की शङ्का बिना जैसे उन्हें पहना ही न हो उसी भाँति स्वस्थ रहना चाहिए।

## विश्वास

मनुष्य अचल विश्वास को बहुधा निर्लज्जता समझते हैं पर यह बात अनुचित है। मेरी सम्मति तो यह है कि यदि किसी मनुष्य का बर्ताव प्रत्येक मण्डली में शान्त तथा स्वस्थ हो तो वह उसको बड़ा उपयोगी तथा लाभकारक होता है। यह मैं भली भाँति जानता हूँ कि ऐसा न करने से व्यवहार में कभी सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। जो कार्य चिन्ता तथा घबराहट से किया जाता है वह कभी सन्तोष-दायक नहीं होता। जब तक कोई मनुष्य किसी समाज में शान्त तथा स्वस्थ नहीं रहता तब तक न तो उसका वहाँ कुछ आदर होता है और न उसकी कुछ शोभा होती है। बाह्य नम्रता के साथ विश्वास तथा निर्भयता हो तो अपनी योग्यता प्रकाशित करने में कोई बाधा नहीं होती, परन्तु बाह्य निर्लज्जता के व्यवहार से मनुष्य बुद्धिहीन तथा निरुपयोगी गिना जाता है।

## आकुलता

बुद्धिमान् मनुष्य फुर्ती से कोई काम भले ही करे पर आकुलता से कभी नहीं करता क्योंकि वह जानता है कि जो काम आकुलता से किया जाता है वह अवश्य बिगड़ता है। कोई बुद्धिमान् मनुष्य किसी काम के पूरा करने में फुर्ती भले ही करे पर उससे उस काम के भली भाँति पूरा होने में कोई हानि नहीं होगी। छछोरे मनुष्यों को जब कोई काम करना पड़ता है तब वह उन्हें भारी प्रतीत होता है और वे उससे व्याकुल हो भागते, छिपते और घबराते हैं। वे चाहते हैं कि हर एक काम को झट-पट करें पर पूरा एक को भी नहीं कर सकते। बुद्धिमान् मनुष्य जो काम करने बैठते हैं उसे भली भाँति सम्पादन करने में जितना समय आवश्यक हो उतने ही का उपयोग करते हैं। वे सदा तत्पर रहने के कारण काम को शीघ्र पूरा कर डालते हैं। शान्ति तथा एकाग्र-चित्त से एक काम को पूरा कर पीछे वे दूसरा हाथ में लेते हैं।

## हास्य

बार-बार खिलखिलाकर हँसना मूर्खता और असभ्यता का चिह्न है। छोटी-छोटी बातों से जो प्रसन्नता हो उसे खिल-खिलाकर हँसने से प्रकट करने की रीति साधारण लोगों में होती है और उससे उन्हें आनन्द होता है। जिसका शब्द

सुन लिया जाय ऐसे हास्य के समान असभ्य तथा दोष-पूर्ण मेरी सम्मति में और कुछ नहीं है। यथार्थ समझ और बुद्धि की बात से कभी किसी को हँसी नहीं आती। ऐसी बात से मनोरञ्जन होता है और मुख पर मुसकुराहट पैदा होती है। नीच मनुष्य हँसी-ठट्ठे की या तुच्छ बातों पर खिलखिलाकर हँसते हैं पर बुद्धिमान् तथा शिक्षित मनुष्य ऐसा कभी नहीं करते। यदि कोई मनुष्य अपने पीछे कुरसी समझकर बैठने लगे पर वहाँ कुरसी न होने से चित्त गिर पड़े तो मण्डली के सब मनुष्य खिलखिलाकर हँसेंगे पर कोई बुद्धिमान् मनुष्य ऐसा नहीं करेगा। यह ऐसे हास्य के अनुचित तथा असभ्य होने का उत्तम प्रमाण है। इससे जैसा अरुचिकर शब्द होता है अथवा जैसा मुख कुरूप हो जाता है उस पर तो जितना कहा जाय थोड़ा है।

बहुत से मनुष्यों को बोलते समय हँसने का अभ्यास पड़ जाता है। मैंने देखा है कि कितने ही बुद्धिमान् मनुष्य बिल-कुल साधारण बात कहते समय भी हँसे बिना नहीं रह सकते इसलिए जो उन्हें नहीं जानते वे उन्हें स्वाभाविक मूर्ख गिनते हैं।

## पत्र-लेखन

भली भाँति पत्र लिखने की प्रणाली का बोध होना बहुत आवश्यक है क्योंकि हर एक मनुष्य को व्यवसाय अथवा

राज़ी-ख़ुशी के पत्र प्रायः प्रतिदिन लिखने पड़ते हैं। अक्षरों के योग्य स्थान पर लिखने तथा लिखने की रीति में त्रुटि नहीं होनी चाहिए। कभी कभी जो स्त्रियों से भूल हो जाय तो कोई हानि नहीं पर जहाँ तक हो भूल न होने देना ही अच्छा है।

पत्र सरल तथा स्वाभाविक होना चाहिए और जिसे हमको पत्र लिखना हो उसके सम्मुख होने पर जितनी बात उससे कही जाय उतनी ही पत्र में आनी चाहिए।

पत्र को मोड़ने, चिपकाने और उसके ऊपर सरनामा लिखने में सफ़ाई रखने से कभी नहीं चूकना चाहिए। पत्र की बाह्य रचना से ही कभी-कभी मनुष्य प्रसन्न अथवा अप्रसन्न हो जाते हैं इसलिए इस बात पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

## निन्दित नाम

सांसारिक क्षेत्र में प्रथम ही अवतीर्ण होते समय युवकों को अपने निन्दित नाम पड़ जाने से अधिक भय होना चाहिए और जहाँ तक हो ऐसा अवसर नहीं आने देना चाहिए। विचारवान् मनुष्यों की सम्मति के अनुसार इनसे छिछोरापन प्रतीत होता है पर साधारण लोगों के साथ व्यवहार में तो इनसे सत्यानाश ही हो जाता है। हास्य-जनक निन्दित नाम पड़ने से बहुत से मनुष्य बिगड़ गये हैं। शिक्षित मनुष्यों में प्रायः आचार, उच्चारण, रूप तथा भाषण में ज़रा भी दोष होने से निन्दित

नाम पड़ जाते हैं। इनसे बहुत हानि होती है इसलिए छोटे-छोटे दोष हों तो उन्हें दूर कर देना चाहिए।

## भाषण में उच्चारण

सुन्दर भाषण में निपुणता प्राप्त करने के लिए तुमको प्रतिदिन अपने किसी मित्र के सम्मुख ऊँचे स्वर से पढ़ना चाहिए; और तुमको उससे यह प्रार्थना करनी चाहिए कि जब तुम बहुत शीघ्र पढ़ो, जहाँ ठहरना चाहिए वहाँ न ठहरो, अनुचित स्थान पर ज़ोर दो या ऐसा उच्चारण करो जिसमें समझ में न आवे तब वह तुमको पढ़ने से रोककर तुम्हारी भूल सुधारे। यदि तुम एकान्त में भी ऊँचे स्वर से इस भाँति पढ़ो कि जिसमें कानों को रुचिकर हो तो इससे भी बड़ा लाभ है। जब तुम कुछ पढ़ते या बोलते हो तब दाँत नहीं दीखने चाहिएँ और हर एक शब्द का स्पष्ट उच्चारण करने के लिए अन्तिम अक्षर का उच्चारण अवश्य करना चाहिए। सबसे बढ़कर यह बात है कि जैसा विषय हो उसे वैसे ही स्वर से बोलना तुमको सीखना चाहिए। नित्य एकसा ही स्वर नहीं रखना चाहिए। इन बातों पर जो तुम प्रतिदिन ध्यान रक्खोगे तो कुछ समय में इनका अभ्यास हो जायगा और फिर इनके अनुसार बर्ताव करने में कोई कष्ट नहीं होगा।

बोलने की रीति तथा स्वर को तुच्छ नहीं गिनना चाहिए। कितने ही मनुष्य बोलने के समय प्रायः मुख बन्द कर लेते हैं

और बड़-बड़ करते हैं। कुछ मनुष्य बहुत शीघ्रता से बोलते हैं और बोलने में थूक उड़ाते हैं। कितने ही मनुष्य सदा चिल्लाकर इस भाँति बोलते हैं जैसे किसी बहरे के सामने बोलते हों और कोई-कोई बहुत मन्द स्वर से बोलते हैं। प्रायः इन सबकी बोली समझ में नहीं आती। ऐसी बुरी आदतें अरुचिकर और असभ्य हैं पर यदि ध्यान दिया जाय तो उनसे पीछा छुड़ाना कुछ कठिन नहीं है। यह उन साधारण मनुष्यों का लक्षण है जिन्होंने अपनी शिक्षा पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया है। इन छोटी-छोटी बातों के ऊपर ध्यान देना कितना आवश्यक है यह तुम नहीं सोच सकते हो परन्तु बड़े-बड़े बुद्धिमान् मनुष्यों का भी ऐसे छोटे-छोटे दोषों से अपमान होता है और बुद्धिमान् न होने पर भी जो इन दोषों से रहित हैं उनका सत्कार होता है।

## लेखन-शैली

विचारों का आच्छादन लेखन-शैली है। तुम्हारे विचार चाहे बहुत ही अच्छे हों पर जो भाषा ग्राम्य, कठोर तथा भद्दी होगी तो उसका उसी भाँति अनादर होगा जैसे तुम्हारे सम तथा सुन्दर शरीर का चिथड़े और फटे कपड़े पहनने से हो, क्योंकि अधिकांश मनुष्य लेख के आशय पर अधिक ध्यान न देकर लेखन-शैली पर ही विचार करते हैं।

तुम चाहे जिस भाषा में लिखो या बोलो, किन्तु तुमको उसकी शैली पर ध्यान रखना चाहिए और शुद्ध तथा सुन्दर

शैली का अभ्यास डालना चाहिए। बिलकुल स्वतन्त्रता से बातचीत करने तथा केवल घरेलू पत्रों में भी तुमको शैली पर ध्यान देना ज़रूरी है। तुमने कुछ कहा हो उसके पहले नहीं तो पीछे ही विचार करना चाहिए कि वही बात इससे अधिक उत्तम रीति से कही जा सकती थी या नहीं।

## लेख

जो मनुष्य नेत्रों से देख सकता है और सीधे हाथ का उपयोग कर सकता है वह चाहे जैसे अक्षर लिख सकता है। सीखतर बालकों के समान कच्चे अक्षर लिखना बिलकुल असभ्यता है। मेरे कहने का यह आशय नहीं है कि अध्यापक के समान सुन्दर तथा पक्के अक्षर लिखे जायँ, किन्तु ऐसे मरोड़दार अक्षरों को शीघ्रता से लिखना सीखना चाहिए जो स्पष्ट पढ़ लिये जायँ। व्याकरण के ऊपर ध्यान रखने से तुमको शुद्ध लिखना आ जायगा और उत्तम ग्रन्थकारों के लेखों का स्मरण रखने से सुन्दर भाषा लिखना सीख जाओगे।

## क्षुद्र वचन

भाषा में क्षुद्रता नहीं होनी चाहिए; उससे सङ्गति तथा शिक्षा की नीचता प्रतीत होती है। छिछोरा मनुष्य ऐसी कहावतें बोलता है कि जिनसे तत्काल उसकी योग्यता की तुलना हो जाती है। वह अपनी भाषा को उज्ज्वल करने के

तात्पर्य से कठिन शब्द लिखने का आडम्बर करता है पर शिक्षित मनुष्य ऐसा कभी नहीं करते। वे कठिन शब्द कभी नहीं लिखते और शुद्ध रीति से व्याकरण के नियम के अनुसार बोलने और ठीक उच्चारण करने में बहुत सावधान रहते हैं। आशय यह है कि उत्तम मण्डली में जैसी प्रथा प्रचलित हो उसका वे अनुकरण करते हैं।

## असभ्य आदत नहीं पड़ने देना

मन में तान गाना, किसी वस्तु के ऊपर अँगुलियाँ रखकर बाजा बजाना, पैरों से शब्द करना तथा ऐसी अन्य असभ्य आदतें अच्छे आचरण में नहीं गिनी जाती हैं। जब हम ऐसा करते हैं तब यह प्रतीत होता है कि जो मनुष्य हमारे पास बैठे हैं उन्हें हम कुछ नहीं गिनते इसलिए ऐसी आदतों को छोड़ना चाहिए।

बहुत शीघ्र या बहुत धीरे खाना भी क्षुद्रता का चिह्न है। शीघ्र खाने से दरिद्री होना और धीरे खाने से यह सूचित होता है कि जहाँ तुम भोज में निमन्त्रित किये गये हो वहाँ के भोजन के पदार्थ तुमको पसन्द नहीं हैं। यदि घर पर ऐसा किया जाय तो समझा जाता है कि जो वस्तु तुमको स्वयं पसन्द नहीं है वह तुम अपने मित्रों को भोजन कराते हो। कोई भी वस्तु खाने के पहले सूँघनी नहीं चाहिए। अपनी थाली में धरी हुई कोई चीज़ यदि तुमको पसन्द न हो तो उसे रहने दो,

सूँघकर या देख-भालकर तुम अपने मित्र के मन में यह शङ्का उत्पन्न मत करो कि वह तुम्हारे लिए उत्तम भोजन प्रस्तुत नहीं कर सका।

बिछौने या ज़मीन के ऊपर थूकने की चाल बड़ी गंदी है। इससे बार-बार फ़र्श बदलने की आवश्यकता होती है। उच्च शिक्षा के मनुष्यों को यह आदत छोड़नी चाहिए क्योंकि इससे लोग यह समझते हैं कि हमको उत्तम सामान रखने की आदत नहीं है।

मार्ग में बहुत जल्दी-जल्दी नहीं चलना चाहिए। यह एक छिछोरेपन का चिह्न है। यदि कोई व्यापारी ऐसा करे तो बहुत हानि नहीं पर शिष्ट मनुष्य को यह बात शोभा नहीं देती।

कोई मनुष्य अकस्मात् मिले तो उसके मुख के सामने टक-टकी लगाकर देखते रहना बहुत नीच काम है। इससे उसे यह शङ्का होती है कि तुम उसके मुख में कोई विचित्रता देखते हो जिससे उसकी स्पष्ट निन्दा होती है।

इसी भाँति खुजाना; मुख, नाक तथा कान में अँगुली डालना; जीभ बाहर निकालना, उँगलियाँ बजाना, नख कुतरना, हाथ घिसना, ज़ोर से श्वास लेना, असामान्य रीति से शरीर को कँपाना, मुख खोलना इत्यादि अनेक असभ्य आदतों से, जिन्हें मैं पहले लिख चुका हूँ, तुमको दूर रहना चाहिए। यह साधारण मनुष्यों में होती हैं और इनसे सभ्य मनुष्यों को दोष लगता है।

## सांसारिक ज्ञान

हमें युवावस्था में सांसारिक ज्ञान का बड़ा भण्डार इकट्ठा करने का यत्न करना चाहिए; यद्यपि यह सम्भव है कि सुख के समय इसकी कुछ भी ज़रूरत न हो तथापि ऐसा समय आना कठिन नहीं कि जब काम चलाने के लिए इसकी पूरी-पूरी आवश्यकता हो।

## सांसारिक ज्ञान की प्राप्ति

सांसारिक ज्ञान संसार में से ही मिलता है, किसी कमरे में बैठे रहने या केवल पुस्तकों से वह कभी नहीं सीखा जा सकता। पुस्तकें पढ़ने से केवल वे बातें तुम्हारे ध्यान में आ जायँगी जिनका देख-भाल में रह जाना सम्भव है और मनुष्य-जाति-विषयक विचारों का पुस्तकों में देखे हुए विषयों के साथ मुक़ाबला करने से ठीक बात निर्णय करने में तुम्हें बड़ी सहायता मिलेगी।

पुस्तक पढ़ने में ध्यान तथा समझ का जितना काम पड़ता है उतना ही या कभी-कभी उससे अधिक भी मनुष्य-जाति के भली भाँति पहचानने में पड़ता है। आजकल मेरा बहुत से वृद्ध मनुष्यों से परिचय है जिनका जीवन इस विस्तृत संसार में व्यतीत हो चुका है पर वह ऐसी असभ्यता और असावधानता में गया है कि पन्द्रह वर्ष की अवस्था में उनका ज्ञान जितना

था वह अभी तक उतना ही बना हुआ है। इसलिए तुमको अपने मन में यह गर्व नहीं करना चाहिए कि साधारण लोगों के साथ वृथा गपशप करने से तुमको यह ज्ञान प्राप्त हो जायगा। नहीं, इससे बहुत अधिक काम करना होगा। तुम जिनको देखो उन्हें जानना भी चाहिए; इसलिए जिनके साथ तुम बात-चीत करते हो उनका शील-स्वभाव बड़ी सावधानी से जाँच लो। उनके प्रबल मनोविकार और मुख्य दोषों को जानने का यत्न करो और उनके उचित और अनुचित, बुद्धि और मूर्खता के कामों के कारणों को परताल लो कि जिनसे विचार-शक्ति-सम्पन्न प्राणी भी विपरीत और कामचारी हो जाते हैं।

## कभी किसी का तिरस्कार न करना

संसार में किसी मनुष्य को बिलकुल तुच्छ या शक्तिहीन कभी नहीं समझना चाहिए। हर एक मनुष्य में इतनी शक्ति होती है कि किसी न किसी समय या किसी न किसी काम में तुम्हारा मतलब उससे निकल सकता है पर जो तुम ऐसे मनुष्य का एकदम तिरस्कार करोगे तो वह कभी तुम्हारे काम नहीं आवेगा। तुमने किसी के साथ बुराई की होगी तो उसे वह प्रायः भूल जायगा पर जो तुमने उसका तिरस्कार किया होगा तो वह उसे कभी नहीं भूलेगा। आत्म-गौरव के कारण ही मनुष्य तिरस्कार को निरन्तर याद रखते हैं इसलिए ध्यान देकर स्मरण रक्खो कि किसी का तिरस्कार करना योग्य हो तो भी जो तुम

उसे अचल शत्रु करना न चाहते हो तो तिरस्कार को गुप्त रक्खो। सारांश यह है कि मनुष्य अपना पाप दिखाये जाने से बढ़कर अपने दोष और अवगुण दिखाये जाने से अप्रसन्न होते हैं। तुम जो किसी से स्पष्टतया शठ कहोगे तो वह तुमसे इतनी घृणा नहीं करेगा जितनी घृणा कि वह तुम्हारे मूर्ख, अशिक्षित, असभ्य तथा बुद्धिहीन कहने से करेगा।

## किसी को उसकी न्यूनता नहीं जताना

किसी मनुष्य को ज्ञान, पदवी या द्रव्य के विषय में उसकी न्यूनता जताने से बढ़कर अपमानसूचक और कोई बात नहीं है। ज्ञान के विषय में उसकी न्यूनता दिखाना क्षुद्रता तथा दुष्ट प्रकृति का चिह्न है और पदवी या द्रव्य के विषय में ऐसा करना अनुचित है क्योंकि ये दोनों उसकी शक्ति से बाहर हैं। उत्तम-प्रकृति तथा शिक्षित मनुष्यों में सदा औरों को भी अपने समान बनाने की उत्कण्ठा रहती है; वे कभी किसी के सम्मुख उसकी न्यूनता प्रकट नहीं करते; इस कारण शत्रु होने की अपेक्षा उनके बहुत से मित्र हो जाते हैं। हर एक मनुष्य को प्रसन्न करने का सदा ध्यान रखना प्रसन्न करने की युक्ति का बड़ा आवश्यक भाग है। इससे अपने साथी अधिक प्रफुल्लित होते हैं, उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित हो जाता है और वे वश में हो जाते हैं। जीवन में सांसारिक व्यवहार रखना भी हर एक मनुष्य को किसी न किसी अंश में आवश्यक होता ही है और हम चाहें

तो ऐसा कर सकते हैं कि जिसका हमारे साथ समागम हो उससे हम सुशीलता और सुस्वभाव का बर्ताव करें। लोग ऐसे बर्ताव को पसन्द करते हैं, सदा याद रखते हैं और बदले में अपने साथ भी वैसा ही करते हैं।

## किसी के दोष तथा अवगुणों को कभी प्रकट न करना

किसी मण्डली का मनोरञ्जन करने या अपनी श्रेष्ठता दिखाने के लिए बहुत से युवक दूसरों के दोष तथा अवगुण प्रकट किया करते हैं। यह तुमको कभी नहीं करना चाहिए। इससे हाल में तो तुम्हारी बड़ी प्रशंसा होगी पर पीछे वे तुम्हारे अचल शत्रु हो जायँगे और जो तुम्हारी प्रशंसा करेंगे वे भी विचार करने पर तुम्हारा तिरस्कार करेंगे और तुमसे भयभीत रहेंगे। अच्छे अन्तःकरणवाले मनुष्य दूसरों के दोष तथा दुर्भाग्य को गुप्त रखना ही अच्छा समझते हैं। अपने में जो चातुर्य हो तो हमें उससे प्रत्येक मनुष्य को प्रसन्न करना चाहिए, न कि किसी को खेद पहुँचाना चाहिए। समशीतोष्ण मेखला ( Temperate Zone ) में सूर्य के समान जलाये बिना हमें प्रकाशित रहना चाहिए।

## प्रकृति और आकृति को स्थिरता से वश में रखना

सांसारिक व्यवहार में कितनी ही निर्दोष युक्तियों की आवश्यकता है। मनुष्य जितना शीघ्र उनका उपयोग करेगा

उतना ही वह दूसरों को अधिक प्रसन्न कर सकेगा और उसकी उन्नति भी शीघ्र होगी। तरुण मनुष्य उत्साह और चपलता के कारण या तो इनको निरुपयोगी समझ इन पर ध्यान नहीं देते या कष्ट-दायक जान छोड़ देते हैं परन्तु कुछ काल के अनन्तर जब इनके सामान्य रीति से प्राप्त करने का समय बीत जाता है तब उन्हें सांसारिक ज्ञान और अनुभव से उनकी आवश्यकता का बोध होता है। इनमें मुख्य बातें स्वभाव को वश में करना, मन की स्थिरता और मुख का गाम्भीर्य है। इनसे शब्द, शरीर-व्यापार तथा मुख के भाव से आन्तरिक मनोविकार और विचार प्रकट नहीं होते कि जिनके प्रकट होने से शान्त और योग्य मनुष्य जीवन के सामान्य व्यवहारों में भी हमसे अधिक लाभ उठाते और बढ़-चढ़ जाते हैं। जिस पुरुष में अरुचिकर बातें सुनने की सहन-शक्ति नहीं है और रुचिकर बातें सुनकर जिससे एकाएक हर्ष दिखाकर मुख मटकाये बिना नहीं रहा जाता उससे हर एक प्रपञ्ची शठ और वाचाल धूर्त कुछ न कुछ स्वार्थ सिद्ध किये बिना नहीं रह सकते। शठ तुमको इस-लिए प्रसन्न या क्रोधित करेगा कि तुम कुछ अपनी गुप्त बात अज्ञानता से प्रकट कर दो या अपने भीतर का भाव मुख के ऊपर जता दो और वाचाल धूर्त तुम्हारी मूर्खता तथा अज्ञानता के कारण तुम्हारी गुप्त बात को प्रसिद्ध कर देगा जिससे और लोग अपना कुछ स्वार्थ सिद्ध करेंगे।

यदि तुम क्रोध के अधीन हो तो जब तक क्रोध का आवेग रहे तब तक तुमको एक शब्द भी नहीं कहना चाहिए। क्रोध भी एक भाँति की विक्षिप्तता है। अन्तर केवल इतना ही है कि क्रोध थोड़े काल तक रहता है और विक्षिप्तता बहुत दिन ठहरती है।

सारांश यह है कि तुम्हारे मन में चाहे जो विचार हों पर तुम्हें अपनी प्रकृति और आकृति से उन्हें दूसरों के सम्मुख प्रकट नहीं होने देना चाहिए। यह बात कदाचित् कठिन हो पर असम्भव नहीं है। बुद्धिमान् मनुष्य यद्यपि असम्भव वस्तु के लिए यत्न नहीं करता पर किसी कार्य के कठिन होने से निराश भी नहीं होता; वह उलटा अपने उद्यम और तत्परता को दुगुना करता है और सदा उद्योग करते रहने से अन्त में उसको सफलता होती है। जो वस्तु तुमको अपने सद्विचार से अच्छी मालूम हो और जिसका उपयोग स्पष्ट दीख पड़े उसका सम्पादन करने के लिए केवल उसकी कठिनता के कारण से ही अपने उद्यम को अधिक उत्तेजित होने दो। एक रीति निष्फल हो तो दूसरी से यत्न करो। काम में प्रवृत्ति और सावधानता रक्खोगे तो अन्त में तुमको सफलता प्राप्त होगी।

## औरों के मनोभाव का अनुभव अपने मनोभाव से करना

औरों के मन की परीक्षा करने के लिए पहले तुम अपने मन को जानने का अभ्यास करो क्योंकि सब मनुष्य प्राय:

समान होते हैं। यद्यपि एक में एक भाँति के और दूसरे में दूसरी भाँति के मनोविकार अधिक प्रबल होते हैं तो भी उनकी क्रिया बहुधा समान होती है। जिन कारणों से तुम दूसरों को पसन्द करो, उनसे व्याकुल, प्रसन्न या क्रोधित हो उन्हीं कारणों से तुम भी उनको वैसे ही लगोगे।

एक उदाहरण लो—अनुमान करो कि कोई मनुष्य ज्ञान, बुद्धि, पदवी अथवा धन में तुमसे बड़ा है और तुम उसकी अपेक्षा इन बातों में न्यून हो। अब यदि कोई यह तुम्हें जतावे तो क्या तुमको बुरा नहीं लगेगा? इसी भाँति जो तुममें ऐसी श्रेष्ठता है तो तुम जिस मनुष्य की कृपा, भली सम्मति, हित, प्रेम या मैत्री चाहते हो उसे वह जताने का यत्न कभी मत करो। कटु वचन, अवज्ञा-सूचक हास्य, अथवा बार-बार विरुद्ध भाषण से जो तुमको क्रोध आता हो और बुरा लगता हो तो तुम्हें जिसकी चाहना हो और जिसे प्रसन्न करने की इच्छा हो उसके साथ क्या तुम ऐसा ही आचरण करोगे? कभी नहीं—मैं आशा करता हूँ कि तुम प्राय: हर एक मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित और प्रसन्न करना चाहते होगे। कोई हास्य की बात कहने के लालच और ऐसी बात की जो प्राय: द्वेषपूर्ण प्रशंसा होती है उससे, जो लोग ऐसी बातें कह डालते हैं उनके जैसे कट्टर शत्रु हो जाते हैं वैसे मेरी सम्मति में और किसी के नहीं होते। जब ऐसी बात तुम्हारे लिए कोई कहे तब तुम्हारे मन में कितना क्रोध, व्यग्रता और वैमनस्य हो, उनका

तुम गम्भीरता से विचार करो। ऐसे साधनों से स्वयं औरों के मन में इनको पैदा करना कहाँ तक समझ की बात है इसको भी निर्णय करो। एक परिहास से मित्र को शत्रु करना सरासर मूर्खता है। मेरी समझ में तो किसी उदासीन को भी दिल्लगी से शत्रु बनाना कुछ कम मूर्खता नहीं है। जब ऐसी बातें तुम्हारे विषय में हों तब बुद्धिमानी का काम तो यही है कि तुम उनको अपने ऊपर कही गई न समझो। तुम्हारे मन में जो इनसे कुछ क्रोध हो तो उसे भीतर ही गुप्त रहने दो। लेकिन जब लोग तुम्हारी इतनी साफ़ हँसी करते हों कि यह कोई न समझ सके कि तुम उसके आशय से अनभिज्ञ हो तब तुमको भी उस मण्डली के साथ हँसी में शामिल हो जाना चाहिए। इससे बढ़कर उपयुक्त और कोई बात नहीं है। उन लोगों ने अच्छा हास्य किया यह दिखाकर ऊपरी प्रसन्नता से यह बात हँसी में टाल दो लेकिन इसके उत्तर में उनकी हँसी मत करो क्योंकि इससे वे जीत गये और तुमको बुरा लगा ये दोनों बातें—जिन्हें तुम गुप्त रखना चाहते हो—सहज में प्रकट हो जायँगी। उन लोगों ने जो बात कही हो वह यदि यथार्थ में ऐसी हो कि उससे तुम्हारी प्रतिष्ठा तथा चरित्र में बट्टा लगता हो तो भलमनसाहत तथा शिष्टता के दो काम हैं—या तो अतिशय नम्रता से बर्तना या बाहु-युद्ध करना।

---

# अपमान करनेवाले मनुष्य से यथाशक्य दूर रहना

यदि कोई मनुष्य तुम्हारा खुले मैदान इच्छा से अपमान और अनादर करे तो तुम उसकी ख़ूब ख़बर लो। पर जब वह केवल छेड़-छाड़ करता हो तब तुम उसके साथ ऊपर से तो बहुत विनय का बर्ताव करो परन्तु गुप्त रीति से उसे सवाया बदला दो। बदला लेने की इसके समान उत्तम रीति दूसरी नहीं है। यह कुछ विश्वासघात या कपट नहीं कहा जा सकता। जब तुम कहो कि मैं तुम्हारे साथ मित्रता या प्रेम रखता हूँ और चित्त में बदला लेने की युक्तियाँ सोचो तब कपट या विश्वासघात हो सकता है। लेकिन ऐसा करने की मैं तुम्हें किसी भाँति भी सम्मति नहीं देता। इस रीति को तो मैं बहुत बुरा समझता हूँ। स्वस्थता तथा सुभीता रहने के लिए मण्डली में सभ्यता का व्यवहार केवल लोकाचार का अनुसरण मात्र है। मण्डली की एकत्रता में व्यक्ति-गत मत्सर तथा द्वेष से विक्षेप नहीं होना चाहिए। मैं अपनी ही बात कहता हूँ कि यद्यपि किसी प्रतिस्पर्धी के सम्मुख मैं किसी विषय में ज़रा भी नम्र नहीं होता हूँ पर उसके साथ औरों की अपेक्षा अधिक सभ्यता का व्यवहार रखने के लिए सचेत रहता हूँ। प्रथम तो ऐसे व्यवहार से सब हँसनेवाले अपनी ओर हो जाते हैं जिनकी संख्या अधिक होती है और दूसरे इससे अपना प्रतिस्पर्धी

भी, चाहे स्त्री हो या पुरुष, अवश्य प्रसन्न हो जाता है। ऐसे समय वह यह कहे बिना नहीं रह सकता कि "आपने आज बहुत नम्र तथा उत्तम आचरण किया है।"

## शत्रु पर क्रोध हुआ तो उसे गुप्त रखना

अपने आचरण का यह एक दृढ़ नियम रक्खो कि यदि तुम किसी अंश में भी क्रोध को शान्त न कर सको तो उसके चिह्न का लेश भी कभी प्रकट मत करो। जब तुम्हारी कुछ न चले तब सदा प्रसन्नता ही दिखाओ। उद्योगी तथा व्यवसायी मनुष्य को सांसारिक व्यवहार में प्रतिदिन क्रोधित होने के अनेक कारण मिल जाते हैं पर जो वह उन्हें छिपा न सके या क्रोध सहन न कर सके तो संसार में रहना नहीं हो सकता। जो अपने स्वभाव को वश में नहीं रख सकता उसे संसार को छोड़ निर्जन वन में जाकर किसी मठ में एकान्तवास करना चाहिए। निरर्थक क्रोध दिखाने से तुम उनके क्रोध का उत्तेजन करते हो जिनको तुम तो हानि पहुँचा नहीं सकते पर वे तुमको पहुँचा सकते हैं। जो वे तुम्हारे साथ लड़ने तथा तुम्हें हानि पहुँचाने का बहाना टटोल रहे हों तो उनको वह मिल जाता है परन्तु जो इसके विपरीत व्यवहार किया जाय तो सभ्यता के कारण वे दब जाते हैं और समय पर या तो उनका द्वेष लुप्त या प्रकट हो जाता है। सारांश यह है कि झगड़ा करना, चिढ़ाना और क्रोधित करना बिलकुल नीचता और छिछोरेपन के चिह्न हैं।

## किसी की ईमानदारी पर अधिक विश्वास नहीं करना

मनुष्य मात्र का निर्माण एक ही नियम से हुआ है परन्तु प्रत्येक में बहुत से अंश इस भाँति घटते-बढ़ते रक्खे गये हैं कि एक दूसरे से पूरा-पूरा नहीं मिलता और कोई भी सदा एक सा नहीं रहता। बुद्धिमान् भी मूर्खता के, अभिमानी भी नीचता के, ईमानदार भी अनुचित और दुष्ट भी कभी-कभी अच्छे काम कर बैठते हैं। इसलिए प्रत्येक मनुष्य की तुम्हें भली भाँति परीक्षा करनी चाहिए। उसके प्रधान मनोविकारों का अनुभव तुमको अवश्य करना चाहिए। पर उसके नीच भाव, इच्छा तथा प्रकृति को भली भाँति पहचानकर पीछे अपने अनुभव से पूरा-पूरा निर्णय करना चाहिए। यदि किसी का सामान्य आचरण संसार में सबसे अधिक ईमानदार मनुष्य के समान हो तो तुम उस पर विवाद मत करो क्योंकि इससे तुम मात्सरिक या दुष्ट-प्रकृति समझे जाओगे पर साथ ही उसकी सचाई पर इतना अधिक विश्वास मत करो कि जिससे तुम्हारी प्रतिष्ठा, धन अथवा जीवन उसके अधीन हो जायँ। अधिकार, धन और प्रेम में ही ईमानदारी की आवश्यकता होती है और इनसे ही उसकी यथार्थ परीक्षा होती है। यदि कोई प्रामाणिक मनुष्य तुम्हारी समानता करता हो तो पहले तुम इन तीनों बातों में पृथक्-पृथक् उसकी जाँच करो जिससे कि तुम

यह निश्चय कर सको कि उस पर कितना विश्वास करना चाहिए।

## स्त्री-पुरुषों के दोष और मनोविकारों का भली भाँति जानना

जो तुम किसी से मित्रता या प्रेम करना चाहते हो तो उसमें जो गुण हों और जिन-जिन बातों में कमी हो उन्हें भली भाँति पहचान लो और गुण की उचित तथा जिन बातों में कमी हो उनकी गुण से भी अधिक प्रशंसा करो। कुछ मनुष्य बहुत सी बातों में औरों से उत्तम होते हैं या और उन्हें उत्तम समझ लेते हैं तथा जिस बात में वे स्वयं अपने को श्रेष्ठ मानते हों उसमें अपनी योग्य प्रशंसा सुनने के उत्सुक रहते हैं। परन्तु जिस विषय में वे उत्तम होना चाहते हों पर अपने उत्तम होने में उन्हें शङ्का हो, उसमें, यदि उनकी अतिशय प्रशंसा की जाय तो वे बहुत प्रसन्न होते हैं। इसका उदाहरण देखना हो तो कारडीनल रीशलू को देखो जो अपने समय में सबसे बड़ा राजनीति-निपुण था। इसे यह मिथ्या अभिमान था कि लोग मुझे सबसे बड़ा कवि गिनें। इसको महापुरुष कार्निल की प्रतिष्ठा से ईर्ष्या हुई और उसकी सिड् ( Cid ) नामक कविता की समालोचना करने के लिए इसने आज्ञा दी। इसलिए जिनको युक्ति से प्रशंसा करना आता था वे इसके राजकीय काम की प्रवीणता के विषय में विशेषत: कुछ

न कहकर इसे कवि कहकर ही इसकी प्रशंसा करते थे जिससे उन पर इसकी विशेष कृपा रहती थी। इसका कारण यही था कि कारडीनल रीशलू को अपने राजकीय काम के चातुर्य पर विश्वास था पर कवित्व में नहीं था।

## सबके अभिमान की प्रशंसा करना

प्रत्येक मनुष्य को सम्भाषण का कोई न कोई विषय अवश्य प्रिय होता है। इससे उसके प्रबल अभिमान का विषय तुम सहज में जान जाओगे क्योंकि जिस विषय में वह चाहता है कि दूसरे मनुष्य उसे श्रेष्ठ गिनें उसी पर वह बार-बार बात-चीत करता है। ऐसे विषय के ऊपर ध्यान रखने से तुम एक-दम उसकी परीक्षा कर सकोगे।

स्त्रियों को प्राय: अपने रूप का अभिमान होता है इस-लिए उनके रूप की चाहे जितनी प्रशंसा की जाय पर वह ठीक ही मानी जाती है। ईश्वर ने ऐसी कोई कुरूप स्त्री नहीं बनाई है कि जो अपने रूप की प्रशंसा सुनकर भी कुछ परवा न करे। जो उसका मुख भयङ्कर हो और वह यह बात स्वयं जानती भी हो तो वह समझती है कि मेरे शरीर और स्वरूप की सुन्दरता से मुख का दोष ढक जाता है। जो शरीर कुरूप हो तो वह समझती है कि मेरे मुख के सौन्दर्य से शारीरिक दोष ढक जाता है। जो शरीर तथा मुख दोनों भद्दे हों तो वह यह समझती है कि मेरे लावण्य की समानता साक्षात् मनोहरता

भी नहीं कर सकती है। इस बात की पुष्टि में यह प्रमाण भी है कि बिलकुल कुरूपा स्त्री भी बड़ी चटक-मटक और परिश्रम से वस्त्र पहनती है।

मेरे कहने का विपरीत अर्थ समझकर यह मत जानना कि मैं तुम्हें मिथ्या तथा कपट-युक्त प्रशंसा करने के लिए उपदेश करता हूँ। नहीं, किसी मनुष्य के दोषों या अवगुणों की प्रशंसा कभी मत करो। उनसे घृणा करो और जहाँ तक हो उनके घटाने का यत्न करो। परन्तु दुर्गुणी तथा मिथ्या अभिमानवाले मनुष्यों के साथ मिठास से न बर्तने से संसार में रहना कठिन हो जायगा। कोई पुरुष यदि चाहे कि मैं जितना बुद्धिमान् हूँ उससे बढ़कर समझा जाऊँ या स्त्री चाहे कि मैं अपनी सुन्दरता से अधिक सुन्दरी समझी जाऊँ तो अपनी भूल से वे भले ही सुखी रहें, दूसरों को उससे क्या हानि? मैं तो यही पसन्द करता हूँ कि ऐसे विषयों में उनको प्रसन्न करके मैं अपना मित्र बना लूँ क्योंकि ठीक बात कहकर वृथा उन्हें शत्रु बनाने से मुझे कोई लाभ नहीं होगा।

## जो किसी सद्गुण से युक्त होने का आडम्बर करें उन पर शङ्का करना

जो मनुष्य किसी सद्गुण का असाधारण रीति से आडम्बर दिखावें, किसी विशेष गुण को दूसरों की अपेक्षा अपने में अधिक उत्तम बतावें, या विशेषत: केवल अपने को ही सद्गुणी

प्रकट करें, तो उन पर शङ्का करनी चाहिए क्योंकि ऐसे मनुष्य प्राय: धूर्त होते हैं। पर वे सब के सब ऐसे होते हैं यह नहीं मान लेना चाहिए, क्योंकि मैंने कोई-कोई साधु यथार्थ में धर्म-निष्ठ, अभिमानी शूर और समाज-सुधारक ईमानदार देखे हैं। इसलिए यथाशक्ति उनके चित्त का हाल जानो और साधारण रीति से संसार में जो उनका यश हो उस पर एकदम विश्वास मत करो; क्योंकि वह चरित्र की सामान्य बातों में तो ठीक होता है पर विशेष बातों में सदा असत्य होता है।

## स्वयं मित्रता करने के लिए आये हुए मनुष्य से सावधान रहना

जो बहुत कम परिचय होने पर तुम्हारी इच्छा के बिना ही तुमसे मित्रता किया चाहे उससे सावधान रहना चाहिए क्योंकि ऐसे मनुष्य बहुधा अपने स्वार्थ के लिए ही मित्रता किया करते हैं। किन्तु ऐसी साधारण शङ्का से उन्हें एकदम मत छोड़ दो; पर भली भाँति उनकी परीक्षा करो कि उनकी अनपेक्षित याचना उत्सुक हृदय और बुद्धिहीनता से हुई है या कपट और विरक्त हृदय से हुई है; क्योंकि छल और मूर्खता के लक्षण प्राय: समान होते हैं। निष्कपट मूर्ख की मित्रता स्वीकार करने में कोई हानि नहीं। उसकी योग्यता के अनुसार उसके साथ बर्तना चाहिए। लेकिन कपटी मनुष्य को तुम्हें यह तो जता देना चाहिए कि तुमने उसकी मित्रता स्वीकार कर ली है

पर उसकी मिथ्या प्रशंसा का उपयोग तुम्हें उसी के साथ युक्ति से करना चाहिए।

## शपथ-पूर्वक कही गई बात को न मानना

यदि कोई बात इतनी सम्भव हो कि उसको सत्य मानने के लिए केवल उसका साधारण रीति से कहना ही काफ़ी हो तो जो कोई मनुष्य बड़ी-बड़ी शपथें खाकर उसको कहे तो तुम समझ लो कि वह झूठ बोलता है और इसमें उसका कुछ स्वार्थ अवश्य है। यदि ऐसा न होता तो वह इतना परिश्रम क्यों करता?

## विषय-सुख के सम्बन्ध से दूर रहना

जो युवक केवल आपस के आनन्द के लिए मित्रता करते हैं उनकी मैत्री असङ्गत होती है और उसका परिणाम बहुधा अनिष्ट होता है। उत्सव के आनन्द में मग्न, ज़रा अच्छी शराब की चसक से उन्मत्त, उत्सुक तथा अनुभव-शून्य मनुष्य सच्चे हृदय से आपस में अविकल मित्रता करने की प्रतिज्ञा करते हैं और बिना सङ्कोच अपने हृदय की सब बात कह डालते हैं। ऐसा पारस्परिक विश्वास जितने अविचार से किया जाता है उतने ही अविचार से फिर टूट भी जाता है; क्योंकि नवीन स्थल तथा नवीन रुचियों के कारण ऐसे सम्बन्ध का ठहरना असम्भव हो जाता है। ऐसे विचारहीन विश्वास का बड़ा बुरा परिणाम होता है। युवक-मण्डली में बैठो, उठो और अपनी अवस्था के योग्य अनिन्दित शौक़ में जो तुमसे बने तो सबसे बढ़ जाओ। चाहो

तो उस समुदाय के और मनुष्यों पर अपनी प्रेम-वार्ता प्रकट करो पर अपने गम्भीर विचार कभी किसी से मत कहो। जिस मित्र की तुम परीक्षा कर चुके हो अथवा जो तुमसे अधिक अनुभवी हो और भिन्न व्यवसाय में प्रवृत्ति होने के कारण जिसका तुम्हारा प्रतिस्पर्धी होना सम्भव न हो उससे गुप्त अभिप्राय प्रकट करने में कोई हानि नहीं क्योंकि मनुष्य-जाति के स्वभाव पर मैं इतना विश्वास करने की सम्मति नहीं देता कि जिस बात पर स्पर्धा हुई हो उसी पर तुम अपने प्रतिस्पर्धी को मित्र मानने लगो या उससे मित्र होने की आशा रक्खो।

## बाह्य अनभिज्ञता की आवश्यकता

सांसारिक ज्ञान के लिए कभी-कभी बाह्य अनभिज्ञता अत्यन्त आवश्यक होती है। यदि कोई भद्र मनुष्य तुम्हारे निकट कोई बात कहने के लिए आवे तो तुम उस बात को जानते हो तो भी उससे यही कहना उचित होगा कि हम यह बात ठीक-ठीक नहीं जानते। जब वह पूछे कि 'अमुक बात क्या तुमने नहीं सुनी?' तब तुम्हें उस बात के जानने पर भी 'नहीं' कहना चाहिए क्योंकि कितने ही मनुष्य किसी-किसी बात को भली भाँति कहना जानते हैं इसलिए उसके कहने से उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती है; कोई-कोई किसी बात को ऐसे गर्व के साथ कहते हैं मानो उसे वही जानते हों; तथा कोई-कोई किसी अविश्वसनीय बात को भी ऐसे मिथ्या अभिमान से कहते हैं मानो और

लोग उनकी बात पर विश्वास करते हैं। ऐसे मनुष्यों से जो तुम 'हाँ' कहोगे तो वे हताश हो जायँगे और तुमसे अप्रसन्न होंगे। किसी की निन्दा या निरादर की बात जो तुमने अनेक बार सुनी हो तो भी अपने अन्तरङ्ग-मित्र के अतिरिक्त सबके सामने उससे अनभिज्ञता ही दिखाओ क्योंकि जिन लोगों के सम्बन्ध में ऐसी बात हो रही हो वे सुननेवाले को चोर के समान बुरा गिनते हैं। इसलिए जब कोई ऐसी बात हो रही हो तो जो तुम उसे सच मानते हो तो भी यह मत कहो और उसे हलकी करने का यत्न करो। परन्तु बाह्य अनभिज्ञता दिखाने के साथ ही साथ हर एक बात का भीतरी हाल जानने का नियम रक्खो। बाह्य अनभिज्ञता दिखाना किसी बात का भी पूरा-पूरा हाल जानने की अच्छी युक्ति है क्योंकि बहुत से मनुष्य इतने मिथ्या-भिमानी होते हैं कि तुम्हें जितनी बात से अनभिज्ञता हो उतनी कहने के बदले जो उन्हें नहीं कहनी चाहिए उसे भी कह डालते हैं। ऐसी अनभिज्ञता दिखाने से तुम अजिज्ञासु तथा निष्कपट समझे जाओगे पर यथार्थ बात जानने के लिए नित्य सावधान रहो और इधर-उधर क्या होता है इस बात का पूरा-पूरा ज्ञान रखने का यत्न करो। बुद्धिमानी के साथ ऐसा करो और जहाँ तक हो स्पष्ट प्रश्न मत पूछो। क्योंकि स्पष्ट प्रश्न करने से लोग सावधान हो जाते हैं और बार-बार उत्तर देने से उन्हें व्याकुलता होती है। कभी-कभी तो तुम जो जानना चाहते हो उससे भी अभिज्ञता दिखाओ और अपने अनुमान से ही उसे कह डालो

जिससे कि उसमें कोई भूल हो तो उसे कोई सज्जन कृपा करके सुधार दे। कभी-कभी कह दो कि मैंने ऐसा सुना है और कभी-कभी किसी प्रसङ्ग को तुम अपने ज्ञान से अधिक जानते हो ऐसे दिखाओ। ऐसा करने से जो तुम न जानते होगे वह जान जाओगे पर जहाँ तक हो स्पष्ट प्रश्न मत करो।

## आचार की सरलता की उपयोगिता

जन-प्रकृति सम्पूर्ण संसार में समान है पर शिक्षा और अभ्यास के कारण उसका उपयोग करने की रीतियाँ इतनी भिन्न-भिन्न हैं कि उनका यथार्थ ज्ञान होने के लिए उसे सब स्वरूपों में देखना चाहिए। उदाहरण देखो तो कीर्त्ति-लोभ राज-कर्मचारी, सैनिक तथा धर्मोपदेशक में एक सा होता है पर भिन्न प्रकार की शिक्षा तथा अभ्यास के कारण वे उसे तृप्त करने के लिए भिन्न-भिन्न मार्ग का अनुसरण करते हैं। दूसरे मनुष्यों पर ध्यान देने और उन्हें अनुगृहीत करने की प्रकृति, जिसे सभ्यता कहते हैं, विशेषत: सब देशों में एक ही होती है पर उसके उपयोग करने की रीति अर्थात् शिक्षा स्थान-स्थान की भिन्न होती है। हर एक बुद्धिमान् जिस स्थान में हो वहाँ का आचार भली भाँति समझकर उसी का अनुकरण करता है। संसार की सब बातों में शिष्टाचार की सरलता और प्रयोग बड़े आवश्यक हैं। चपल बुद्धि सबसे अधिक उपयोगी है। चपल-प्रकृति मनुष्य एक विषय से दूसरे पर योग्य रीति से

बदल सकता है और गम्भीर के साथ गम्भीर, हँसमुख के साथ हास्य-प्रचुर और हलकों के साथ हलका हो सकता है।

मनुष्यों के विशेष आचार-विचार का उत्साह और सरलता से अनुकरण करने की अपेक्षा और कोई वस्तु अधिक आकर्षक नहीं है। युवा मनुष्य को किसी बात में अड़चन नहीं होनी चाहिए। उसे हर एक काम के लिए तैयार रहना चाहिए और प्रसङ्गानुसार अपनी प्रकृति सरलता तथा उत्साह से बदलने के लिए समर्थ होना चाहिए। उष्णता, शीतलता, विलासप्रियता, आहार-नियम, गम्भीरता, आनन्द, शिष्टाचार, सरलता, विद्वत्ता, छोटे-छोटे काम, व्यापार तथा इच्छा इन्हें—जैसे टोपी पहनते और उतारते हैं उसी भाँति—स्वस्थता से ग्रहण करने, छोड़ने और समय-समय पर बदलने के लिए उसे समर्थ होना चाहिए।

## उत्साह

युवक प्रायः यह सोच लिया करते हैं कि उत्साह और बल से सब काम हो जाते हैं। युक्ति करना नीचता का लक्षण है और मीठी-मीठी बातें करना तथा सबसे नम्रता करना नीच बुद्धि और निर्बलता के चिह्न हैं। इस भूल के कारण उनके व्यवहार में कठोरता, उद्धतपन तथा रुखाई आ जाती है। जो मूर्ख अपनी भूल नहीं समझ सकते वे इस अवगुण को मरण पर्यन्त नहीं छोड़ते पर बुद्धिमान् मनुष्य अनुभव से विचार कर उसे तुरन्त त्याग देते हैं।

जैसे उन्मत्त मनुष्य अपने को गम्भीर समझते हैं उसी भाँति तरुण मनुष्य भी अपने को बुद्धिमान् गिनते हैं। वे अनुभव के ऊपर कुछ ध्यान नहीं देते और उत्साह को उससे उत्तम समझते हैं। पर इसमें वे आधी भूल करते हैं, क्योंकि बिना अनुभव के उत्साह में भय रहता है और बिना उत्साह के अनुभव शिथिल तथा अपूर्ण होता है। जिन मनुष्यों में इन दोनों बातों का संयोग हो उन्हें वास्तव में श्रेष्ठ कहना चाहिए। तुम जो ऐसा संयोग किया चाहते हो तो करो क्योंकि मेरा सम्पूर्ण अनुभव तुम्हारे आगे प्रस्तुत है। मैं उसके बदले में तुम्हारे उत्साह का परमाणु भी नहीं चाहता। इन दोनों का उपयोग ऐसे करो जिसमें कि वे एक दूसरे को उत्तेजित करें तथा नियमित रक्खें। यहाँ उत्साह से आशय चञ्चलता और उद्धतपन से है जिनके कारण युवक किसी काम में अड़चन को नहीं देख सकते; पर किसी ऐसे उत्साह, हठ या शक्ति से नहीं है कि जिससे बड़े नीच, अभिमानी, आत्मश्लाघी तथा अपना आदर कम करने की शङ्का करनेवाले मनुष्य छोटे-छोटे प्रसङ्गों में भी लोगों को निष्ठुर उत्तर दे बैठते हैं। जिनमें ऐसा उत्साह हो (और धन्य है ऐसे उत्साह को) वे यथार्थ में विक्षिप्त तथा मूर्ख हैं और इस योग्य हैं कि मनुष्यों में से निकालकर पशुओं में भरती किये जायँ।

## प्राचीन मित्रता को कभी न भूलना

नवीन तथा श्रेष्ठ मित्रों के कारण पुराने मित्रों का कभी अनादर या तिरस्कार नहीं करना चाहिए। इससे तुम कृतघ्न

समझे जाओगे और यह दोष कभी क्षमा नहीं किया जायगा। जहाँ तक हो अपने मित्रों को बढ़ाने और शत्रुओं को कम करने का प्रयत्न करते रहो। इससे मेरा यह आशय नहीं है कि तुम अन्तरङ्ग तथा विश्वासपात्र मित्रों की संख्या बढ़ाओ क्योंकि ऐसे मित्र तो किसी बिरले मनुष्य को जीवन भर में ५-६ मिलते हैं पर मित्र शब्द साधारण रीति से जिस अर्थ में लिया जाता है उससे मेरा अभिप्राय है अर्थात् ऐसे मनुष्य जिनकी तुम्हारे विषय में अच्छी सम्मति हो और जो तुम्हारा विश्वास करते हों और जो (यदि उनकी कुछ हानि न हो तो) तुम्हारी बुराई न करके भलाई ही करें।

## मिथ्या भाषण

मिथ्या भाषण से बढ़कर पाप-युक्त, नीच तथा हास्यजनक और कुछ नहीं है। यह द्वेष-बुद्धि, शक्तिहीनता या अभिमान से पैदा होता है। इसका किसी भाँति भी उपयोग करने से अपना स्वार्थ सिद्ध नहीं होता क्योंकि झूठ कभी न कभी ज़रूर पकड़ा जाता है। जो द्वेष-बुद्धि से किसी मनुष्य की आजीविका या प्रतिष्ठा को हानि पहुँचाने के लिए कोई झूठी बात कही जाय तो कुछ समय तक तो वास्तव में हम उसे हैरान कर सकते हैं पर अन्त में हमें ही बड़ा दुःख होगा क्योंकि झूठ मालूम होने पर तुरन्त ही हमारी बात में बट्टा लग जायगा और इसके अनन्तर यदि उस मनुष्य की ठीक निन्दा की जायगी तो वह भी मिथ्या समझी जायगी। मिथ्या भाषण या

वक्रोक्ति के द्वारा जो तुमने कुछ अनुचित कहा या किया हो उसमें अपने को निर्दोष ठहराने से और उस अनुचित कर्म से जो भय और लज्जा होने की सम्भावना हो उनके दूर करने के प्रयत्न से तुम्हारा भय और झूठ प्रकट हो जायँगे और भय तथा लज्जा भी दूर होने के बदले बढ़ेंगे। मिथ्या भाषण से अपने को मनुष्य-जाति में नीच से भी नीच ठहराना है और यथार्थ में अपनी गणना भी वैसी ही हो जाती है।

भाग्यवश जो कुछ ग़लती हो गई हो तो उसे स्पष्टतया स्वीकार करने से असामान्य महानुभावता प्रकट होती है। इस पाप के निवारण का उपाय केवल यही है और इसीसे क्षमा मिल सकती है। वर्तमान भय को दूर करने के लिए वक्रोक्ति, बात को उड़ाना अथवा प्रपञ्च करके बात को बदल देना तिरस्कार के योग्य हैं और ये बातें इतनी भय-सूचक हैं कि जिस मनुष्य में ये हों वह अवश्य दण्ड के योग्य होता है।

ऐसे मनुष्य भी हैं जो एक दूसरी भाँति के झूठ में मग्न रहते हैं और उसे निर्दोष समझते हैं। एक ढङ्ग से यह ठीक भी है क्योंकि ऐसे व्यवहार से उनके अतिरिक्त और किसी की कुछ हानि नहीं होती। इस भाँति का असत्य मूर्खता से उत्पन्न हुए अभिमान का बुरा परिणाम है। ऐसे लोग अद्भुत बातों में लगे रहते हैं। जो वस्तुएँ वर्तमान न हों उन्हें कहते हैं कि हमने देखा है। जो वस्तुएँ उन्होंने कभी न देखी हों पर देखने के योग्य हों तो केवल इससे ही वे कह बैठते हैं कि हमने उन्हें देखा है।

किसी स्थान या समाज में कोई अद्भुत बात कही जाय या की जाय तो वे उसे आँखों से देखी या कानों से सुनी अवश्य बतला देंगे। पहले किसी ने किया या आज़माया न हो ऐसा चमत्कारिक काम हमने ही किया यह कहने में भी वे सङ्कोच नहीं करेंगे। वे स्वयं ही अपनी कल्पित बातों के नायक होते हैं। वे समझते हैं कि इससे कम से कम वर्तमान काल में तो उनकी प्रतिष्ठा होती ही है। पर सच बात तो यह है कि इससे उनकी हँसी और तिरस्कार होता है और उनके ऊपर से विश्वास कितने ही अंशों में उठ जाता है क्योंकि हर एक मनुष्य स्वाभाविक रीति से यह अनुमान कर सकता है कि केवल मिथ्या अभिमान के कारण जो मनुष्य कुछ झूठ बोलता है वह स्वार्थ के लिए अधिक झूठ बोलने में क्यों सङ्कोच करेगा? बहुधा जिसका होना सम्भव न हो ऐसी कोई बड़ी चमत्कारिक वस्तु जो मैंने देखी हो तो उसे कहकर अपनी सचाई के विषय में एक पल भी शङ्का करने का हेतु किसी को देने से यह बेहतर है कि मैं उसे किसी से न कहूँ। मनुष्य को सत्य-वक्ता होने की प्रतिष्ठा की जितनी आवश्यकता है उतनी स्त्री को पतिव्रता होने की नहीं क्योंकि स्त्री यथार्थ में पूरी पतिव्रता हुए बिना भी सदाचार-युक्त हो सकती है पर पूरी सचाई बिना कोई मनुष्य सदाचारी नहीं हो सकता। कभी-कभी तो बेचारी स्त्री की भूल केवल शारीरिक दोषजन्य होती है पर मनुष्य में मिथ्या-भाषण का दुर्गुण अन्तःकरण और मन का होता है।

आदरपूर्वक तथा निश्चिन्त मन से भवसागर से पार होने के लिए सत्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सत्य बोलना केवल अपना धर्म ही नहीं है किन्तु लाभकारी भी है। इसके निर्णय में यही कहना चाहिए कि मनुष्य जितना अधिक मूर्ख होता है उतना ही अधिक झूठ बोलता है। मनुष्यों में जितनी बुद्धि होती है उतना ही सत्य वे बोलते हैं इसका हम प्रत्यक्ष निर्णय कर सकते हैं।

## आचरण का प्रौढ़त्व

संसार में उत्तम गुणवान् मनुष्यों को भी सम्मानित कराने के लिए कुछ आचरण का प्रौढ़त्व आवश्यक है।

## खिलवाड़ करना

खेलते में कहकहाना, बार-बार खिलखिलाकर हँसना, हँसी-दिल्लगी, असभ्य हास्य और बिना बात का परिचय (अर्थात् किसी के साथ बे जान-पहिचान ही जान-पहिचान की भाँति आचरण करना) ये अवगुण जिस मनुष्य में होते हैं उसके विद्वान् और गुणी होने पर भी साधारण लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। वे उसे हँसमुख साथी अवश्य समझते हैं पर हँसमुख साथी कभी आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता। बिना बात परिचय दिखाने से या तो तुम भले-मानसों की दृष्टि में गिर जाओगे या तुम उनके अधीन समझे

जाओगे। तुमसे नीच पद के मनुष्यों को इससे तुम्हारी समानता का अनुचित अधिकार मिलता है क्योंकि हँसोड़ और भाँड़ बहुधा समान होते हैं। दोनों का ही तीक्ष्ण बुद्धि से लेश मात्र भी सम्बन्ध नहीं होता। शिष्टाचार तथा गुणों के अतिरिक्त और किसी कारण से, जिसको मण्डली में बुलाया जाय उसका, वहाँ बिलकुल आदर नहीं होता बल्कि उलटा लोग उससे कुछ काम निकालते हैं। मण्डलीवाले कहते हैं कि "अमुक को बुलाओ; वह अच्छा गाता है", "अमुक को भोजन के लिए अवश्य बुलावेंगे क्योंकि वह सदा परिहास किया करता है", "अमुक को अवश्य निमन्त्रण देना चाहिए, क्योंकि वह दिल खोलकर खेलता है या बहुत शराब पीता है", ये गुण अपमान-सूचक हैं जिनका आदर-सत्कार से लेश मात्र भी सम्बन्ध नहीं है। जिसको केवल एक बात के कारण समाज-वालों ने बुलाया वह उसी का हो रहा। उसमें अधिक सद्-गुण होने पर भी उसका सम्मान नहीं किया जाता।

## गर्व

शेख़ी मारने और यथार्थ साहस अथवा परिहास करने और तीक्ष्ण बुद्धि में जितना अन्तर है केवल उतना ही अन्तर गर्व और आचरण के प्रौढ़त्व में नहीं है बल्कि दोनों बिलकुल विरुद्ध ही हैं, क्योंकि गर्व से मनुष्य की जितनी निन्दा और अपमान होता है उतना और किसी से नहीं होता। अहङ्कारी

पुरुष के कीर्ति-लोभ को हम क्रोध से तो क्या पर तिरस्कार और अवज्ञा की दृष्टि से अवश्य देखते हैं; जैसे कोई व्यापारी किसी वस्तु के बहुत ही अधिक दाम माँगता है तब हम भी उससे उसी भाँति बहुत कम देने को कहते हैं पर जब वह उचित मूल्य माँगता है तब उसके साथ बिलकुल तकरार नहीं करते।

## नीच ख़ुशामद

सारासार का विचार किये बिना किसी के मत के विरुद्ध होने से और उच्च स्वर से विवाद करने से जितनी व्याकुलता होती है उतना ही विचारशून्य आडम्बर और नीच ख़ुशामद से अपमान होता है। अपना आशय विनयपूर्वक प्रतिपादन करने से और दूसरों का सभ्यता से स्वीकार करने से अपनी प्रतिष्ठा बढ़ती है। ग्राम्य तथा नीच वचन, शरीर की अनुचित चाल और बोलने की असभ्य रीति से मनुष्य छछोरा गिना जाता है क्योंकि इनसे या तो उसकी चित्तवृत्ति या शिक्षा और सङ्गति की नीचता सूचित होती है।

## तुच्छ जिज्ञासा

तुच्छ बातों में जिज्ञासा रखने से और निरुपयोगी विषयों पर बार-बार ध्यान देने से मनुष्य छछोरा गिना जाता है, क्योंकि ये विषय इस योग्य नहीं होते कि इन पर एक मिनट

भी विचार किया जाय। ऐसा करनेवाले मनुष्यों का गहन विषयों का विचार करने में अशक्त समझा जाना बहुत उपयुक्त है। कार्डीनल चीगी ने कार्डीनल डीरेस् से कहा कि तीन बरस से मैं एक ही क़लम से लिखता रहा हूँ और अब तक वह बहुत अच्छी है। उसी समय कार्डीनल डीरेस् ने निपुणता से जान लिया कि कार्डीनल चीगी छछोरा है।

हास्य और उचित प्रसन्नता के साथ मुख और शरीर की चाल में बाह्य गम्भीरता होने से कितने ही अंशों में मनुष्य की प्रतिष्ठा होती है। सर्वदा हँसता मुख और शरीर की अयोग्य चञ्चलता मनुष्य के लघुत्व के प्रबल चिह्न हैं। यदि कोई मनुष्य दौड़-धूप करता हो तो मालूम होता है कि जो काम उसे करना है वह उसके बित्त से बाहर है। शीघ्रता करना और दौड़-धूप करना ये दोनों बातें बिलकुल भिन्न हैं।

अन्त में केवल इतना ही लिखता हूँ कि जैसे कोई मनुष्य चुपचाप मुख पर लात खाकर आया हो और साहसी होने का दावा करे उसी तरह अवगुण और पाप से लबालब भरा हुआ मनुष्य भी गौरव का दावा कर सकता है। बाह्य सभ्यता तथा सदाचार के प्रौढ़त्व के कारण ऐसा मनुष्य थोड़े समय तक बच सकता है। यद्यपि सदाचार का आडम्बर करना पड़ता है तथापि उसका परिणाम तो उत्तम होता ही है।

---

# सदाचार और मन की निश्चलता

मनुष्य-जीवन के हर एक भाग में सर्वदा उपयोगी और आवश्यक नियम सदाचार-युक्त मन की निश्चलता के समान मेरी राय में दूसरा कोई नहीं है। सदाचार को आदर और शोभा देनेवाली निश्चलता न हो तो उससे मनुष्य नीच हो जाता है और उसमें भययुक्त विनय तथा उदासीनता आ जाती है। जो किसी मनुष्य में निश्चलता ही हो और उसे नरम करने के लिए सदाचार न हो तो मनुष्य क्रोधी और क्रूर हो जाता है। इतने पर भी इन दोनों गुणों का मिलाप बहुत कम होता है। प्रचण्ड क्रोधी मनुष्य प्रबल पशुवृत्ति होने के कारण सदाचार का तिरस्कार करता है और निश्चलता से ही सब काम करना विचार लेता है। जब ऐसे मनुष्य को केवल डरपोक तथा निर्बल मनुष्य से काम पड़ता है तब तो कभी-कभी दैवयोग से उसे सफलता हो जाती है पर उसकी साधारण दशा ऐसी होती है कि जिससे औरों को व्याकुलता तथा असन्तोष होता है और वे उसका तिरस्कार करते हैं, जिससे उसे अपने काम में सफलता नहीं होती। दूसरी ओर धूर्त और चालाक मनुष्य सदाचार से ही अपना सब काम निकालने का विचार किया करते हैं। जैसे-जैसे और मनुष्य हों वैसे-वैसे ही वे भी हो जाते हैं। उनकी किसी विषय पर कुछ सम्मति ही नहीं होती। अन्य उपस्थित मनुष्यों की जो वर्तमान सम्मति

हो उसे वे बिना शङ्का के स्वीकार कर लेते हैं। वे युक्तिपूर्वक मूर्खों से प्रीति करते हैं पर तुरन्त ताड़ लिये जाते हैं और सब लोग उनका तिरस्कार करने लगते हैं। बुद्धिमान् मनुष्यों में धूर्त तथा क्रोधी के समान अन्तर होता है और केवल उन्हीं में सदाचार और मन की निश्चलता का योग हो सकता है।

## मधुर वचन से आज्ञा देना

इन दोनों गुणों के संयोग से भी उतना ही अद्भुत और स्पष्ट लाभ होता है। यदि तुम्हारे पास अधिकार और आज्ञा देने का स्वत्व हो तो मिठास और नम्रता से दी हुई आज्ञा का, प्रसन्नता तथा उमङ्ग से, भली भाँति पालन किया जायगा; पर जो आज्ञा क्रूरता से दी जायगी तो उसके पालन करने की अपेक्षा उसके देने की रीति पर मनुष्य अधिक विचार करेंगे। यह तो निश्चय है कि जहाँ तुम्हें आज्ञा देने का अधिकार है वहाँ उसका पालन अवश्य होगा पर जो मधुर वाणी से आज्ञा दी जायगी तो तुम्हारे अधीन मनुष्य प्रसन्न रहेंगे और तुमसे उनकी पदवी नीची होने का दुःख-दायक ज्ञान हलका हो जायगा।

## नम्रता से प्रार्थना करना

जो किसी वस्तु की प्रार्थना करनी हो या अपना स्वत्व माँगना हो तो भी, तुम्हें नम्रता से याचना करनी चाहिए, नहीं

तो जो तुमसे मना किया चाहता है उसे तुम्हारी माँगने की रीति से अप्रसन्न होने का कारण मिल जायगा। तुमको आग्रह के साथ दृढ़ता या निश्चल भाव दिखाना चाहिए। मनुष्यों के, और विशेषकर ऊँचे पद के मनुष्यों के, कामों के जो यथार्थ कारण होते हैं वे सर्वदा उचित नहीं होते। ऐसे मनुष्य योग्यता और न्याय से जिस कार्य को नहीं करते उसे ही आग्रह या भय के कारण बहुधा कर डालते हैं। तुमसे हो सके तो नम्रता और सुजनता से उनका चित्त हर लो। ऐसी कोई बात मत होने दो जिसमें वे अप्रसन्न हों पर उनके अच्छे स्वभाव या न्याय के कारण जो मिलने की तुम्हें बड़ी आशा हो उसे ही उनसे लेने के लिए पूरी दृढ़ता और निश्चलता दिखाने से मत चूको। निश्चलता दिखाने से तुम उन बातों में सफलता प्राप्त कर सकते हो कि जिनमें उनके न्याय से तुम कदापि नहीं कर सकते। उच्च श्रेणी के मनुष्य मनुष्य-जाति के दुःख और आवश्यकताओं के सम्बन्ध में ऐसे कठिन-हृदय होते हैं जैसे शारीरिक वेदनाओं के सम्बध में डाक्टर होते हैं। वे प्रतिदिन लोगों के दुःख को देखते और सुनते हैं पर उनमें इतनी कसर होती है कि वे यथार्थ तथा अयथार्थ को नहीं पहचान सकते। इसके लिए न्याय और दया के अतिरिक्त उनके मनोभाव को भी उपयोग में लाना चाहिए। उनकी कृपा भली भाँति सम्पादन करनी चाहिए। निरन्तर प्रार्थना से उनके सुख में विक्षेप डालना चाहिए अथवा स्वयं शान्त न हो ऐसे उद्वेग-हीन क्रोध को दिखाकर उनके मन

में चिन्ता उत्पन्न करनी चाहिए। यही एक ऐसा मार्ग है कि जिससे मनुष्य तुच्छ भी न गिना जाय और उसकी चाहना भी हो, धिक्कारा भी न जाय और लोग उससे भय मानें। जिस स्वाभाविक प्रौढ़ता के पाने के लिए अधिकांश बुद्धिमान् मनुष्य यत्न करते हैं वह इससे ही मिल सकती है।

## शीघ्र कुपित होने की आदत छोड़ना

जो तुम्हें शीघ्र क्रोध आ जाता हो, जिसके कारण तुम चूककर बिना विचारे विक्षिप्तता या मूर्खता की बातें कह उठते हो, तो उसे चतुरता से सँभालकर रोको और सुजनता का उपयोग करो। क्रोध जब तक शान्त न हो तब तक चुप रहो। तुम्हारे मुख से उसका आवेश विदित न हो इसलिए मुख-मुद्रा अपने वश में रखने का यत्न करो। व्यवहार में इससे अकथनीय लाभ होता है। सभ्यता, स्वाभाविक नम्रता और सबको प्रसन्न करने की युक्ति के लिए तथा दूसरों के फुसलाने और उनकी ख़ुशामद के लिए, न्याय तथा विचार-शक्ति के बताये हुए मार्ग से लेश मात्र भी बाहर मत जाओ। उद्योग करते रहोगे तो मिलने योग्य बहुत सी वस्तुएँ प्राप्त हो सकेंगी। अन्यायी तथा दया-हीन मनुष्य ग़रीब तथा निर्बल स्वभाव के मनुष्यों को योंही दबा लेते हैं और उनका अपमान करते हैं। परन्तु जो निर्बल मनुष्यों में दृढ़ता और धैर्य हो तो उनकी प्रतिष्ठा होती है और साधारण रीति से उनका काम भी बन जाता है।

मित्र-समाज, सम्बन्धी और शत्रुओं में भी यह नियम बहुत उपयोगी है। अपनी दृढ़ता और उद्योग से लोगों का प्रीति-भाव निभाओ और उसे बढ़ने दो। पर साथ ही साथ अपना आचरण ऐसा रक्खो कि जिससे तुम्हारे मित्र तथा आश्रितों के शत्रु तुम्हारे शत्रु न हो सकें। सुन्दर आचरण से अपने शत्रुओं को भी शान्त रक्खो पर उन्हें अपना क्रोध भी दिखाते रहो क्योंकि वैमनस्य रखने तथा दृढ़तापूर्वक आत्म-रक्षण करने में बड़ा अन्तर है। पहला क्षुद्र तथा दूसरा उत्तम और सुजनोचित काम है।

## प्रतिस्पर्धी के साथ सभ्यता का व्यवहार करना

कितने ही मनुष्य अपने प्रतिस्पर्धी या विपक्षी के साथ विवेक और स्वस्थता नहीं रख सकते क्योंकि वे उनके प्रतिपक्षी और विपक्षी हैं—यदि वे ऐसे न होते तो निश्चय उनके सम्मान-पात्र रहते। उनके साथ समागम होने से वे शरमाते हैं, और उनका अपमान करने के लिए तुच्छ बातें पकड़ लेते हैं। इससे अल्पकालिक और प्रासङ्गिक प्रतिपक्षियों को वे ख़ास शत्रु बना लेते हैं। व्यवहार में जैसे नीच जाति का स्वभाव बुरा और हानि-कारक है वैसे ही ऐसा स्वभाव भी है। ऐसी स्थिति में मैं तो यह पसन्द करता हूँ कि जिस मनुष्य के उद्देश पर आक्रमण किया जाय उसके साथ विशेष रीति से सभ्य, स्वस्थ और निष्कपट होना चाहिए। साधारणतः ऐसी रीति को उदारता या महानु-

भावता कहते हैं पर वास्तव में तो यह उत्तम बुद्धि और व्यवहार-नीति है। प्रायः कार्य करने की रीति उस कार्य के समान ही और कभी-कभी उससे अधिक उपयोगी होती है; किसी के ऊपर यदि उपकार किया जाय तो उससे ही उसका शत्रु हो जाना और किसी के साथ बुराई की जाय तो उससे ही उसका मित्र हो जाना सम्भव है। इसका आधार उपकार या अपकार करने की रीति पर है। संक्षेपतः मनुष्य के धर्म तथा आचारविषयक कर्मों की पराकाष्ठा मन की दृढ़ता के साथ आचार की सुजनता है।

## चरित्र

मनुष्य का चरित्र केवल उत्तम ही नहीं किन्तु जूलियस् सीज़र की पत्नी* के समान संशय से परे होना चाहिए। ज़रा भी बट्टा लगने से वह किसी काम का नहीं रहता। इसके अतिरिक्त और किसी दोष से प्रतिष्ठा नहीं घटती और क्षुद्रता नहीं आती क्योंकि

* सीज़र के घर में एक बार रोम की एक ऐसी देवी का उत्सव हो रहा था कि जिसकी पूजा केवल स्त्रियाँ ही कर सकती थीं। उस समय एक तरुण लम्पट 'क्लाडिअस्' स्त्रियों के वस्त्र पहनकर वहाँ घुस गया। लेकिन स्त्रियों ने उसे पहचान लिया और वहाँ से निकाल बाहर किया। यह बात बहुत शीघ्र नगर में फैल गई और वहाँ के कुछ प्रतिष्ठित मनुष्यों ने, जो सीज़र से अप्रसन्न थे, इस बात के बढ़ाने में बड़ी कोशिश की पर सीज़र ने अपनी पत्नी का परित्याग करके इस कष्ट से पीछा छुड़ाया और परित्याग का यह कारण बताया कि 'सीज़र की पत्नी को संशय से परे होना चाहिए।'

इससे घृणा और अवज्ञा पैदा होकर आपस में मिल जाते हैं। संसार में क्षुद्र मनुष्य इतने दुर्व्यसनी होते हैं कि वे सदाचार के नियमों पर कभी ध्यान नहीं देते और समझते हैं कि ये विचार केवल स्थानिक हैं तथा केवल भिन्न-भिन्न देश के आचार-व्यवहार पर ही इनका आधार है। कुछ क्षुद्र मनुष्य इनसे भी बढ़कर हैं जो ऐसे मूर्खतायुक्त तथा दुष्ट विचारों का उपदेश तथा प्रसार करने का आडम्बर करते हैं जिन पर वे स्वयं भी विश्वास नहीं करते। जिन लोगों के साथ बातचीत करने से ज़रा भी अप्रतिष्ठा हो या कलङ्क लगे उनकी सङ्गति जहाँ तक हो छोड़ देनी चाहिए। पर अकस्मात् जो तुम ऐसे लोगों में जा पड़ो तो वे चाहे जितने प्रसन्न होते हों पर तुम अपने हाव-भाव इत्यादि से इस बात को कभी न दरशाओ कि तुम उनके आचार-विचारों से रत्ता भर भी सहमत हो। किसी विषय पर उनके साथ विवाद मत करो। पर उनसे इतना ही कहकर सन्तोष करो कि "मैं जानता हूँ तुम केवल हँसते हो। तुम्हारे विषय में मेरी सम्मति अच्छी है और तुम जिन विचारों का प्रचार करते हो उन्हें स्वयं काम में नहीं लाओगे यह मेरा पक्का विश्वास है।" पर अपने मन में तुम उनके पास कभी न जाने का सङ्कल्प करो।

मनुष्य के चरित्र के समान कोमल और कुछ नहीं है और उसे शुद्ध रखने में जितना लाभ है उतना और किसी में नहीं है। जिस मनुष्य पर अन्याय, द्वेष-बुद्धि, विश्वासघात या झूठ आदि की शङ्का हो जाय तो, पूर्ण विद्या और गुण होने पर भी,

उसकी चाहना और प्रतिष्ठा नहीं होगी और कोई भलामानस उससे मित्रता नहीं करेगा। इसलिए मैं तुमको यह शिक्षा देता हूँ कि तुम अपने चरित्र को बड़ा सूक्ष्म और निर्मल समझो और कोई ऐसा काम मत करो जिससे उसमें दाग़ लगे। हर एक प्रसङ्ग में यह दरशाओ कि तुम सद्गुणों के अभिमानी नहीं किन्तु मित्र हो। कर्नल चार्ट्रिस् संसार में नामी बदमाश था, जिसने हर एक भाँति का पाप करके बड़ा धन इकट्ठा किया था पर उसे भी एक बार यह कहते सुना गया था कि "सद्गुण के लिए तो मैं एक दमड़ी भी न दूँ पर सदाचार के लिए एक लाख रुपया दे सकता हूँ, क्योंकि उससे मुझे दस लाख और मिलेंगे।" इसलिए क्या यह सम्भव है कि एक बुद्धिमान् शठ जिस वस्तु को बहुत दाम देकर मोल ले उसकी ही एक भला आदमी परवाह न करे?

ऊपर कहे गये दुर्गुणों में एक झूठ है जो कलङ्क और हानि के साथ ऐसा मिला हुआ है कि पृथक् नहीं हो सकता। सुशिक्षित और बहुधा अच्छे नियमवाले मनुष्य भी युक्ति, होशियारी तथा आत्मरक्षा की भूल से कभी-कभी उसके जाल में फँस जाते हैं। मैं पहले इस विषय पर अपने विचार स्पष्टतया प्रकट कर चुका हूँ इसलिए अन्त में इतना ही कहता हूँ कि तुम अपने चरित्र की पवित्रता के लिए बहुत ही सचेत रहो। उसे सदा निष्कलङ्क, निर्दोष और पवित्र रक्खो; इससे वह अशङ्कित रहेगा। जहाँ कोई भी दोष नहीं वहाँ अपवाद और निन्दा से

कभी कुछ नहीं हो सकता ; वे बात को बढ़ाते अवश्य हैं पर पैदा नहीं कर सकते ।

## साधारण विषयों की आलोचना

साधारण विषयों की आलोचना को कभी काम में लाना, मानना या उसकी प्रशंसा करना नहीं चाहिए। ऐसे विषयों पर बुद्धिहीन तथा आत्माभिमानी लोग विवाद किया करते हैं। सचमुच हँसोड़ मनुष्य ऐसी आलोचना का बड़ा तिरस्कार करते हैं और ऐसे चलतेपुरज़े बननेवालों की बात पर हँसना भी बुरा समझते हैं।

## धर्म

धर्म उनका एक साधारण प्रिय विषय है। "धर्म एक गुरुजी का लोटा है जो कि अपने अधिकार तथा लाभ के लिए पुजा-रियों द्वारा निकाला गया है।" इस भाँति अनुचित और दूषित मूलतत्त्व लेकर वे धर्म-गुरुओं की हँसी तथा अपमान करते हैं। इनकी दृष्टि में पंथ के गुरु या तो स्पष्ट या घरेलू तौर पर नास्तिक, मद्यप तथा लम्पट हैं। पर मेरी समझ में वे और मनुष्यों के समान ही होते हैं। जोगिया कपड़े अथवा बड़ा पग्गड़ पहनने से वे कुछ अच्छे या बुरे नहीं हो जाते हैं। यदि वे औरों से भिन्न हों तो भी, शिक्षा तथा जीवन के व्यवहार के कारण, धर्म और सदाचार या शिष्टता में ही भिन्न होते हैं।

# विवाह

मिथ्या हँसोड़ तथा उत्साहहीन उपालम्भ करनेवालों का दूसरा साधारण विषय विवाह है। "हर एक पति-पत्नी एक दूसरे से अन्तःकरण से घृणा करते हैं यद्यपि बाह्य व्यवहार में इससे चाहे जितना विरुद्ध आडम्बर करते हों। पति चाहते हैं कि पत्नी का सर्वनाश हो जाय और पत्नियाँ सचमुच पति के चरित्र में दोष लगाती हैं।" मेरी समझ में पति-पत्नी विवाह-क्रिया के कारण एक दूसरे से अधिक प्रेम या एक दूसरे का तिरस्कार नहीं करते। सहवास के कारण जब एक दूसरे की योग्यता जान लेते हैं तब आपस में प्रीति अथवा द्रोह करने लगते हैं।

# राज-सभा और झोंपड़े

यह भी एक सुप्रसिद्ध तथा साधारण विचार है कि राज-दरबार झूठ और ठगई का स्थान है और अन्य विचारों के समान यह भी मिथ्या है। झूठ और ठगई वास्तव में राज-दरबार में होती तो हैं पर वे कहाँ नहीं होतीं? राजदरबार के समान झोंपड़ों में भी होती हैं। अन्तर इतना ही है कि झोंपड़ेवालों का आचरण अधिक ख़राब होता है। कोई भी दो राजदरबार के मनुष्य जैसे एक दूसरे से बढ़कर राजमान्य होने का प्रयत्न करें उसी भाँति दो कृषिकार भी पेंठ में एक दूसरे से आगे बढ़ने को अथवा ज़मींदार की कृपा दूसरे के ऊपर

से हटाकर ख़ुद अधिक कृपाभाजन बनने के लिए बड़ी युक्तियाँ करेंगे। किसानों के निष्कापट्य और राजदरबार के कपट के विषय में कवि चाहे जो लिखें और मूर्ख उसे भले ही मानें; पर इतना तो निःसन्देह ठीक है कि किसान और राजदरबारी दोनों मनुष्य हैं। उनके स्वभाव तथा मनोविकार एक से हैं। अन्तर केवल रीति में है।

जिनमें कुछ तत्काल उत्तर देने अथवा कोई नई बात पैदा करने की शक्ति नहीं होती पर जो दूसरों की कही हुई बातों को कहकर समाज में अपने को जँचाने की कोशिश करते हों वे ही ऐसी बातों में बहुत लगे रहते हैं। जिस समय वे यह आशा करते हों कि उनकी हँसी की बात से मुझे हँसना चाहिए तब ऐसे धृष्ट मनुष्यों को मैं गम्भीर रहकर निराश करता हूँ और जैसे कि उन्होंने वह बात पूरी न की हो पर सचमुच हँसी की बात आने को हो ऐसा भाव दिखाकर उनसे कहता हूँ कि "ठीक—फिर"। ऐसा करने से उनका चेहरा फीका पड़ जाता है क्योंकि उनमें कल्पना-शक्ति नहीं होती और केवल एक भाँति की हँसी के ऊपर ही वे दिन भर काट डालते हैं। बुद्धिमान् कभी इस तरह बड़-बड़ नहीं करते और उससे उन्हें बड़ी ग्लानि होती है। वे उपयोगी या मनोरञ्जक बातों के लिए बहुत से अच्छे-अच्छे विषय निकाल लेते हैं। किसी पर आक्षेप किये बिना ही वे हँसी की बातें कर सकते और मूढ़ हुए बिना ही गम्भीर हो सकते हैं।

# वक्तृत्व

वक्तृत्व अर्थात् अच्छा बोलने की कला जीवन की प्रत्येक स्थिति में उपयोगी है और अधिकांश मनुष्यों को तो वह अत्यन्त आवश्यक है। वक्तृत्व के बिना मनुष्य राजसभा में, आचार्य पद पर और वकीलों के समाज में प्रख्यात नहीं हो सकता। साधारण बात-चीत करने में जिसमें सरल तथा अभ्यास-जनित वाक्पटुता होती है और जो उचित और यथार्थ बात कहता है उसकी अशुद्ध और स्थूल वक्ताओं के बीच में शोभा होती है। वक्तृत्व का काम है किसी बात के लिए तत्पर करना और तत्पर करने के पहले बड़ा फलोत्पादक काम प्रसन्न करना है। श्रोताओं को इस भाँति प्रसन्न करना चाहिए जिसमें उनका ध्यान अपनी ओर खिंचे। सभा-समाज के वक्ताओं को उनका प्रसन्न करना बड़ा लाभकारक है और वक्तृत्व की सहायता बिना कोई ऐसा कर नहीं सकता।

यह तो निश्चय है कि हर एक आदमी पठन-पाठन और अभ्यास से साधारणतः अच्छा वक्ता हो सकता है। वाक्-चातुर्य का आधार तो होशियारी और सँभाल है। हर एक मनुष्य जो चाहे तो कठोर शब्द और वाक्य के बदले मधुर शब्द बोल सकता है; जो समझ में न आवे ऐसी पेचीदा बात कहने के बदले ऐसी बात कह सकता है जो स्पष्ट समझ में आ जाय; और हाव-भाव में आडम्बरशील न होकर सौन्दर्य भी रख सकता

है। आशय यह है कि प्रतिकूल होने के बदले श्रम और प्रयोग से अनुकूल वक्ता होना हर एक मनुष्य के हाथ में है। जिन ख़ास लक्षणों में मनुष्य पशुओं से उत्तम है उन्हीं में कुछ मनुष्यों को दूसरे मनुष्यों से उत्तम होने का श्रम करना भी योग्य ही है।

ग्रीस देश के प्रसिद्ध वक्ता डिमास्थनीज़ को अच्छा बोलना इतना आवश्यक लगा कि यद्यपि वह स्वभाव से तोतला तथा रुग्ण-हृदय था तो भी उद्योग से उस दोष को मिटा देने का उसने निश्चय किया। मुख में बहुत से कङ्कड़ रखकर और प्रतिदिन अधिक समय तक चिल्लाकर और स्पष्ट बोलने का अभ्यास कर उसने अपना तोतलापन मिटा दिया। तूफ़ानी ऋतु में समुद्र के किनारे जाकर उसे बहुधा एथिन्स की प्रजा-सभा के आगे भाषण करना होता था। वहाँ वह स्वयं ही यथाशक्ति चिल्लाकर बोलता था और इसी से उसने प्रजा-सभा का शब्द और बड़बड़ाहट सहन करने का अभ्यास कर लिया था। ऐसी असाधारण चिकित्सा और ध्यान से तथा उत्तम ग्रन्थों का निरन्तर अभ्यास करके हर एक देश तथा समय के वक्ताओं में वह सबसे बड़ा हुआ।

चाहे जो भाषा मनुष्य बोले पर वह बिल्कुल शुद्ध तथा व्याकरण के नियमों के अनुसार बोलनी चाहिए। शुद्ध भाषा बोलते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि हमारे मुख से कहीं असभ्य अथवा ग्राम्य शब्द न निकल जायँ। इसके

लिए उत्तम ग्रन्थकारों की पुस्तकों को ध्यान देकर पढ़ना चाहिए और शिक्षित तथा सभ्य मनुष्यों की बोलने की रीति पर ध्यान रखना चाहिए। साधारण मनुष्य बहुधा अशुद्ध भाषा बोलते हैं और ग्रामीण तथा असभ्य वाक्य कहा करते हैं। उच्च पदवी के मनुष्य ऐसे नहीं बोलते। साधारण मनुष्य एकवचन तथा बहुवचन मिला देते हैं और योग्य काल को क्वचित् ही काम में लाते हैं। इन सब दोषों को दूर करने के लिए ध्यान देकर पढ़ना चाहिए, श्रेष्ठ ग्रन्थकारों की रीति और वाक्य ध्यान देकर देखने चाहिएँ और जब कोई शब्द समझ में न आवे तब उसके अर्थ की खोज किये बिना उसे नहीं जाने देना चाहिए।

कहा जाता है कि मनुष्य कवि तो जन्म से ही होता है पर वक्ता होना उसके हाथ में है, क्योंकि कवि होने के लिए मन की कितने ही अंशों में दृढ़ता तथा चञ्चलता होनी चाहिए; पर ध्यान, पठन-पाठन और परिश्रम वक्ता होने के लिए काफ़ी हैं।

## पाण्डित्य का गर्व

हर एक सद्गुण के सम्बन्धी दुर्गुण होते हैं। सद्गुणों को एक ख़ास अवधि के बाहर ले जाने से वे दुर्गुण हो जाते हैं। उदारता से फ़िज़ूलख़र्ची, मितव्ययता से कृपणता, साहस से कलह में रुचि और चेतनता से प्राय: भीरुता हो जाती है। मेरी समझ में सद्गुणों को व्यवहार में लाने के लिए दुर्गुणों को छोड़ने से अधिक विचार की आवश्यकता होती है। दुर्गुण ठीक-

ठीक स्वरूप में देखने से इतने अरुचिकर लगते हैं कि देखते ही उनसे व्याकुलता होती है और जो पहले से ही उन्हें किसी सद्‌गुण के रूप में न देखा हो तो वे कदापि हमें कुमार्ग में नहीं ले जा सकते; पर सद्‌गुण स्वयं इतने सुन्दर होते हैं कि उनके देखते ही आनन्द हो जाता है। जैसे-जैसे हम उन्हें अधिक जानते हैं वैसे-वैसे ही वे हमारा अधिक आकर्षण करते हैं और अन्य सुन्दर वस्तुओं के समान उनकी भी सीमा हम नहीं समझ सकते। ऐसे अवसर पर उत्तम उद्देश के प्रयत्नों को चलाने और सीमा के भीतर रखने के लिए विचार-शक्ति की आवश्यकता होती है। इसी तरह बड़ी विद्वत्ता, जो उसके साथ दृढ़ विचार-शक्ति न हो तो, हमें बहुधा भूल, अभिमान तथा पाण्डित्य के गर्व में डाल देती है।

## किसी विषय पर धृष्टता से सम्मति प्रकट नहीं करना

कितने ही विद्वान् ज्ञान के गर्व के कारण केवल निर्णय करने के लिए ही बोलते हैं और अन्त में बिना प्रमाण के फ़ैसला कर देते हैं। इसका यह परिणाम होता है कि मनुष्य-जाति अवज्ञा से व्यग्र होकर और अपकार से चिढ़कर असन्तुष्ट हो जाती है और इस धृष्टता से पीछा छुड़ाने के लिए न्याय के अधिकार का भी विरोध करती है। जैसे-जैसे तुम अधिक ज्ञान सम्पादन करते जाओ वैसे-वैसे ही तुम्हें अधिक विनयी होना चाहिए

क्योंकि मिथ्या बड़ाई चाहनेवाले मन को सन्तुष्ट करने का निश्चित मार्ग विनय है। जहाँ तुमको निश्चय हो वहाँ भी कुछ संशय दिखाओ। अपना मत प्रकट करो पर उसे निश्चय-पूर्वक मत कहो। जो औरों को प्रतीति कराने की तुम्हारी इच्छा हो तो जो उचित वे कहेंगे उसकी तुम भी प्रतीति करोगे यह उन्हें समझने दो।

## आधुनिकों की अपेक्षा प्राचीनों को अधिक पसन्द करने का आडम्बर नहीं करना

कितने ही मनुष्य अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिए प्राचीनों को साधारण मनुष्यों की अपेक्षा उत्तम और आधुनिकों को अधम सदा बताया करते हैं। वे एक या दो प्राचीन पुस्तकें सदा अपने समीप रखते हैं; वे पुराने विचारों को अच्छा समझ उनमें लगे रहते हैं और नई पुस्तकों को निरुपयोगी समझकर नहीं पढ़ते, और यह बताने के लिए तैयार रहते हैं कि गत १८०० वर्ष से किसी भी विज्ञान या शास्त्र में सुधार नहीं हुआ है। मैं किसी भाँति भी यह सम्मति नहीं देता हूँ कि तुम अपने प्राचीनों के ज्ञान को स्वीकार न करो; पर यह अवश्य चाहता हूँ कि तुम उनके साथ असामान्य सम्बन्ध होने का अभिमान मत करो। आधुनिक विद्वानों का, बिना तिरस्कार के और प्राचीनों का बिना अतिशय भक्ति के, वर्णन करो; समय से नहीं, पर गुणों से उनका निर्णय करो।

## प्राचीन प्रमाणों के आधार पर अनुमान न करना

कितने ही विद्वान् प्राचीन ग्रन्थों में समान उदाहरण देख उनसे अपने सार्वलौकिक तथा घरेलू बर्ताव के लिए बड़ी अनुचित रीति से नियम गढ़ लेते हैं। वे इतना विचार नहीं करते कि जब से संसार की उत्पत्ति हुई है तब से कभी ऐसे दो उदाहरण नहीं हो सके जो एक दूसरे के बिलकुल समान हों और ऐसा एक भी विषय नहीं जिसे किसी भी इतिहास-लेखक ने उसके सम्पूर्ण अन्तर्गत विषयों के साथ वर्णन किया या जाना भी हो। किसी भी उदाहरण से अनुमान करने के लिए उस विषय की सम्पूर्ण बातें जाननी चाहिएँ। प्राचीन कवि और इतिहास-लेखकों के प्रमाण की परवा न कर चाहे जिस विषय का उसकी सम्पूर्ण बातों पर से अनुमान करो और उसी भाँति बर्ताव करो। तुम्हारी इच्छा हो तो ऐसे उदाहरणों पर विचार करो जो देखने में एक से हों पर उनसे केवल सहायता लो, उपदेश ग्रहण मत करो।

## विद्वत्ता का आडम्बर करने से दूर रहना

ऐसे विद्वानों की भी एक जाति है कि जो स्वमताग्रही और उद्धत तो कम होते हैं पर असभ्यता में कम नहीं होते। यह जाति वाचाल तथा प्रख्यात विद्याभिमानियों की है। वे स्त्रियों

के साथ भी अपनी बातचीत को संस्कृत के उत्तम वाक्यों से भूषित करते हैं। ऐसा बहुधा ऐसे अभिमानी किया करते हैं जिनमें विद्या तो लेश मात्र भी नहीं होती पर जिन्हें प्राचीन ग्रन्थकारों के कितने ही नाम और उनके ग्रन्थों के अनेक वाक्य याद रहते हैं जिन्हें वे अयोग्य रीति तथा धृष्टता से हर एक मण्डली में अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिए बोल उठते हैं। इसलिए जो एक ओर विद्याभिमान के और दूसरी ओर मूर्ख होने के दोष से दूर रहना हो तो तुम विद्वत्ता का आडम्बर मत दिखाओ। जिस मण्डली में तुम बैठो-उठो उसकी शुद्ध भाषा दूसरी भाषा मिलाये बिना बोलो। तुम जिन लोगों के साथ रहते हो उनसे अधिक बुद्धिमान् अपने को मत दिखाओ। अपनी विद्वत्ता को जेबघड़ी के समान भीतर की जेब में रक्खो और केवल यह दिखाने के लिए उसे बाहर मत निकालो कि तुम्हारे पास जेबघड़ी है। जो तुमसे पूछा जाय कि क्या बजा है तो भले ही कह दो, पर पहरेदार के समान बिना पूछे घण्टे मत बजाओ।

## व्यसन और सुख

अधिकांश युवक बिना रुचि भी कितने ही व्यसन केवल इसलिए करते हैं कि वे शौक़ कहलाते हैं। वे बहुधा भूल से विषय-भोग को सुख मान लेते हैं। मन और शरीर को समान हानिकारक मद्यपान तो वास्तव में उनका रुचिकर सुख है। जुआ—जिससे हम सैकड़ों विपत्तियों में गिरते हैं, हमारे पास

दमड़ी भी नहीं रहती तथा निर्लज्ज विक्षिप्त मनुष्य के समान हमारा आचरण हो जाता है—उनका दूसरा सबसे उत्तम शौक़ है !!

शौक़रूपी चट्टान के ऊपर बड़े-बड़े युवक टक्कर खाते हैं। उसकी तलाश में वे वायु से भरे हुए अनेक पालों सहित चल पड़ते हैं पर उनके पास न तो मार्ग बताने के लिए दिक्सूचक यन्त्र होता है और न उनमें जहाज़ चलाने की उपयुक्त बुद्धि होती है इस कारण उनकी यात्रा का फल सुख के बदले दुःख और लज्जा हो जाती है। लौकिक अर्थ के अनुसार शौक़ीन आदमी उसे कहते हैं जो बड़ा भारी शराबी, भ्रष्ट, लम्पट, दुश्चरित्र तथा शपथ खानेवाला होता है। अपने शौक़ से उत्पन्न हुए वर्तमान आनन्द की हमें उसके आवश्यक परिणाम से तुलना करनी चाहिए; फिर अपनी साधारण बुद्धि के अनुसार भले-बुरे का निर्णय करना चाहिए।

खाने-पीने के शौक़ तुम करो पर उनकी अधिकता के दुःखों को नहीं भूलना चाहिए। और लोग जो करें वह उन्हें भले ही करने दो पर जिनको अपनी शक्ति और शरीर पर प्रीति नहीं उनका मन रखने के लिए तुम अपने सामर्थ्य और शरीर का नाश न करने का दृढ़ सङ्कल्प रक्खो। जहाँ सब भाँति के मनुष्य हों ऐसे समाज में आनन्द के लिए वहाँ की रीति के अनुसार थोड़े दाम से जुआ भले ही खेलो पर जहाँ तक हो जुआ न खेलना ही अच्छा है। भद्र मनुष्य मण्डली में ऐसे आदमियों को पसन्द नहीं करते जो नशे में चूर होते हैं। यदि कोई मनुष्य खेल

में इतने पैसे हार गया हो कि जिन्हें वह नहीं चुका सकता हो और इसलिए वह चिल्लाकर ईश्वर की निन्दा करता हो तो ऐसा मनुष्य मण्डली में नहीं सुहाता। जो लोग ऐसा करते हैं और करके प्रसन्न होते हैं उनसे कोई मण्डली अच्छी नहीं कहाती। ऐसे मनुष्यों का तो सभ्य-समाज में प्रवेश भी बहुत कठिनता से होता है। सचमुच शौक़ीन और सभ्य मनुष्य सदाचार के अनुसार चलते हैं; न तो वे दुर्गुण किसी से ग्रहण करते न उसका आडम्बर करते हैं और जो भाग्यवश उनमें कोई दुर्गुण हो भी तो वे विचार, लावण्य तथा गुप्त रीति से उसकी तृप्ति कर लेते हैं।

जितना ध्यान हम अपने विद्याभ्यास पर देते हैं उतना ही हमें अपने व्यसन पर देना चाहिए। विद्याध्ययन में हम जो पढ़ें उसका हमें विचार और अवलोकन करना चाहिए। व्यसन में भी हम जो कुछ सुनें या देखें उस पर ध्यान रखना चाहिए। ऐसा अवसर नहीं आने देना चाहिए जिसमें अपने सम्मुख कोई कुछ कहे या करे और उस पर हमको मूर्खों के समान यह कहना पड़े कि "वास्तव में हमारा ध्यान उस ओर नहीं था क्योंकि हम किसी दूसरे विषय का विचार कर रहे थे।" हम क्यों दूसरी बात का विचार कर रहे थे और जो ऐसा था तो हम वहाँ आये ही क्यों? जहाँ हम हों हमको (साधारण लोगों की बोलचाल के अनुसार) अपने कान और आँख पास रखने चाहिएँ। हर एक आदमी जो कुछ कहे उसे सुनना और

जो करे उसे देखना चाहिए। अवलोकन ऐसा करना चाहिए जिसमें किसी को इसका बोध न हो क्योंकि जानने से लोग हमसे सावधान हो जायँगे।

सब भाँति का जुआ, शिकार और ऐसे ही दूसरे खेल—जिनमें समझ का ज़रा भी काम नहीं पड़ता—सब क्षुद्र हैं और जो विचार नहीं करते या करना नहीं चाहते ऐसे छछोरे लोगों के समय नष्ट करने का आश्रय हैं पर बुद्धिमानों का शौक़ या तो उनके मन को सुधारता है या उनकी बुद्धि को उत्तेजित करता है।

अत्यन्त सेव्य और अल्प सेव्य दोनों भाँतिके सुख हैं तथा दोनों ही भाँति की सुख की सामग्रियाँ हैं। नशे में चूर होने तक शराब पीना, विचाररहित चटोरापन, ख़ूब गाड़ी हाँकना, मैदान के जङ्गली खेल, जैसे कि लोमड़ी का शिकार, घुड़-दौड़ आदि, दरज़ी और मोची के मिहनत और ईमानदारी के व्यवसाय से बहुत उतरते हुए हैं।

जितने अधिक हम काम में लगे रहते हैं उतनी ही अधिक सुख की रुचि होती है। जैसे कसरत से भूख बढ़ती है वैसे ही प्रात:काल विद्याभ्यास के मानसिक परिश्रम से सायंकाल खेल की इच्छा तीव्र होती है। मूर्ख या सुस्त आदमी ऐसा समझते हैं कि काम और खेल एक दूसरे के शत्रु हैं पर जो ठीक-ठीक समझा जाय तो वे एक दूसरे के सहायक हैं। पहले अत्यन्त

परिश्रम किये बिना हमको खेल का पूरा-पूरा स्वाद नहीं मिल सकता। जो लोग सिवा काम के और कुछ नहीं करते उनमें से थोड़े से ही ऐसे हैं कि जो काम भली भाँति करते हैं। व्यसन से मेरा आशय कुत्सित व्यसनों से नहीं है किन्तु उन सुखोत्पादक कर्मों से है जो भलेमानसों के योग्य हैं।

## पूर्व-निर्धारित ज्ञान

जिस पुस्तक को पढ़ो अथवा जिस मण्डली में रहो उसके विचारों को तुम जाँचे बिना कभी स्वीकार मत करो। यदि ऐसा न करोगे तो तुम विचार-शक्ति से कुछ भी अवलोकन न कर सकोगे और पहले सुनी हुई बातें तुमको ठीक मालूम होंगी। इससे सत्य बात जानने के बदले तुम अज्ञान से भूल में ही पड़े रहोगे।

अपनी विचारशक्ति का उपयोग करो और उसके निर्णय को प्रमाण समझो। अविकल विचार करने के लिए प्रत्येक वस्तु का चिन्तन करो; उसकी परीक्षा करो और उसका विभाग करो। अपनी ज्ञान-शक्ति में कभी भ्रांति मत पड़ने दो, अपने कर्मों को बुरे मार्ग पर मत जाने दो, और अपनी बात-चीत के ऊपर कोरी दिखावट मत आने दो। तुम जैसे होना चाहो पहले से ही वैसे हो लो जिसमें अवसर चूकने पर यह न कहना पड़े कि हमको ऐसा होना चाहिए था। जहाँ तक हो सके अपनी विचार-शक्ति से काम लो। मैं यह नहीं

कहता कि विचार-शक्ति से कभी भूल नहीं होगी क्योंकि मनुष्य की विचार-शक्ति ऐसी नहीं है जिससे भूल न हो, पर जो बात तुम उसके अनुसार करोगे उसमें सबसे कम त्रुटि होगी। पठन-पाठन और बात-चीत से विचार-शक्ति को सहायता मिलेगी पर आँख मीचकर और निःसन्देह होकर किसी बात को भी स्वीकार मत करो। 'विचार करना' यह सर्वोत्तम नियम ईश्वर ने मार्ग बताने को तुम्हें दिया है; जो कुछ तुम पढ़ो या सुनो उसके साथ इसका उपयोग करो। अनेक भाँति के परिश्रमों में से विचार करने के परिश्रम से कभी मुख मत मोड़ो जैसे कि बहुधा लोग किया करते हैं। यह कदाचित् ही सम्भव कहा जा सकता है कि साधारण मनुष्य विचार करते हैं। उनके सब आशय प्रायः औरों से लिये हुए होते हैं और मैं समझता हूँ कि सामान्य रीति से ऐसा होना बहुत अच्छा भी है। क्योंकि उनके क्षुद्र तथा असभ्य विचारों की अपेक्षा ऐसे सामान्य विचारों के ग्रहण करने से मनुष्य-समाज में व्यवस्था और शान्ति की वृद्धि होती है। स्थानिक पूर्व-कल्पित विचार केवल तुच्छ बुद्धिवाले मनुष्यों ही के ऊपर अधिकतर अधिकार जमा लेते हैं। ज्ञानवान् तथा विचारशील लोगों पर उनका अधिकार नहीं जम सकता। सत्य का अनुसन्धान करने के लिए आवश्यक श्रम के, उसकी परीक्षा करने के लिए योग्य ध्यान के और उसका निर्णय करने के लिए आवश्यक तीक्ष्ण बुद्धि के अभाव के कारण बहुत से श्रेष्ठ तथा

प्रशस्त समझ के मनुष्य भी कुछ मिथ्या विचारों को ग्रहण कर लेते हैं। मैं चाहता हूँ कि मनुष्योचित परिश्रम से अपनी विचार-शक्ति पर ध्यान रखकर ऐसे दुराग्रह से तुम दूर रहो।

## धर्म

मत के सम्बन्ध में चाहे जैसी मोटी भूल हो पर निष्कपट हो तो वह करुणा के योग्य होती है, दण्ड या हँसी के नहीं। आँख के अन्धेपन के समान ज्ञान का अन्धापन भी दया करने के योग्य है और दोनों में से एक कारण से भी जो मनुष्य मार्ग भूल जाय वह दण्ड या हास्य का पात्र नहीं हो सकता। प्रमाण सहित विवाद करके और समझाकर उसे सीधे रास्ते पर लाने का यत्न करने के लिए जो परोपकार-बुद्धि हमें उत्तेजित करती है, वही उसको दण्ड देने या उसकी हँसी करने को मना करती है। हर एक मनुष्य सत्य का अन्वेषण करता है पर यह केवल ईश्वर ही जानता है कि कौन उसे अब तक ढूँढ़ सका है। विचार-शक्ति के विश्वास पर जिन विचारों का होना आवश्यक है उनके लिए लोगों को सताना अनुचित और उनका हास्य करना मूर्खता है। जो झूठ बोलता है वह यथार्थ में दोषी है पर जो ईमानदारी और शुद्ध अन्तःकरण से उसे सत्य मानता है वह कदापि दोषी नहीं हो सकता।

संसार में सब लोग एक ही की प्रार्थना करते हैं और वह सर्वोत्तम, वस्तु मात्र का स्रष्टा, अनन्त परमेश्वर है। ईश्वरार्चन

की भिन्न-भिन्न रीतियाँ किसी भाँति भी हास्यास्पद नहीं। हर एक पन्थ के मनुष्य अपने पन्थ को श्रेष्ठ गिनते हैं, पर श्रेष्ठ कौन सा पन्थ है यह निर्णय कर ऐसा अखण्ड्य निर्णय करनेवाला इस जगत् में मेरी समझ में कोई भी नहीं है।

## समय का उपयोग

समय के उपयोग और मूल्य के ऊपर हम बहुत कम विचार करते हैं। हर एक मनुष्य यह तो कहता है कि "उस पर विचार करना चाहिए" पर अधिकांश ऐसा करते नहीं। हर एक मूर्ख अपना पूरा समय व्यर्थ काटता है पर वह भी समय की जल्दी तथा उसका उपयोग एकदम साबित करने के लिए बार-बार व्यवहार में लाये गये साधारण वाक्य प्रायः बोल उठता है। यूरोप में धूप-घड़ियों के ऊपर युक्तिपूर्ण लेख होते हैं जिनसे, समय का भली भाँति उपयोग करना कितना आवश्यक है और जो खो दिया जाय तो वह अप्राप्य है, यह बार-बार देखे और सुने बिना कोई भी मनुष्य अपना समय नष्ट नहीं करता। युवकों को यह समझने की आदत हो जाती है कि हमारे पास इतना समय है कि इसमें से चाहे जितना वृथा नष्ट कर देंगे तब भी पूरा बाक़ी रहेगा। इसी भाँति बहुत द्रव्य के कारण मनुष्य बहुत धन वृथा नष्ट कर नाश पाते हैं किन्तु केवल बुद्धिमान् ही समय का उपयोग अच्छी तरह करते हैं और मूर्ख तो केवल बक-बक करने ही के होते हैं।

## आलस्य

समय अमूल्य और जीवन थोड़ा है इसलिए एक मिनट भी वृथा नष्ट नहीं करना चाहिए। बुद्धिमान् मनुष्य समय का उत्तम प्रकार से उपयोग करना जानते हैं और उसको सुख के अर्थ या लाभ के काम में लगाते हैं। वे सुस्त कभी नहीं रहते पर विद्याभ्यास या विनोद में बराबर लगे रहते हैं। आलस्य दुर्गुणों की जड़ है। यह सब संसार कहता है और यह भी निश्चय है कि आलस्य मूर्खों का ही पैतृक धन है। आलसियों से बढ़कर और कोई मनुष्य तिरस्कार के योग्य नहीं होता। रोम का महापुरुष पण्डित तथा सद्‌गुणी कैटो कहा करता था कि अपने जीवन में केवल तीन काम मैंने ऐसे किये हैं जिनका मुझे परिताप है—पहला यह कि मैंने अपनी स्त्री से एक गुप्त बात कह दी थी। दूसरा यह कि जब मैं सूखे मार्ग से जा सकता था तब मैं जल-मार्ग से गया और तीसरा यह कि विना कुछ किये मैंने एक दिन व्यतीत किया था।

## पढ़ना

इँगलैंड के तृतीय विलियम, एन और प्रथम जार्ज के समय के कोष के प्रसिद्ध मन्त्री वृद्ध मिस्टर लौनडीज़ का यह विचार वास्तव में उपयुक्त तथा बुद्धिमानी का था कि "पैसों की सँभाल रक्खोगे तो रुपये अपनी सँभाल अपने आप कर लेंगे।" इसलिए

मैं तुम्हें हर एक मिनट की सँभाल रखने की सम्मति देता हूँ क्योंकि ऐसा करने से घण्टे तो अपनी सँभाल अपने आपही कर लेंगे। सब दिन कुछ न कुछ करते ही रहो और आधे या चौथाई घण्टों को भी जाने मत दो क्योंकि वर्ष के अन्त में उनका बड़ा जोड़ होता है। दिन में यदि विद्याभ्यास तथा शौक़ के बीच में थोड़ा-थोड़ा समय मिला करता हो, तो उसमें आलस्य में बैठे रहने या जँभाई लेने की अपेक्षा कोई उत्तम पुस्तक पढ़ो और जब तक वह पूरी न हो उसका पठन जारी रक्खो। एक से अधिक विषय का बोझ एक समय अपने मन के ऊपर मत डालो। पढ़ने में पुस्तक को ऊपरी तौर से ही मत देखो पर हर एक वाक्य कम से कम दो बार पढ़ो। एक वाक्य भली भाँति समझे बिना दूसरा मत पढ़ो और पुस्तक का विषय पूरा-पूरा सीखे बिना उसे मत उठा धरो क्योंकि जो ऐसा करोगे तो तुम उस पुस्तक को पूरा पढ़ तो लोगे पर उसका विषय तुम्हें एक सप्ताह भी याद नहीं रहेगा। कभी-कभी तुम्हें आधा या चौथाई घण्टा मिले तो उसमें नवीन आविष्कार की या मनोरञ्जन की पुस्तकें पढ़ो पर प्राचीन या आधुनिक क्षुद्र ग्रन्थकारों की पुस्तकों के पढ़ने में एक मिनट भी वृथा नष्ट मत करो।

विचारशील मनुष्यों के समान शौक़ करना कुछ आलस्य नहीं कहाता; उसमें समय वृथा नहीं जाता किन्तु उसका अच्छा उपयोग होता है।

---

## व्यावहारिक काम करना

तुमको जो कुछ काम करना हो उसे, तुम कर सको तो, पहली बार ही कर लो। आधा काम कभी मत करो, अगर हो सके तो बिना अटकाव के पूरा ही करो। आलस्य या क्षुद्रता से काम मत करो और उसे किसी आगे के समय के लिए मत उठा धरो। पहला ही अवसर काम के लिए बहुत अनुकूल होता है। बुद्धिमान् मनुष्यों को विद्याभ्यास और काम कितने ही अंश में अपना अवसर स्वयं बता देते हैं।

## क्रम

काम का मुख्य आधार फुर्ती है और फुर्ती के लिए क्रम से बढ़कर आवश्यक और कुछ नहीं है। हर एक काम के लिए नियम बनाओ और जहाँ तक हो सके हमेशा उनका पालन करो और उन्हें कभी मत तोड़ो। हिसाब के लिए सप्ताह में एक ख़ास दिन और एक ख़ास घण्टा नियत करो और उसे बराबर क्रम से रक्खो। इस ढङ्ग से हिसाब में बहुत कम समय लगेगा और तुम कभी धोखा नहीं खाओगे। तुम्हारे पास जो-जो काग़ज़ या पत्र हों उनकी एक सूची बनाओ और उनके भिन्न-भिन्न वर्ग कर उन्हें बाँधकर रक्खो जिससे कि जब तुम्हें कोई काग़ज़ देखना हो तब वह तुरन्त मिल जाय। अपने पढ़ने के भी नियम बनाओ और उसके लिए सबेरे का

कोई ख़ास घण्टा नियत कर लो। अधिकांश मनुष्य भिन्न-भिन्न ग्रन्थकारों के भिन्न-भिन्न विषयों के लेखों को कुछ इधर कुछ उधर पढ़ लेते हैं पर ऐसे नहीं पढ़ना चाहिए। चाहे जैसा विषय हो उसके सम्पूर्ण लेखों को सम्बन्ध और क्रम के अनुसार पढ़ना चाहिए। अपनी स्मरणशक्ति की सहायता के लिए तुम जो कुछ पढ़ो उसे टीपने की एक छोटी और उपयोगी कापी रक्खो पर उसे बातचीत में कहकर पाण्डित्य का गर्व मत दिखाओ। नक़शे और वंशावली की पुस्तकें पास रखकर बार-बार उनका उपयोग किये बिना इतिहास मत पढ़ो। उनके बिना इतिहास केवल घटनाओं के अस्तव्यस्त पुञ्ज के समान होता है।

अधिकांश युवक जैसे कहा करते हैं वैसे ही तुम भी कहोगे कि ये सब क्रम और नियम बड़ा हैरान करते हैं। ये केवल आलसी मनुष्यों के योग्य हैं और युवावस्था के उत्तम साहस तथा हविस के अरुचिकर अवरोधक हैं। मैं इस बात को अङ्गीकार नहीं करता बल्कि उसके विपरीत यह प्रतिपादन करता हूँ कि इनसे तुमको अपने शौक़ के लिए अधिक समय मिलेगा और उसमें अधिक रुचि होगी। ये तुम्हें ऐसे रुचिकर लगेंगे कि एक महीने तक इनका अनुसरण करने के अनन्तर फिर इन पर ध्यान न देने से तुमको अरुचि होगी। जैसे शारीरिक व्यायाम से भोजन की रुचि होती है वैसे ही काम से आनन्द करने की इच्छा प्रदीप्त होती है और उसमें स्वाद मालूम होता

है। काम तो नियम बिना कभी नहीं हो सकता, उससे आनन्द करने का उत्साह और बढ़ जाता है। तमाशे, नाच या सभा में जिस मनुष्य ने वहाँ जाने से पहले का समय वृथा नष्ट किया है उसकी अपेक्षा जिसने उसे परिश्रम में बिताया है उसे अधिक हर्ष होगा, इतना ही नहीं किन्तु मैं यह कहने का भी साहस करता हूँ कि किसी मनोहर स्त्री में आलसी की अपेक्षा विद्याभ्यासी या परिश्रमी को अधिक शोभा दीखेगी। आलसी के पूरे बर्ताव में एक ही भाँति की उदासीनता रहती है और जितना वह अपने शौक़ का अरसिक होता है उतना ही और बातों में भी रसहीन होता है।

मैं चाहता हूँ कि तुम अपने शौक़ को पैदा करो अर्थात् काम करके उसके लायक़ हो और उसका स्वाद जानो क्योंकि अधिकांश मनुष्य अपने को शौक़ीन तो गिनते हैं पर वास्तव में वे एक भी शौक़ नहीं करते। अपनी रुचि न होने पर भी वे बिना विचारे दूसरों के शौक़ किया करते हैं। मैंने यह भी देखा है कि शिक्षा का एक लक्षण प्रचुरता समझकर वे शौक़ में लवलीन रहते हैं पर जैसे दूसरे मनुष्य के वस्त्र उनके शरीर पर अच्छे न लगें उसी भाँति दूसरों के शौक़ उन्हें नहीं सुहाते। तुम अपने शौक़ के सिवा औरों का शौक़ मत करो; अपना शौक़ करने से ही तुम्हारी शोभा होगी। जो विद्याभ्यास या काम में न लगे हों तो अधिकांश मनुष्य समझते हैं कि हम आराम करते हैं पर ऐसा नहीं है। बिना काम बैठे रहना और

सोना बराबर है। उन्हें सुस्ती की आदत पड़ जाती है और वे ऐसे स्थानों में जाते हैं जहाँ उनको कुछ रोक-टोक न हो और उनकी ओर कोई ध्यान भी न दे। समय को इस भाँति आलस्य में कभी नहीं बिताना चाहिए और हमेशा ऐसी जगह जाना चाहिए जो उत्साह तथा आनन्दवर्धक हो अथवा जहाँ से कुछ शिक्षा मिले। तुम जिस मण्डली में जाओ वह ऐसी होनी चाहिए कि उससे या तो तुम्हारे ज्ञान की उन्नति हो या तुम्हारा आचरण सुधरे।

कभी किसी समय किसी उपयोगी काम के लिए जो दो-तीन घण्टे की आवश्यकता हो तो उतना ही कम सोओ। मनुष्य-मात्र को सदा ६ या ७ घण्टे की अविराम निद्रा काफ़ी है। इससे अधिक समय तो सुस्ती और झोंके मारने में जाता है जो हानिकर और जड़ता उत्पन्न करनेवाले हैं। दैवयोग से जो तुम्हें किसी काम के कारण सबेरे के चार या पाँच बजे तक जागना पड़े तो भी तुम बराबर नियत समय पर उठो क्योंकि उससे तुम्हारा सबेरे का अमूल्य समय व्यर्थ नहीं जायगा और कम नींद आने के कारण दूसरी रात को तुम्हें नियत समय से पहले सोना पड़ेगा।

## निरर्थक व्यापार

सबसे मुख्य बात यह है कि निरर्थक व्यापार से सावधान रहो। तुच्छ विषयों में लगा हुआ मन सदा काम में तो होता

है पर उससे कुछ फल नहीं होता। ऐसे मन के कारण मनुष्य छोटी बातों को बड़ी गिनने लगते हैं और ज़रूरी बातों के उपयुक्त ध्यान और समय को तुच्छ बातों में लगाते हैं। वे खिलौने, तीतरी, कीट, शङ्ख आदि का बड़ी गम्भीरता से अनुसन्धान करते हैं। अपने समाज के लोगों के आचरण को छोड़ उनके वस्त्रों पर अधिक विचार करते हैं। खेल की सुन्दरता की अपेक्षा उसकी बनावट पर और राज्य की नीति की अपेक्षा राज-दरबार के आचार के ऊपर वे अधिक ध्यान देते हैं। समय का इस भाँति का उपयोग उसका पूरा-पूरा क्षय है।

इस विषय में संक्षेप से इतना ही कहना है कि कार्य-विमुखता, आलस्य तथा भीरुता युवकों को हानिकारक हैं। अगर बहुत शीघ्रता हो तो आज से चालीस वर्ष पीछे तुम उनका आश्रय लेना। चाहे तुम कितनी ही बातों में प्रतिकूल क्यों न हो तो भी थोड़े समय के लिए तुम जिस शहर में हो वहाँ के प्रसिद्ध तथा भले आदमियों की ही सङ्गति, उनके पद या विद्वत्ता के कारण, रखने का प्रयत्न करो। इससे जहाँ तुम जाओगे वहाँ उत्तम मण्डली में प्रविष्ट होने के लिए तुमको एक भाँति का विश्वास-पत्र मिलता है।

समय का ठीक-ठीक मूल्य जानो; एक मिनट को भी जाने न दो। उसे अपने वश में करो और उसका उपयोग करो। आलस्य, सुस्ती या दीर्घसूत्रता कभी न करो। जो तुम आज कर सकते हो उसे कल के लिए कदापि न उठा रक्खो। भाग्य-

हीन पेंशनरी डीवीट * का यह एक प्रसिद्ध नियम था। इसके अनुसार बराबर बर्तने से उसे केवल प्रजा-तन्त्र राज्य का सब काम करने के लिए ही समय न मिलता था किन्तु वह सभा और भोज में सायङ्काल को ऐसे शामिल होता था मानो उसे और कुछ करने या विचारने को है ही नहीं।

## मिथ्या गर्व

अनभिज्ञ युवा मनुष्यों का साधारण दोष मिथ्या गर्व है; उससे—और विशेषकर जिससे तुम आत्माभिमानी कहलाओ ऐसे वृथाभिमान से—सदा दूर रहो। मिथ्या गर्व से अपना ही काम कैसे भिन्न-भिन्न प्रकार से बिगड़ता है यह समझ में नहीं आ सकता। एक आदमी हर एक विषय पर निश्चयपूर्वक फ़ैसला दे देता है, बहुत से विषयों में अपनी अज्ञानता प्रकट कर देता है और अवशेष विषयों पर जिससे व्याकुलता हो ऐसा क्षुद्र अभिमान रखता है। दूसरा स्त्रियों में सम्पन्न-मनोरथ होना चाहता है, कुलीन तथा सुन्दर स्त्रियों की ओर से उसे उत्तेजन

---

* हालेंड का ग्रांड-पेंशनरी डीवीट एक अच्छा राजनीति-विशारद था। उसका जन्म सन् १६२५ या १६३२ में हुआ था। वह बहुत सच्चरित्र, नम्र तथा सीधा मनुष्य था। उसके भाई को राजद्रोह में भाग लेने के कारण कारावास का दण्ड हो गया था। डीवीट वहाँ उसे देखने गया और २० अगस्त सन् १६७२ को दोनों भाई वहीं मार डाले गये।

मिला है ऐसा इशारा करता है और किसी एक के साथ विशेष सम्बन्ध जताता है। जो सच हो तो यह काम क्षुद्र है और झूठ हो तो अप्रतिष्ठासूचक है। पर हर एक तरह से वह अपनी प्रतिष्ठा की जड़ में आप कुल्हाड़ी मारता है। कितने ही मनुष्य जिनका उनके साथ बिलकुल सम्बन्ध न हो ऐसे असङ्गत विषयों से अपने अहङ्कार को तृप्त करते हैं, जैसे कि वे प्रख्यात गुण-वाले तथा अति प्रतिष्ठित मनुष्यों के वंश में हैं, उनके साथ सम्बन्ध है या उनसे परिचय है। वे बार-बार अपने उन दादा, चाचा तथा अन्तरङ्ग मित्रों की बातें किया करते हैं कि जिनसे उनकी जान-पहचान भी सम्भव न हो। पर यदि उनके कहने के अनुसार सबका उनके मित्र-बान्धव होना स्वीकार भी किया जाय तो क्या हुआ? ऐसे आकस्मिक सम्बन्ध से क्या उनकी अधिक प्रतिष्ठा हो जाती है? कदापि नहीं। इस भाँति आकस्मिक श्रेष्ठता प्रतिपादन करने से उनमें स्वाभाविक गुणों का अभाव सूचित होता है। लक्ष्मीवान् मनुष्य कभी किसी से उधार नहीं लेते। जैसा तुम अपने को प्रख्यात किया चाहो वैसा अपने को दिखाने का आडम्बर कभी मत करो। यह नियम सदा क़ायम रक्खो। प्रशंसारूपी मछली के पकड़ने के लिए अमोघ गोली विनय है। तत्काल उत्तर देने की शक्ति का आडम्बर करने से यथार्थ चतुर मनुष्य भी आत्माभिमानी समझा जायगा और साहस का आडम्बर करने से सच्चा शूर भी अभिमानियों में गिना जायगा। "विनय" से मेरा आशय भीरुता तथा मूर्खता

सहित लज्जा से नहीं है किन्तु भीतर से चौकस और दृढ़ होने से है। कैसी ही क्यों न हो तुम अपनी योग्यता को जानो और उसके अनुकूल नियमों पर चलो लेकिन यह किसी को मत जानने दो कि तुम अपनी योग्यता को जानते हो। तुममें जो अच्छे-अच्छे गुण हैं उन्हें लोग ढूँढ़कर जान लेंगे क्योंकि जैसे वे औरों के निर्णय को ठीक नहीं समझते उसी तरह अपने निर्णय को सदा ठीक समझते हैं।

## सद्गुण

सद्गुण का विषय ऐसा है कि वह हमारे और प्रत्येक मनुष्य के ध्यान के योग्य है। भलाई करना और सत्य बोलना ये ही सद्-गुण हैं इसलिए इनका परिणाम मनुष्य-जाति को और विशेषकर अपने को ही लाभकारक है। सद्गुण के कारण मनुष्य-जाति के दु:खों पर दया आती है और उसे उनसे मुक्त करने की इच्छा होती है। मनुष्य-समाज में न्याय और उत्तम व्यवस्था की वृद्धि करने को जी चाहता है और साधारणत: जिस बात से मनुष्य-जाति का यथार्थ हित हो उसके करने में वे सहायता देते हैं। उनसे हमको आन्तरिक सुख तथा सन्तोष होता है जो और किसी भाँति नहीं हो सकता और जिसे कोई दूसरा हमारे पास से चुरा नहीं सकता। दूसरे सब लाभों का आधार जितना अपने ऊपर है उतना ही दूसरों पर है। द्रव्य, अधिकार तथा महत्त्व दूसरों के अन्याय तथा बलात्कार से अथवा अनिवार्य विपत्ति से अपने

पास कदाचित् न रहें पर सद्गुण का आधार केवल अपने ऊपर ही है और कोई भी मनुष्य उन्हें हमसे ले नहीं सकता है। रोग से अपने शरीर के सब सुख भले ही जाते रहें पर उससे अपने सद्गुण और उनसे जो सन्तोष होता है उसकी हानि कदापि नहीं हो सकती। इस जीवन की सम्पूर्ण विपत्तियाँ पड़ने पर भी सद्गुणी मनुष्य अपने आन्तरिक सुख तथा सन्तोष के कारण और सब प्रकार सुखी दुर्गुणी मनुष्यों की अपेक्षा अधिक सुखी होता है। जो किसी आदमी ने झूठ, अन्याय और उपद्रव से बड़ा अधिकार तथा द्रव्य सम्पादन किया हो तो वह उनका भोग नहीं कर सकता क्योंकि उसका अन्तःकरण उसे दुःख देगा और अधिकार तथा द्रव्य मिलने के उपायों के कारण तिरस्कारपूर्वक उसका उपालम्भ करेगा। उसके अन्तःकरण के काँटे उसे रात को सोने नहीं देंगे और उसे अपने पाप-कर्म सपने में दीखेंगे। दिन में भी जब अकेला होगा और उसे विचार करने को समय मिलेगा तब वह बेचैन और उदास रहेगा क्योंकि वह यह जानता है कि मनुष्य-जाति उसका अवश्य अपमान करेगी और हो सकेगा तो उसे कष्ट भी देगी। यह समझने से उसे हर एक वस्तु से भय होता है। परन्तु कोई सद्गुणी मनुष्य संसार में चाहे जितना ग़रीब और दुखी हो तो भी सद्गुण उसे सब दुःखों में दिलासा देंगे क्योंकि उनका होना ही सर्वोत्तम सुख है। अपने अन्तः-करण की शान्ति और सन्तोष के कारण सद्गुणी मनुष्य दिन

भर आनन्द में रहेगा और रात्रि में सुख से सोवेगा। वह अकेला भी सुखी रह सकता है और अपने विचारों से उसे कभी भय नहीं हो सकता। चाहे जैसे नीच पद का मनुष्य हो यदि उसमें सद्गुण हैं तो उसकी अवश्य प्रतिष्ठा होगी और कभी न कभी उनका उत्तम परिणाम अवश्य निकलेगा। लार्ड शाफ़्ट्स्बरी* ने कहा है कि जैसे कोई देखे या न देखे तो भी हमको स्वयं ही स्वच्छ रहना चाहिए वैसे ही कोई जाने या न जाने तो भी हमको स्वयं ही सद्गुणी होना चाहिए।

समाप्त

---

* लार्ड शाफ़्ट्स्बरी आचार-शास्त्र का एक प्रसिद्ध लेखक था। इसका जन्म लंडन में सन् १६७१ ई० में हुआ। सन् १७०८-०९ में उसने आचार-शास्त्र के कई उत्तम ग्रन्थ छपवाये। सन् १७१३ में उसकी मृत्यु हुई।

मान्यवर काल्टन*-रचित

# संक्षिप्तोपदेश-संग्रह

अथवा

## विचारशीलों के लिए परिमित शब्दों में अनेक बातें

### विद्या-सम्बन्धी उपाधि

विद्या-सम्बन्धी उपाधि और पाठशाला-सम्बन्धी पारितोषिक प्रत्येक युवक की कीर्तिस्पृहा के प्रशंसा के योग्य विषय हैं। ये वर्तमान गुण के प्रमाण और भविष्य लाभ के साधन हैं परन्तु जब विद्यालय में उत्पन्न हुई आशा उसके छोड़ने पर फलीभूत नहीं होती या पाठशाला के पारितोषिक से कुछ प्रसिद्ध लाभ

---

* मान्यवर मि० काल्टन का जन्म सन् १७८० ई० में हुआ। यह सदाचार में विपथगामी तथा आदतों में अमर्याद था और द्यूत आदि व्यसनों का इतना आदी हो गया था कि उनसे पीछा नहीं छुड़ा सकता था। निर्धनता से दुःखी होकर वह युनाइटेड स्टेट्स को भाग गया और कुछ समय बाद पेरिस में रहने लगा जहाँ उसे जुए में २५ हज़ार पौंड मिले जिन्हें उसने शीघ्र व्यसन में उड़ा दिया। शस्त्रोपचार के भय से सन् १८३२ ई० में वह आत्मघात कर मर गया। उसने कितनी ही हास्य तथा व्यङ्ग की कविताएँ लिखी हैं परन्तु उसकी सर्वोत्तम पुस्तक लेकन ( Lacon ) समझी जाती है।

नहीं होता तब फल आने (अर्थात् कालेज में पठन समाप्त कर संसार में नाम पाने) पर कहने के लिए रक्खे गये प्रशंसा और उपकार के वाक्य लोग फूल लगने (अर्थात् कालेज में पारितो-षिक प्राप्त करने) पर ही वृथा नहीं कहते। इसलिए जिन विद्यार्थियों को विद्यालय में पुरस्कार मिले हों उन्हें अपनी उत्त-मता वैसी ही रखने का यत्न करना चाहिए, नहीं तो पाठशाला की सीमा के भीतर राज्य करनेवाले ये छोटे-छोटे राजा सांसारिक व्यवहार में अपने को पद-च्युत राजाओं के समान पावेंगे। संसार में उन्हें कोर्सिका के राजा थिओडोर* के समान जन-समाज को निरुपयोगी और अपने ही से व्याकुल हो भटकना पड़ेगा। वे अपने पूर्व राजत्व की अवज्ञा करनेवालों से अप्रसन्न होंगे और उनका वर्तमान अपमान दया के योग्य होगा।

## कर्म

जिनको हम अपनी सम्पत्ति कह सकते हैं वे केवल हमारे कर्म ही हैं। हमारे विचार मलिन हों तो उनसे विष उत्पन्न नहीं

---

* कोर्सिका के राजा थिओडोर का जन्म सन् १६८६ ई० में हुआ। सन् १७३६ में वह कोर्सिका के राज्यसिंहासन पर बैठा पर कुछ महीनों के अनन्तर ही वह वहाँ से निकाल दिया गया। फिर बहुत पर्यटन के बाद वह लंडन में रहने लगा ( सन् १७४९ )। उसके ऋण-दाताओं ने उसे जेलखाना करा दिया था पर वालपोल की सहायता से एक चन्दा किया गया जिससे वह जेलखाने से छूटा। १२ दिसम्बर सन् १७५६ को उसकी मृत्यु हुई।

होता और अच्छे हों तो भी उनसे कुछ फल नहीं होता। दुर्भाग्य से धन का, द्वेष से प्रतिष्ठा का, आपत्ति से उत्साह का, रोग से शरीर-सुख का और मृत्यु से मित्रों का भी नाश हो जाता है परन्तु कर्म मृत्यु के अनन्तर भी हमारे अनुयायी होते हैं। केवल उनके ही कारण हम यह नहीं कह सकते कि जब हम मरेंगे तब कुछ साथ नहीं ले जायँगे या हम इस संसार से नग्न जायँगे। उज्ज्वल या कुत्सित जैसे हमारे कर्म होंगे उनका हमारी मृत्यु के अनन्तर भी लोप नहीं होगा। हमारे कर्म ही केवल ऐसे अधिकारपत्र हैं जिन्हें अपनी सन्तति के लिए हमें अवश्य छोड़ जाना पड़ेगा। जब और सब वस्तुओं का अभाव हो जायगा तब भी हमारे कर्म अनन्त काल तक बने रहेंगे। समय और मृत्यु से अन्य सब सांसारिक वस्तुओं का यथार्थ में नाश हो जाता है पर कर्मों के बड़े माहात्म्य का वे भी नाश नहीं कर सकते।

## कीर्ति-लोभ

बाज़ * को जैसे टोपी होती है वैसे ही मनुष्य के मन को कीर्ति-लोभ है। यह पहले हमें अन्धा कर देता है और पीछे

---

* शिकारी बाज़ को एक चमड़े की टोपी पहना दिया करते हैं जिससे उसकी आँखें हर वक्त ढकी रहती हैं। जब शिकारी इस टोपी को उतारते हैं तब बाज़ समझ लेता है कि मैं ऊपर उड़कर किसी पक्षी का शिकार करूँ इसलिए वह उतारी गई है। इसलिए जिस समय वह टोपी उतारी जाती है, शिकारी बाज़ को उँगली से इशारा कर देता है और वह आँखें खुलते ही ऊपर को उड़कर शिकार पर झपटता है।

अन्धा होने के कारण ऊँचा चढ़ने के लिए मजबूर करता है पर बड़े शोक की बात है कि जब हम निरर्थक कीर्ति-लोभ के शिखर पर होते हैं तभी हम यथार्थ दुःख की गहरी खाई में होते हैं। उस समय ऐसी स्थिति हो जाती है कि जिसमें समय कोई सुधार तो नहीं कर सकता पर हानि करता है, जिसमें भाग्य और उलट-फेर मित्र न होकर उलटे हमें फँसा देते हैं। सारांश यह है कि अपनी इच्छा के अनुसार प्रत्येक वस्तु प्राप्त होने से और जिसकी आवश्यकता हो उसके मिलने से हम एक शिखर पर पहुँच जाते हैं जहाँ हमें कुछ आशा नहीं होती पर सब ओर से भय होता है।

## क्रोध

मद्य के मद के समान क्रोध का मद हमें औरों के सामने तो प्रकट कर देता है पर अपने से छिपाता है; और किसी पक्ष का बहुत आतुरता और उत्कण्ठा से प्रतिपादन करने से सांसारिक मनुष्यों की सम्मति में उसकी हानि होती है। अपने विवाद के विषयों को हम जिस-जिस रूप में समझते हैं उनको उसी रूप में सब मनुष्य नहीं समझते। जितना हम दूसरों पर क्रोध करते हैं या अपने ऊपर प्रसन्न रहते हैं उतनी ही अपने दोषों पर अन्धता निरन्तर बढ़ती जाती है।

---

# आशा

मनुष्य आशा में और, जब समय मिलता है तब, भविष्य में कभी न कभी अत्यन्त सुखी होने के निर्णय करने में बहुधा जीवन व्यतीत किया करते हैं पर वर्तमान काल में भविष्य की अपेक्षा एक अधिक लाभ है कि यह अपना है। पिछले अवसर तो जाते रहे और भविष्य अभी आये नहीं। मदिरा की भाँति सुख का भी जो हम संग्रह करें और उसका स्वाद लेने में बहुत दिनों का विलम्ब करें तो समय के कारण दोनों का रस जाता रहेगा। इसलिए सुख को एक परिमित गृह समझना चाहिए जिसमें भोगने के योग्य शक्ति तथा स्वास्थ्य हो तब तक हम रह सकें। परन्तु यह गृह इतना बहुमूल्य और बड़ा नहीं होना चाहिए जिसके बनाने में हमें अपने जीवन का श्रेष्ठ भाग लगाना पड़े और जब हमारे लिए क़ब्र की अपेक्षा घर में रहने की सम्भावना कम हो तभी उसमें रहने की आशा रख सकें। यह उक्ति बहुत ही सारगर्भित है कि "हमें भविष्य को अपना वृद्ध मित्र गिनना चाहिए कि जिससे बहुमूल्य उत्तरदान की आशा हो," हमें ऐसा कुछ भी न करना चाहिए कि जिससे उसकी मान-हानि हो। उसके साथ आदर से बर्तना चाहिए न कि भृत्य-भाव से। पर हमको युवावस्था में बहुत मुक्त-हस्त तथा वृद्धावस्था में बहुत कृपण नहीं होना चाहिए। ऐसा करने से हम उन लोगों के समान सामान्य भूल करेंगे जिनमें

भोगने की शक्ति थी तब तो भोग प्राप्त करने की बुद्धि नहीं थी और जब भोग प्राप्त करने की बुद्धि थी तब भोगने की शक्ति नहीं रही।

## प्रशंसा

महानुभावों को प्रशंसाभाजन हुए बिना उसके मिलने की अपेक्षा बिना मिले ही उसका पात्र होना अच्छा है। प्रशंसा उनके पीछे जाय तो ठीक है पर उन्हें प्रशंसा के पीछे जाने के लिए अपना मार्ग नहीं छोड़ना चाहिए। छछोरे मनुष्यों में इसके विपरीत देखने में आता है जिससे जीते जी तो धूर्त उनकी मिथ्या प्रशंसा करते हैं और मरे पीछे सज्जनों से निन्दा की उन्हें कुछ परवा नहीं होती। न तो कविवर मिल्टन ने कभी वर्तमान कीर्ति की स्पृहा की और न उसकी आशा ही की परन्तु उसकी उच्च कीर्तिस्पृहा उसके ही शब्दों में कही जाय तो यह थी कि "भविष्यत् के लिए कुछ ऐसा लिखकर छोड़ जाना चाहिए कि जिसका नाश लोग प्रसन्नता से न होने दें।" महापुरुष कैटो की भी यह उक्ति थी कि "मेरे लिए क्यों कीर्ति-स्तम्भ बनाया गया इसकी अपेक्षा भविष्य प्रजा 'क्यों नहीं बनाया गया' यह पूछे तो मैं अधिक प्रसन्न होऊँ।"

## लोभ

लोभ विरोधाभास से पूर्ण चित्त-वृत्ति तथा एक ढँग की विक्षिप्तता है; क्योंकि कृपण मनुष्य यद्यपि सबसे अधिक द्रव्य-

परायण होता है तो भी जैसे धार्मिक मनुष्य सर्वोत्तम स्वामी की सेवा करते हैं उनकी अपेक्षा अधिक श्रद्धा से वह निकृष्ट स्वामी ( अर्थात् धन ) की वृथा सेवा करता है। वह संसार के देवता की पूजा तो करता है पर इस श्रम के बदले में उसे उससे प्रताप, बड़ाई या सुख कुछ नहीं मिलता। वह इस ढँग से द्रव्य सञ्चय करना आरम्भ करता है मानो वही सुख का साधन हो और उसे ही जीवन का उद्देश्य समझ सञ्चय जारी रखता है। मरते समय धनाढ्य कहलाया जाय इसलिए ही वह दरिद्रता से जीवन काटता है। ऐसा मनुष्य अपने गृह का केवल कारागृहाध्यक्ष और अपने धन का ख़ज़ाञ्ची है। जितना श्रम उसका भाई सुवर्ण को खान के कारागृह से मुक्त करने के लिए करता है उससे अधिक वह सुवर्ण के कारण ही दरिद्री होकर उसे लोहे के सन्दूक़ में क़ैद करने के लिए करता है। कृपण के द्रव्य-लोभ को उसकी अन्य विषय-वासनाओं की समाधि कहना चाहिए क्योंकि वे सब क्रम से नष्ट हो जाती हैं पर यह तो बार-बार पूरी की जाती है इसलिए बढ़ती रहती है और जैसे-जैसे समय बीतता जाता है तैसे-तैसे दृढ़ होती जाती है। यह पिछला विरोधाभास, जो विशेषकर इस मनोविकार में पाया जाता है, मनुष्य के मन से अभिन्न शक्ति-मोह से उत्पन्न होता है। शक्ति तीन प्रकार की होती है—द्रव्य की, शरीर की तथा बुद्धि की। वृद्ध मनुष्य बहुधा पहली से ही अधिक आतुरता से चिपटे रहते हैं क्योंकि वृद्धावस्था के कारण पिछली

दोनों तो सदा निर्बल हो जाती और प्रायः नष्ट हो जाती हैं। वृद्ध मनुष्यों की धन-प्रीति का विस्तार तथा वृद्धि अवश्य होती रहती है क्योंकि वे यह बात शीघ्र जान लेते हैं कि जो निर्दय वर्ष बड़ी बुद्धिमानी से उनकी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति हर लेते हैं वे उनकी द्रव्य-शक्ति को बढ़ाने और दृढ़ करने के लिए ही केवल उपयोगी होते हैं।

## उपहास तथा आक्षेप

संसार में ऐसे बहुत से सज्जन हैं जिनका जीवन उपहास तथा आक्षेप के कारण निरर्थक हो गया है। इनसे उसका मनोरञ्जन तो अवश्य हुआ पर हानि भी उससे बढ़कर हुई। उनकी बुद्धि तथा वाक्-चातुर्य की प्रशंसा तो बहुधा हुई होगी पर अन्त में वह प्रशंसा सदा के लिए ऐसे शत्रु से अवश्य दबा दी गई होगी जो इन दोनों में से एक गुण न होने पर भी व्यङ्गोक्ति के बदले तलवार मारना अधिक सहज समझता हो। मैंने सुना है कि बङ्गाल प्रान्त में एक मनुष्य को सिंह का आखेट करने में बहुत सफलता प्राप्त हुई थी। उसकी चतुरता के कारण उसकी बड़ी प्रशंसा हुई और उससे उसका बड़ा मनोरञ्जन होने लगा पर अन्त में बड़ी कठिनता से उसके प्राण बचे। उस दिन से उसने आखेट करना छोड़ दिया और इस भाँति अपना विचार प्रकट किया कि "जब तक हम सिंह का शिकार करें तब तक तो यह काम बहुत रोचक है पर जब सिंह के मन में

हमारा शिकार करने की आ जाय तब यह काम ज़रा टेढ़ा है।" छोटे-छोटे शस्त्र चलाने की चतुरता के समान छोटी-छोटी हँसी करने की चतुरता के कारण हममें अपनी शक्ति के ऊपर एक भाँति का विश्वास उत्पन्न हो जाता है जिसका परिणाम बहुत बुरा होता है। हम या तो योग्य समय की या योग्य मनुष्य की भूल करते हैं। सेवोय का एक मनुष्य वानर और रीछ के खेल से पेट भरता था। उसकी वानर के साथ खेल करने की युक्तियों की इतनी प्रशंसा हुई कि वह उनमें से कितनी ही युक्तियाँ रीछ पर आज़माने के लिए प्रोत्साहित हुआ। ऐसा करने पर रीछ ने बड़ी भयङ्कर रीति से उस पर आक्रमण किया और वह बड़ी कठिनता से उसके पञ्जे से छूटा। तब उसने कहा कि "मैं कैसा मूर्ख था कि रीछ और वानर में अन्तर नहीं देख सका! मेरे मित्रो, रीछ गम्भीर जानवर है जो हँसी नहीं समझ सकता जैसा कि आपने अभी स्पष्ट देखा।"

## रणक्षेत्र

ऐसा कहा जाता है कि जैसे उत्तर से वक्ता की योग्यता का ज्ञान होता है उसी भाँति अपगमन से सेनापति की योग्यता जानी जाती है। यद्यपि अपगमन की अपेक्षा प्रयाण से और जो छोड़ दिया हो उसकी अपेक्षा जो मिल चुका हो उससे ही सेनापति की कीर्ति होती है तथापि यह बात कितने ही अंशों में

सत्य है। हम यह जानते हैं कि फ़्रांस के सेनापति मोरो के सैनिक दुन्दुभी से उसकी समानता किया करते थे क्योंकि वह अपने अपगमन में बड़ा नामी था। जैसे दुन्दुभी पर डण्डा पड़ता है तभी वह सुनाई देती है वैसे ही मोरो भी पराभव होने के पीछे ही लौटता था। पर यह भी सत्य ही है कि सेनापति के गुणों की परीक्षा युद्ध के पहले जो रचना की जाय और पीछे जो उपाय किये जायँ उनसे होती है, केवल युद्ध से नहीं। हनीबाल को जय से लाभ उठाने की अपेक्षा उसका प्राप्त करना अच्छा मालूम था। युद्ध के समय सब स्थलों को अपने अधिकार में कर लेने में तो नेपोलियन निपुण था पर वहाँ स्थिति क़ायम रखने में वह कुशल नहीं था। लेकिन कोई भी सेनापति यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि उसका पराभव नहीं होगा पर इतना तो कह सकता है और कहना भी चाहिए कि शत्रु उस पर छापा नहीं मार सकता। कभी-कभी युद्ध की पूर्व-रचना ऐसी युक्ति से होती है कि युद्ध होने से पहले ही उसमें जय होना समझ लिया जाता है। ऐसे सेनापति भी हो गये हैं जिन्होंने बन्दूक़ की अपेक्षा प्रस्थान से अधिक कार्य-साधन किया है। फ़्रांस की सेना का लिस्बन पर आक्रमण रोकने के लिए दो पंक्तियों में जो रोक बनाई गई थी वहाँ एक सेनापति के हाथ में साधारण दूरवीक्षण यन्त्र विपक्ष की सब तोपों की अपेक्षा अधिक मर्मभेदी तथा नाशक हुआ था। यह बात सब यूरोप में प्रसिद्ध है।

## दुर्लभ पुस्तकों के संग्रह-कर्ता

जो मनुष्य दुर्लभ पुस्तकों के अतिरिक्त और पुस्तकें न देखे वह साहित्य में अपनी वैसी ही रसज्ञता प्रकाशित करता है जैसी कि संन्यासियों को मित्र बनाकर मित्रता में करे।

## पुस्तक तथा कवि

जैसे हम यथार्थ तथा स्वाभाविक गुणों के कारण अपने मित्रों को पसन्द करते हैं और उनसे किसी आकस्मिक लाभ का विचार नहीं करते उसी भाँति हमें अपनी पुस्तकों को भी पसन्द करना चाहिए। क्योंकि जैसे मनुष्यों के कर्म उनके अभिमान के समान तथा धन उनकी प्रतिष्ठा के समान नहीं होता उसी भाँति पुस्तकें भी जितनी उत्तम समझी जायँ उतनी उत्तम तथा जितने मूल्य के योग्य समझी जायँ उतने मूल्य की नहीं होतीं। इसलिए लेखक की अपेक्षा लेख का हमें अधिक विचार करना चाहिए क्योंकि मूर्ख भी कभी-कभी बुद्धिमानी की बात कह जाते हैं और बुद्धिमानों के मुख से भी कभी-कभी मूर्खता की बात निकल जाती है।

प्राचीन कवियों में से जो वर्तमान काल में लोक-प्रिय हों उनकी पुस्तकें पढ़ना बहुत उत्तम है; यथार्थ में तो कुछ प्राचीन कवियों की पुस्तकें पढ़ना ही वर्तमान कवियों की अच्छी-अच्छी बातें जानने का रुचिकर तथा संक्षिप्त साधन है। कवियों के गुणों की विवेचना में मत का अधिक विरोध पाया जाता है

क्योंकि विज्ञान में तो विवेक से और काव्य में रस से निर्णय किया जाता है। विज्ञान का उद्देश्य सत्य का अनुसन्धान है जिसमें कभी अन्तर नहीं होता परन्तु काव्य का उद्देश्य सौन्दर्य है जिसके अनेक प्रकार तथा रूप हैं।

## निष्कापट्य

जो स्वयं निष्कपट और पक्षपातरहित होकर जैसे दूसरों की दशा की परीक्षा करे उसी भाँति अपनी भी करे, उसका प्राय: यह सिद्धान्त होगा कि दूसरों का उसे इतना ज्ञान है कि जिससे उसके शत्रु होने का उसे निश्चय है और अपना भी इतना ज्ञान है कि वह शत्रुओं के योग्य है। अपकार जिस स्थान से हो उससे हमें जितना असन्तोष हो उतना अपकार के परिणाम से नहीं होता और बहुधा हमें मानना पड़ता है कि हम दण्ड के योग्य नहीं हैं क्योंकि हमें उचित मनुष्य से दण्ड नहीं मिलता। पर जैसे कभी-कभी अपराध का कटु बीज बोने पर भी उसका उचित फल—प्रतिद्रोह—उत्पन्न नहीं होता उसी भाँति जो बीज बोये बिना ही फल उत्पन्न हो जाय तो उस पर हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

## युद्ध की सम्भावना

जिसे लम्बी यात्रा करनी हो उसे कड़े जूते नहीं पहनने चाहिएँ और जिसे कोई बड़ा काम करना हो उसे बद्ध-मुष्टि

नहीं होना चाहिए। सब बचाने के लिए कभी-कभी सब संशय में डालना पड़ता है; थोड़ा संशय में डालने से सबका नाश सम्भव होता है क्योंकि आधा तो जो हमें छोड़ें वे खा जायँगे और आधा जो हमें जीतें वे ले जायँगे। मारक्विस् आव् वेलस्ली ने भारतवर्ष की सेना को दूना कर दिया था। पर एक बार प्रधान अधिकारियों को यह सूझा कि सेना के व्यय से बड़ी हानि होगी तथा दिवाला निकल जायगा। उन्होंने उसे एक लम्बा पत्र लिखा जिसका संक्षिप्त उत्तर वेलस्ली ने यह भेजा कि "महाशयो, मैं त्रैराशिक की रीति से राज्य नहीं चला सकता हूँ।"

## चरित्र

जिस मनुष्य पर बिना कारण प्रहार हुआ हो, किसी के करुणा किये बिना ही जिसकी हीन दशा हो गई हो और जो बिना आश्रय के खड़ा नहीं रह सकता हो ऐसे मनुष्य के निन्दा के तीर निकालने का कठिन उपकार करने के लिए वही पुरुष सब भाँति योग्य है जो महापुरुष सीज़र की पत्नी के समान संशय से परे है। कुछ काल के अनन्तर जब सत्य का ठीक-ठीक ज्ञान हो जायगा तब शरणागत निरपराध ठहराया जायगा और रक्षक की कीर्ति होगी; पर ऐसे समय के आने तक केवल निष्कलङ्क मनुष्य ही आक्षेप के उपद्रव को शान्त करने का साहस कर सकता है। इसलिए हो सके तो, अपने लाभ के लिए नहीं तो दूसरों के लाभ के लिए ही, चरित्र सावधानता

से उत्तम रखना चाहिए। सच्चरित्र लोहे का तिहरा कवच है। उससे पहननेवाला निर्भय रहता है, जिनके ऊपर उपद्रव हो उनकी रक्षा होती है और उपद्रवियों को भय होता है।

## सभ्यता

मनुष्य-समुदाय की आधी सुधरी हुई स्थिति में असभ्यता तथा शिष्टाचार से समान अन्तर होता है और विशेषकर वही स्थिति ऐसी होती है कि जिसमें मनुष्य एक दूसरे का उपकार करते हैं तथा दान की सदा उन्नति होती रहती है क्योंकि सभ्यता की सर्वोत्तम स्थिति में स्वस्थता, सुखोपभोग तथा प्रचुरता के और उसकी निकृष्ट स्थिति में कष्ट, सुख-साधन-हानि तथा निराशाओं के कारण मनुष्य स्वार्थी हो जाते हैं। ग्राम्य में से सुधरी हुई स्थिति में अभी आये हुए समुदाय में व्यक्तिगत आवश्यकताओं के कारण साधारण उदार वृत्तियों को अपने से ही आरम्भ करना पड़ता है और बहुधा वहीं उनकी समाप्ति करनी पड़ती है। हम अपने देश के इतिहास से ही इस अनुमान को सिद्ध कर सकते हैं। जैसे-जैसे शिष्टता की उन्नति और सम्पत्ति की वृद्धि हुई तैसे-तैसे ही मनुष्य यथार्थ में निकृष्ट अतिथि-सत्कार करना विचारने लगे। बड़े-बड़े शहरों में जो व्यसन, शौक़ और सुख देखे जाते हैं वे उस समय जाने भी नहीं गये थे। जिसे सङ्गति की आवश्यकता थी (और कौन, जिसे सङ्गति मिल सकती हो, उसे नहीं चाहता है?) वह प्रसन्नता

से अपने तहख़ाने, अस्तबल और कमरे खोल देता था। सेवकों को जितनी स्वामी की आवश्यकता थी उतनी ही स्वामी को सेवकों की थी। जैसे-जैसे विज्ञान तथा कला की उन्नति और व्यापार तथा कारीगरी में सुधार होता गया वैसे-वैसे ही एक नवीन व्यवस्था पैदा हुई। विषय-भोग का अधिकता के कारण मनुष्य अपनी सब आय अपने ही लिए व्यय करने लगे और कृपणता के सामने अतिथि-सत्कार का तथा नीचता के सामने वैभव का नाश हो गया। अब धनी मनुष्य इतना धन कि जिससे एक जङ्गल मोल ले सके जेबघड़ी के आकार में अपनी जेब में रख सकता है, एक पूरी जागीर का लाभ अँगूठी के आकार में अपनी छोटी उँगली पर रख सकता है और एक राज्य की आय का सब रुपया अपनी हुलास की डिबिया में रखकर अपने व्यसनों की पराकाष्ठा को पहुँच सकता है।

## व्यापार की वस्तु

जब वस्तुओं का भाव बढ़ जाता है तब उनके उपयोग करनेवाले को सबसे पहले हानि होती है और जब भाव घट जाता है तब उसे सबसे पीछे लाभ होता है।

## सङ्गति

कितने ही मनुष्य प्रथम समागम पर ही बहुत विनोद उत्पन्न करते हैं पर पीछे उनकी शक्ति व्यय होकर नष्ट हो

जाती है। दूसरे समागम पर वे नीरस मालूम होते हैं। हाथ से बजाने के बाजे की भाँति उनका सब राग पहली बार ही सुनाई दे जाता है। केवल इतना ही अन्तर रह जाता है कि बाजे की नई खूँटी मोड़ने से दूसरा राग सुना जा सकता है पर ऐसे मनुष्यों से वह भी सरलता से नहीं हो सकता।

## सन्तोष

आगर ने कहा है कि "न मुझे दरिद्रता दो, न धन दो" और ऐसी ही प्रत्येक बुद्धिमान् की प्रार्थना होनी चाहिए। हमारी आय हमारे जूतों के समान होनी चाहिए जो छोटे होने से काटते और छाला कर देते हैं और बड़े होने से पैरों में से निकल जाते हैं जिससे हमें ठोकरें खानी पड़ती हैं। द्रव्य अन्य सापेक्ष वस्तु है, क्योंकि ऐसा मनुष्य जिसके पास कम धन है और उससे भी कम की जिसे ज़रूरत है, उससे अधिक धनी है जिसके पास बहुत धन है और उससे भी अधिक की जिसे आवश्यकता है। जितना धन हमारे पास है उस पर नहीं लेकिन जितना धन हमें चाहिए उस पर यथार्थ सन्तोष का आधार है। डायोजिनीस् के लिए एक स्नान-पात्र भी बहुत था पर सिकन्दर को पूरा संसार भी थोड़ा हुआ।

## बात-चीत

बात-चीत मानसिक सङ्गीत है जिसमें बुद्धि-सम्बन्धी प्रत्येक बाजा अलग-अलग योग देता है; पर सब एक साथ नहीं

बजते। हर एक गायक को अपनी शक्ति का उपयुक्त बोध होना चाहिए नहीं तो अशिक्षित गायक पहले बाजा भले ही छीन लें पर पीछे ज़रूर ग़ोता खाते हैं। ऐसे दोषों से बचने के लिए गायनाचार्य को बाजों को पसन्द करने के समय बहुत सावधान रहना चाहिए क्योंकि उनके बहुत विजातीय होने से माधुर्य न होगा, बहुत कम होने से विचित्रता न होगी और बहुत अधिक होने से व्यवस्था न रहेगी।

## साहस

शारीरिक साहस, जिसके कारण हम भय को कुछ नहीं गिनते, मनुष्य को एक विषय में शूर करता है और आत्मिक साहस जिसके कारण हम सब संसार के अपवाद को कुछ नहीं गिनते मनुष्य को दूसरे विषय में शूर करता है। शारीरिक रणक्षेत्र में और आत्मिक राज्य-सभा में आवश्यक है परन्तु महापुरुष होने के लिए दोनों ज़रूरी हैं। नेपोलियन ने मुरात को शारीरिक साहस न होने का दोष लगाया था पर उसमें स्वयं भी आत्मिक साहस पूरा था या नहीं इसमें संशय है।

## भय का पूर्व-ज्ञान

भय की प्रतीक्षा करने से उसके सामने जाना बेहतर है। जिस तीर की ओर हवा आती हो वहाँ जो जहाज़ लङ्गर डाले हो तो उसका कपतान, तूफ़ान का पूर्व ज्ञान होने से, जैसे उसे

समुद्र में छोड़ दे और तीर पर उसका नाश रोकने के लिए उस ओर जाकर तूफ़ान को सहन करे वैसे ही जो किसी कष्ट के सामने जाता है वह उसे आधा दबा देता है। ईजिप्ट में जब भयङ्कर दुर्भिक्ष का आरम्भ हुआ था तब जोसफ़* ने उसे पहले से ही जान लिया था और ऐसे उपाय किये थे कि जिनके कारण वह प्रजा से दावे के साथ कहने लगा था कि "तुम पीछे भूखे न मरो इसलिए आजकल भोज के आनन्द से तर रहो। उससे तुम्हें तङ्गी भोगनी पड़ेगी पर निराहार तो नहीं रहना पड़ेगा।" कुछ विचारवान् मनुष्य जो एक स्थान में वस्तुएँ मोल लेकर उन्हें वहीं बेचते हैं और उनके बेचने का अधिकार अपने पास रखते हैं वे ही यथार्थ तङ्गी के समय में वास्तव में अपने देश के जोसफ़ होते हैं। अधिकांश प्रजा को इस बात का ज्ञान होने के पहले ही वे देश में आने-वाले दुर्भिक्ष को जानकर व्यापार की वस्तुओं का भाव बढ़ा देते हैं जो कि वस्तु मात्र के उपयोग में मितव्ययता का अद्वितीय उपाय है।

---

* जोसफ़ पैट्रिआर्क जेकब का पुत्र था। उसका पिता उसे बहुत चाहता था इसलिए उसका बड़ा भाई उससे शत्रुता करने लगा और उसने उसे एक दासक्रेता को बेच दिया। दास-क्रेता ने उसे ईजिप्ट के प्रख्यात राज-पुरुष पोटीफर को बेच डाला। ईजिप्ट में वह अपनी योग्यता के कारण राज्य के सर्वोत्तम पद पर पहुँच गया।

# स्वभाव की दृढ़ता

मनुष्य के मन का एक ऐसा नियम है कि जो बुद्धि का संयोग हो तो वह अपना भविष्य सुधार देता है और बुद्धि का संयोग न हो तो बिगाड़ देता है क्योंकि ऐसे मन से भूलें कम तो होती हैं पर जब होती हैं तब बहुत हानिकारक होती हैं। मैं ऐसे मनुष्यों के विषय में कहता हूँ कि जिनका निर्णय गणित के नियमों के समान सूक्ष्म होता है, जिससे यही प्रकट हो कि दो बिन्दुओं के बीच का कम से कम अन्तर एक सीधी रेखा है, और वेगवाली छोटी वस्तुओं की झोंक बड़ी पर वेग-हीन वस्तुओं की अपेक्षा अधिक होती है। इस कारण वे दीवार गिराने के यन्त्र के बदले तोप के गोले का ही उपयोग करते हैं। ऐसे मनुष्यों के निर्णय तथा कार्य तात्कालिक होते हैं। वे समय की गति से भी आगे जाते दीखते हैं। उन्हें कारण के आकार से ही कार्य का पूर्वज्ञान हो जाता है और जिस समय को और मनुष्य विचार में नष्ट करें उसमें वे काम सिद्ध करते दीखते हैं। युद्ध के समय क्रामवल में ऐसी बहुत दृढ़ता रहती थी लेकिन वह सच्चा धार्मिक न था इसलिए उसके आत्मिक साहस का कभी-कभी अभाव हो जाता था, पर शारीरिक का कभी नहीं होता था, क्योंकि जितनी भक्ति से वह ईश्वरार्चन करता था उससे अधिक भक्ति से युद्ध करता था। अपने व्यवहार के सब स्थान जैसे गिरजा-घर, रणभूमि, राजसभा तथा न्यायालय

में तो कार्डीनल डीरेस सदा कार्य-पटु तथा प्रत्युत्पन्न रहता था पर जहाज़ में वह उसे सीधा रखने के भार की अपेक्षा पाल अधिक रखता था और इससे कई बार कठिनता से बचकर भी वह अन्त में भग्नपोत होकर नष्ट हो गया। सब प्राचीन तथा वर्तमान महापुरुषों में नेपोलियन इस भाँति के निश्चय का अवलम्ब अधिक करता था। उसके बड़े-बड़े सेनापतियों को भी उसके समयोचित कार्यों से विस्मय होता था। क्लेवर ने कहा था कि सेनाध्यक्ष के दृष्टि-कोण से देखा जाय तो उसमें दो दोष थे—एक तो अपगमन का विचार किये बिना वह आगे बढ़ जाता था और, दूसरे, देशों को किस भाँति टिका रखना इसका विचार किये बिना वह उन्हें अपने अधिकार में कर लेता था।

## नाश और रक्षा

नाश के उपायों की जितनी शीघ्र उन्नति होती है उसकी अपेक्षा रक्षा के उपायों की ज़रा भी नहीं होती। प्राण-नाशक उपायों की इतनी शीघ्र उन्नति हुई है कि घातकों को अब यह विचार नहीं करना पड़ता है कि मनुष्य को किस भाँति मारना चाहिए पर असंख्य रीतियों में से केवल एक विशेष रीति पसन्द करनी पड़ती है। विज्ञान के नवीन आविष्कारों से यह सम्भव जँचता है कि किसी न किसी राज्य में वर्तमान उपायों से उत्तम नाश के उपाय अवश्य आविष्कार किये जायँगे। ऐसा

होने पर अन्य राज्यों को भी वैसा ही अनुसन्धान करने की अवश्य ज़रूरत होगी, नहीं तो ऐसी भयङ्कर गुप्त बात जिस राज्य के हस्तगत होगी वह आसपास के राज्यों को जीतकर सब संसार को भी अपने वश में कर लेगा। ऐसी कोई बात एक ही देश की प्रजा को जानने दो फिर देखो कि आसपास के सब राज्यों में कैसी खलबली मचती है। वे उसके जानने के लिए गुप्त प्रयत्न करते हैं और बड़े-बड़े पुरस्कार देने कहते हैं। उससे मनुष्यजाति को इस बात का ज्ञान होगा कि रक्षा तथा नाश दोनों के उपायों में से राज्य किसे अधिक आवश्यक समझता है। यदि रक्षा के किसी नवीन उपाय का आविष्कार किया जाय तो उससे न तो स्पर्धा होगी और न दूसरे राज्यों के अनुसन्धान-शील विद्वानों की बुद्धि का उत्तेजन होगा। ऐसे अनुसन्धान की ओर राजा लोग उदासीन रहते हैं इसलिए उसकी उन्नति बहुत मन्द होती है और उसके उत्तम परिणाम में सन्देह रहता है और वह बहुत दिन में मालूम होता है। प्लेग का टीका लगाने की क्रिया जब यूरप में जानी गई उससे बहुत पहले से ही उसका तुर्की में प्रचार था और शीतला का टीका लगवाने में लोग अब भी बहुत संशय करते हैं। चीन के निवासी चाहते हैं कि वे सभ्य गिने जायँ पर वे आज तक रुधिर के सञ्चार से परिचित नहीं हुए हैं और इँगलैंड में भी जिसने यह उत्तम आविष्कार किया था वह इसके फल में अपना सब धन्धा खो बैठा था।

# राजनीति

बिलिअर्ड्स* के खेल में गोलियाँ केवल दैवयोग से ही बराबर ऐसा कार्य सम्पादन करती हैं जिसे न तो कोई चतुर खिलाड़ी स्वयं कर सकता है और न उसे उसका पूर्वज्ञान हो सकता है पर जब कार्य पूर्ण हो जाय तब उससे उसे इस बात की शिक्षा होती है कि अब तक उसे क्या सीखना बाक़ी है। ऐसी ही व्यवस्था राजनीति के अति कठिन तथा पेचीदा खेल की भी है। दोनों ही में हम अपनी आशा की

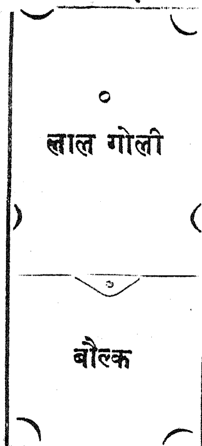
---

* यह अँगरेज़ों का एक प्रसिद्ध खेल है। यह चपटी मेज़ पर हाथीदाँत की गोलियों से खेला जाता है। इसके बहुत से तरीक़े हैं। साधारण खेल की मेज़ १२ फ़ीट लम्बी और ६ फ़ीट चौड़ी होती है जिसके ऊपर हरी बनात मढ़ी रहती है। उसकी सतह बिलकुल एक सी होती है जिसका किनारा चारों ओर उठा रहता है जिसमें लचदार गद्दियाँ बनी रहती हैं। मेज़ के किनारों से लगे हुए छः अर्द्ध-वृत्ताकार छेद होते हैं जो गद्दियों में समान अन्तर पर होते हैं जिनके द्वारा गोलियाँ उन थैलियों में चली जाती हैं जो मेज़ के नीचे की ओर लगी रहती हैं। एक-एक थैली मेज़ के हर एक कोने पर और दो एक दूसरी के सामने लम्बी भुजा के बीच में होती हैं। हर एक खिलाड़ी के पास गोली को उछालने का एक काठ का डण्डा होता है। यह ४ से लेकर ८ फ़ीट तक लम्बा होता है और नीचे १$\frac{1}{2}$ इञ्च के व्यास से कम होता होता सिरे पर $\frac{3}{4}$ इंच या उससे भी कम रह जाता है जहाँ चमड़ा मढ़ा रहता है और उसे चिकना रखने के लिए खड़िया लगा दी जाती है। साधारण खेल में दो मनुष्य खेलते हैं। हर एक के पास एक सफ़ेद गोली होती है और एक लाल गोली दोनों में साधारण होती है। खेल आरम्भ करते समय लाल गोली मेज़ के एक किनारे

अपेक्षा जो देखा हो और समझ की अपेक्षा अनुभव किया हो उससे ही अपने खेल की व्यवस्था कर सकते हैं। सांसारिक

---

के पास ऐसी जगह रक्खी जाती है जो कोने की थैलियों से समान अन्तर पर हो। उस किनारे के दूसरी ओर एक लकीर मेज़ के आरपार खींची जाती है और इस स्थान को बौल्क (Baulk) कहते हैं। इस स्थान में




एक अर्द्धवृत्त खींचा जाता है जिसमें खिलाड़ी अपनी सफ़ेद गोली खेलने के लिए रख देता है। इसके बाद खिलाड़ी खेल आरम्भ करता है और अपनी सफ़ेद गोली में डण्डा मारकर उसे उछालता है। सफ़ेद गोली को उछलकर लाल गोली से टकराना चाहिए। ऐसा न होने से उसके साथी की उस पर एक बाज़ी हो जाती है जिसे मिस (Miss) कहते हैं। खेल की चतुरता इसमें ही है कि जिस गोली से खेल आरम्भ किया जाय वह या तो लाल गोली से टकराकर या वहाँ कहीं जो दूसरे खिलाड़ी की सफ़ेद गोली पड़ी हो तो उससे टकराकर थैली में जाय परन्तु ऐसा बहुत कम होता है। खेल आरम्भ होने के बाद दूसरा खिलाड़ी भी वहीं से खेल आरम्भ करता है परन्तु अपने साथी की या लाल गोली को अपनी गोली से टकराना उसकी इच्छा पर है। जब तक उसकी बाज़ी होती जाय वह खेलता जाय। बिना किसी प्रतिबन्ध के पूरे खेल को ब्रेक (Break) कहते हैं। बाज़ी होने के बहुत से तरीक़े हैं। जब खिलाड़ी अपनी गोली से दोनों गोलियों को टकराता है तब इस बाज़ी को कैनन (Cannon) कहते हैं और यह दो बाज़ी के बराबर गिनी जाती है। जब दूसरी गोली से टकराकर उसकी गोली थैली में चली जाय तो उसे लूजिङ्ग हेज़र्ड (Losing Hazard) कहते हैं। जो

व्यवहार की घटनाओं को व्यवस्था में रख सके ऐसा एक पुरुष होता है पर ऐसे दस सहस्र होते हैं जो कभी-कभी उन चतुर व्यवस्थापकों से भी अधिक उत्तम रीति तथा सुगमता से उनका अनुकरण कर सकते हैं। जो जहाज़ चलाना अपने सिर पर ले वह तूफ़ान के कारण कर्ण पर से नीचे गिर सकता है पर जो यात्री जहाँ वह जहाज़ जाय वहाँ जाने का निर्णय कर खा-पीकर नीचे किसी कमरे में निश्चिन्त बैठे हों उनका कुशल-पूर्वक किनारे आ लगना सम्भव है। भवितव्यता, अन्य स्त्रियों के समान, स्वामी की अपेक्षा प्रणयी को अधिक पसन्द करती है और किसी के वश में अधीरता से रहती है पर उचित अवसर देख आग्रह से जो उसकी आराधना करता है उसकी प्रार्थना कदाचित् ही निष्फल होती है।

## स्वप्न

दार्शनिक चार सहस्र वर्ष से विचार कर रहे हैं पर अब ऐसा समय आ गया है कि उन्हें कुछ उपदेश अवश्य करना

---

उसकी गोली अपने साथी की गोली से टकराकर थैली में जाय तो दो बाज़ी गिनी जाती हैं और जो लाल गोली से टकराकर जाय तो तीन गिनी जाती हैं। जब खिलाड़ी के साथी की गोली थैली में जाय तब दो बाज़ी और लाल जाय तब तीन बाज़ी मानी जाती हैं। जब खिलाड़ी की गोली किसी गोली से भी न टकरावे तो उस पर एक बाज़ी होती है और जब उसकी गोली बिना टकराये थैली में चली जाय तो उस पर तीन बाज़ी होती हैं।

चाहिए। स्वप्न में केवल विवेक का अभाव होता है और सब अन्तःकरण के व्यापार जाग्रत अवस्था के समान ही जल्दी और बल से जारी रहते हैं। क्या कोई भी हमें इसका कारण समझा सकता है? स्वप्न के समय विवेक बिलकुल निर्व्यापार होता है। यह अनुभव से जाना जा सकता है कि स्वप्न-दर्शी देश, काल तथा स्थिति के विरुद्ध अनेक चमत्कार सहज में यथार्थ समझ लेता है और विवेक से उनमें ज़रा भी विरोध नहीं देखता। जागने के साथ ही वह विवेक का उपयोग करने लगता है। तब हमें अपनी भूल के ऊपर बड़ा आश्चर्य करना पड़ता है कि जिसके कारण निद्रा में हमने अनेक विरुद्ध घटनाओं को सहज में युक्ति-सङ्गत समझ लिया था। इस विषय पर एक असामान्य विद्वान् ने अपने अनुभव की एक विलक्षण बात कही थी वह मुझे याद है। उसने स्वप्न में पहले तो अपने एक मित्र की चिता देखी और पीछे वही मित्र उसे मार्ग में जाता हुआ मिला तो उससे यह बात भी कही। तिस पर भी इन दोनों बातों का विरोध उसे ज़रा भी नहीं मालूम हुआ। यद्यपि यह बात इतनी विरुद्ध थी तो भी जागने के पहले उसका इस बात में विश्वास ज़रा भी शिथिल नहीं हुआ। विवेक-शून्यता के ऐसे चमत्कार से मुझे यह सम्भावना होती है कि स्वप्न मात्र अन्तःकरण की दृष्टि के प्रत्यक्ष चित्र हैं। जो-जो हमें स्वप्न में दीखता है उसे हम प्रत्यक्ष देखते हैं। इसमें न तो कोई शङ्का है और न अनुमान है क्योंकि सांसारिक दृश्य

प्रत्यक्ष है और उसके सब पात्र नेत्रगोचर होने से सत्य हैं। जितने मुझे अपने स्वप्न याद हैं और जो कुछ दूसरों के अनुभव से मैंने सुन रक्खा है उसके अनुसार मैं यह मानता हूँ कि स्वप्न मात्र अन्त:करण के ऊपर पड़े हुए प्रतिबिम्ब का प्रत्यक्ष चित्र हैं। परन्तु इस बात के मानने पर यह एक विलक्षण प्रश्न उठता है कि जो जन्म से ही अन्धे हैं, उन्हें किस भाँति के स्वप्न दीखते होंगे। क्या उन्हें स्वप्न दीखते हैं? यदि यह अनुमान कर लिया जाय कि दीखते हैं तो जो बात उन्हें स्वप्न में दीखती हो उसे क्या वे उन बाह्य पदार्थों के मुक़ाबले से समझा भी सकते हैं जिन्हें उन्होंने कभी नहीं देखा है? जिनको ऐसा अनुसन्धान करने का उपयुक्त समय तथा अवकाश हो केवल उनको ही मैं यह सूचना देता हूँ।

## वस्त्र

मलिन वस्त्रों से प्रत्येक मनुष्य की प्रतिष्ठा होना कठिन है; सांसारिक बुद्धि के अनुसार तो शरीर का शृङ्गार करने में अपनी आय से कुछ अधिक तथा रहन-सहन में कुछ कम व्यय करना चाहिए, क्योंकि हम कैसे वस्त्र पहनते हैं यह सब देख सकते हैं पर जैसा हम खाते-पीते हैं वह अगर हम न बतावें तो कोई नहीं जान सकता है। तो भी यथार्थ प्रतिष्ठित मनुष्य सबकी अनुमति से इस बन्धन से मुक्त हैं। वे यथारुचि वस्त्र पहन सकते और खा-पी सकते हैं।

## प्रातःकाल उठना

'शय्या' अनेक विरोधाभासों का आधार है। इस पर हम अरुचि से जाते हैं तो भी उसे छोड़ते समय हमें दुःख होता है; और प्रत्येक रात्रि को इस पर से शीघ्र उठने का हम निश्चय कर लेते हैं पर प्रति दिन प्रातःकाल शरीर को इस पर बहुत काल तक पड़ा रहने देते हैं।

## वाक्पटुता

वाक्पटुता स्वाभाविक होती है। इसकी शिक्षा विद्यालय में नहीं मिल सकती; पर अलङ्कार सीखे जा सकते हैं; उनमें वह भी बहुत चतुर हो सकता है जो अपने हृदय में रस का किञ्चिन्मात्र भी अनुभव न करता हो। लेकिन वाक्पटुता किसी भाँति भी प्राप्त नहीं हो सकती; उसकी गुप्त ओषधि तो अनेक हैं पर उनसे कुछ लाभ नहीं होता।

## स्पर्धा

स्पर्धा को सद्गुणरूपी घोड़े के दौड़ाने का चाबुक समझते हैं और वह सुवर्ण की मालूम होती है। पर यथार्थ में वह सुवर्ण से निकृष्ट धातु की बनी है और यदि तपाकर उसकी परीक्षा की जाय तो मालूम होगा कि उसमें वह स्थिरता नहीं है जो सुवर्ण में नित्य रहती है। जो दूसरों से आगे बढ़ने की इच्छा से सद्गुण का अनुकरण करता है वह दूसरे मुझसे

आगे न बढ़ें इस इच्छा से भी दूर नहीं है; और जो मनुष्य केवल अपनी ही श्रेष्ठता से प्रसन्न है वह दूसरों के अवगुणों से भी कदापि दुःखी न होगा। हम यह आग्रह के साथ कह सकते हैं कि यथार्थ सद्‌गुण उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होते हैं और कभी उनका नाश नहीं होता है। परन्तु जो मनुष्य दूसरों से आगे बढ़ने के लिए कमर कसता है वह अपनी इच्छा पूर्ण होने पर अपने पौरुष को उठा रखता है और, आत्मप्रीति के कारण, जय प्राप्त करने से पूर्व ही उसका फल भोगने के लिए उत्सुक हो जाता है।

## उत्साह

जिनके पास किसी भाँति का अधिकार है उन्हें अपने उपायों के सम्पादन करने का काम जो उसके योग्य हों उनकी अपेक्षा ऐसे लोगों के सुपुर्द करना चाहिए जो कि चित्त से उसे किया चाहें। जो सेवक हैं उन्हें प्रत्येक काम यथाशक्ति करना पड़ता है पर स्वामियों को जितना विश्वास तथा सन्तोष जो काम सेवकों को सौंपा जाय उसको करने के लिए उनकी इच्छा जानने से होना चाहिए उतना केवल उनके काम कर देने से ही नहीं होना चाहिए। जो मनुष्य किसी काम के विरुद्ध हो उसको ही ऐसे काम के सम्पादन का भार देना केवल उसके तृतीय भाग को काम में लगाना है; क्योंकि उसका चित्त तथा बुद्धि तो तुम्हारे विरुद्ध हैं, तुम केवल उसके हाथों से काम लेते हो।

## ईर्ष्या

यथार्थ में तो ईर्ष्या को मनुष्य के हृदय में स्थान ही न मिलना चाहिए, क्योंकि इस लोक का वैभव इतना तुच्छ तथा मायिक है कि वह ईर्ष्या के योग्य नहीं और परलोक का वैभव इतना विशाल तथा उन्नत है कि वहाँ तक यह पहुँच नहीं सकती।

## अनन्तता

जो मनुष्य बार-बार अनन्तता और संसार की भली भाँति देख-भाल करेगा उसे अपने विचार से ज्ञात होगा कि प्रतिदिन अनन्तता की उन्नति तथा संसार की क्षति होती जाती है।

# घटना और उनके गुप्त कारण

अनेक इतिहास-लेखक घटनाओं के वर्णन में उनकी उत्पत्ति के गुप्त कारण लिखे बिना सन्तुष्ट नहीं होते। परन्तु शूरवीरों को युद्ध की तथा राजकार्य-धुरन्धरों को कार्य की व्यग्रता के कारण बहुधा घटनाओं के प्राकृतिक क्रम का परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है। शूरवीरों को कभी-कभी विचार करने से पूर्व ही युद्ध करना पड़ता है तथा राजकार्य-विशारदों को कभी-कभी औरों से सलाह लिये बिना ही निर्णय करना पड़ता है। राज्यनेता घटनाओं के अनुसार अपना नियम कर सकता

है पर घटनाओं के नियम को अपने अनुसार नहीं कर सकता। राज्य-सभा में बहुधा ऐसा होता है कि दो बातें साथ चलती रहती हैं—एक मुख्य वस्तु तथा दूसरा उसका अङ्ग। इन दोनों में से जो केवल एक को ही समझता है उसको दोनों में से एक का भी यथार्थ ज्ञान होना असम्भव है। किसी राजा के ऊपर किसी उपपत्नी का आधिपत्य हो सकता है पर उस उपपत्नी पर भी किसी क्षुद्र मनुष्य के अधिकार का होना सम्भव है। किसी ने डाक्टर बस्बी से पूछा था कि "तुम गिरजे में अपने उन्नत पद, तथा वेस्टमिन्स्टर स्कूल के प्रधानाध्यापक के अधिकार को चार राजाओं के विद्रोह-पूर्ण राज्य में किस भाँति स्थिर रख सके?" उसने उत्तर दिया कि "पिता का राज्य प्रजा पर है, माता का राज्य पिता पर है, पर बालकों का राज्य माता पर है और मेरा राज्य बालकों पर है।"

## श्रेष्ठता

कुछ मनुष्य केवल दो प्रकार की श्रेष्ठता मानते हैं। एक जिसकी वे समानता कर सकते हों और दूसरी जिससे वे स्वयं बढ़े-चढ़े हों। इनमें से पहली श्रेष्ठता को वे अधिक उत्तम गिनते हैं। यदि कोई ऐसी श्रेष्ठता हो कि जिससे उनका पराजय हुआ हो तो अपना पराजय स्वीकार करने की अपेक्षा वे उसका ही अभाव मान लेते हैं। अलौकिक बुद्धि के तेज के सामने उनकी कान्ति जाती रहती है और वे उसे प्राप्त नहीं

कर सकते इसलिए व्याकुल हो जाते हैं। जो श्रेष्ठता उनमें हो उसे ही वे सर्वोत्तम समझते हैं जैसे जो देव-मन्दिर से इतनी दूर रहते हों कि वहाँ नहीं पहुँच सकें ऐसे कुछ मूर्ति-पूजक अपनी कल्पना के अनुसार एक छोटी सीसे की मूर्ति बनाकर उसे ही देवता मान उसकी पूजा किया करते हैं।

## अनुभव

एक लेटिन की उक्ति का किसी ने ठीक अनुवाद किया है कि ख़रीदने की अपेक्षा अनुभव का उधार लेना उत्तम है। जो मनुष्य दूसरों के सब प्रकार के सुख से मुदित होता है वह प्रायः स्वतन्त्र सुख भोगता है और जो दूसरों की मूर्खता से शिक्षा ग्रहण करता है वह बहुधा सर्वोत्तम बुद्धि प्राप्त करता है। परन्तु मनुष्य-जाति के अहङ्कार तथा स्वार्थ-परायणता के कारण वाञ्छित वस्तु कदाचित् ही अनुसन्धान की जाती हैं तथा सुलभ वस्तु कदाचित् ही मिलती हैं। जो बुद्धिमान् की बुद्धि तथा मूर्ख की मूर्खता दोनों से एक से उपदेश ग्रहण करता है उसका ज्ञान दुगुना होता है। ऐसे उपदेश ढाल, तलवार दोनों के बराबर हैं।

## श्रद्धा तथा कर्म

धार्मिक जीवन के लिए श्रद्धा तथा कर्म उतने ही आवश्यक हैं जितने मानुषी जीवन के लिए आत्मा तथा शरीर हैं, क्योंकि धर्म की श्रद्धा आत्मा तथा कर्म शरीर हैं।

## सत्य तथा झूठ

दृष्टि बिन्दु से अवलम्ब किये हुए चित्र के समान झूठ है। वह सब दृष्टि स्थलों से नहीं देखी जा सकती क्योंकि जैसे चित्र यथार्थ सांसारिक लीला का अनुकरण होता है वैसे ही यह भी सत्य का अनुकरण मात्र है। परन्तु सत्य सब दृष्टि-बिन्दुओं से एक ही रूप में देख पड़ती है और चाहे जिस स्थिति में देखो वह एक सी रहती है जैसे सांसारिक लीला कि जिसका चित्र अनुकरण मात्र है, सब भाँति देखने से समान दीखती है।

## यश

यश जीवित मनुष्यों पर कम ध्यान देता है पर मरे हुओं का आदर करता है। उनकी चिता तैयार करता है और श्मशान तक उनके साथ जाता है।

## मिथ्या प्रशंसा

मिथ्या प्रशंसा बहुधा आपस की नीचता का व्यापार होता है जिसमें यद्यपि दोनों पक्ष एक दूसरे को ठगना चाहते हैं तो भी कोई ठगाया नहीं जाता क्योंकि मूल्य-हीन शब्दों के बदले में उनसे भी कम मूल्य की आशा मिलती है। पर मूर्खों की कम तथा बुद्धिमानों की अधिक ख़ुशामद करने से हमें साव-धान रहना चाहिए क्योंकि मिथ्या-प्रशंसक को वैद्य से विपरीत

मार्ग पर चलना पड़ता है और सबसे अधिक निर्बल को ओषधि की सबसे अधिक मात्रा देनी पड़ती है। यथार्थ बुद्धिमान् मनुष्य मिथ्या प्रिय वचनों की अपेक्षा सत्य कटु वचनों को पसन्द करेंगे क्योंकि सत्य से उनकी बुद्धि की प्रशंसा तथा झूठ से उनकी विचारशक्ति का अपमान होता है।

## मूर्खता

मूर्ख के समान बुद्धिमान् में भी मूर्खता की बातें होती हैं पर उनमें इतना अन्तर होता है कि मूर्ख की मूर्खता उससे छिपी रहती है पर सब संसार को मालूम होती है किन्तु बुद्धिमान् की मूर्खता उसे मालूम रहती है पर सब संसार से छिपी रहती है। बुद्धिमानों के लिए प्रसन्नता और उत्तम प्रकृति कुछ असाधारण नहीं हैं और गम्भीरता को महत्त्व तथा आडम्बर को विद्या समझने में हम बहुधा भूल करते हैं।

## मूर्ख

हमारी बुद्धि चाहे जितनी प्रबल तथा तीक्ष्ण हो तो भी वह मूर्ख की स्मरण-शक्ति या उसके क्रोध की समानता नहीं कर सकती। जिसमें क्षमा करने की शक्ति नहीं उसमें कभी इतनी निर्बलता नहीं हो सकती कि वह किसी बात को भूल जाय और यह तो स्पष्ट ही है कि बुद्धिमानी की बात कहने की अपेक्षा क्रूर काम करना अधिक सहज है।

## सहनशीलता

जैसे कोई ऐसा निर्बल नहीं है कि जिसे हानि पहुँचाकर हम बिना दण्ड के बच जायँ ऐसे ही कोई ऐसा नीच भी नहीं है कि जो किसी समय हमारे उपकार का बदला दिये बिना रह सकता हो। इसलिए परोपकार-बुद्धि के कारण जो करने को चित्त चाहता है वही बात विवेक से भी ठीक जँचती है। क्योंकि जो मनुष्य अत्यन्त निर्बल का भी अपमान नहीं करता और जो अत्यन्त तुच्छ मनुष्य को सहायता देने में भी अपनी मानहानि नहीं समझता वह क्षमा तथा नम्रता की ऐसी स्थिति पर पहुँच जाता है कि जिससे नीचे पद के मनुष्य उससे प्रीति करने लगते हैं और ऊँचे पद के मनुष्यों की अप्रसन्नता से बचने का तरीक़ा उसे मालूम हो जाता है। क्योंकि जो मनुष्य एक कीड़े को भी सताने से डरता है वह साँप के ऊपर पैर रखने में तो अवश्य विचार करेगा।

## निषिद्ध वस्तु

मुहम्मद मदिरा का, सुलतान विद्या का और पोप गृहस्थों को धर्मशास्त्र पढ़ने का जो निषेध करते हैं इससे हम क्या अनुमान कर सकते हैं? इनमें वास्तव में कोई भय नहीं है पर निषेधकों को इनसे भय अवश्य है। मुहम्मद जानता था कि उसका धर्म सर्वथा युद्ध से चलाया जा सकता है और

तलवार काम में लाये बिना उसकी वृद्धि नहीं हो सकती। उससे यह बात भी छिपी नहीं थी कि मदिरा के समान और कोई वस्तु आज्ञा की अवज्ञा करनेवाली नहीं है। इसलिए उसने मदिरा का निषेध किया। सुलतान जानता था कि स्वतन्त्र राज्य का आधार प्रजा की अज्ञानता और निर्बलता पर है। पर विद्या से मनुष्यों के हृदय का अन्धकार दूर हो जाता है और उनमें एक प्रकार की शक्ति आ जाती है। शिक्षित तथा बल-वान् प्रजा बहुत कष्टदायक होती है। इसलिए उसने विद्या का निषेध किया। पोप ( Leo X ) जानता था कि प्रधान धर्मा-ध्यक्ष का अधिकार और मिथ्या धर्म आपस में एक दूसरे का आधार हैं। पर वह यह भी जानता था कि धर्म-शास्त्र सच्चा है और सत्य तथा मिथ्या का मेल नहीं हो सकता। इसलिए उसने गृहस्थों को धर्म-शास्त्र पढ़ने का निषेध किया।

## भाग्य के प्रीतिपात्र

कितने ही मनुष्य भाग्य के पूर्ण प्रीतिपात्र होते हैं। वे चाहे जहाँ से गिरने पर भी बिलाव के समान अपने पैरों पर उठकर अपने आप खड़े हो जाते हैं। वील्कस् भी एक ऐसा ही मनुष्य था कि जो उसे नङ्गा कर टेम्स नदी में पुल पर से गिरा दो तो भी वह दूसरे ही दिन तुम्हें मिले और उसके सिर पर भड़कदार टोपी, कमर में तलवार, शरीर पर लहस-दार कोट और जेब में पैसे हों।

## धृष्टता

भली भाँति परिचय हुए बिना महापुरुषों से चाहे जो कुछ कह बैठने से बड़ा बुरा परिणाम होता है; सिंह का रक्षक थोड़ा ही परिचय होने से उसके मुख में अपना सिर कदापि नहीं डाल देता है।

## स्पष्टवक्तापन

जो मनुष्य अपने मित्रों से जो उसके विचार उनके विषय में हों उन्हें स्पष्टतया कह देता है उसे अवश्य समझना चाहिए कि वे उसके शत्रुओं से जो बात न जानते होंगे उसे भी कह देंगे।

## प्रतिभा

प्रतिभा एक रीति से सुवर्ण के समान है। जिनके पास इन दोनों में से एक भी नहीं होता ऐसे अनेक मनुष्य इन दोनों के विषय में बार-बार लिखा करते हैं। साधारण मनुष्यों को प्रतिभा के यथार्थ कारण या उसकी क्रिया की विधि समझाने के लिए तत्त्वज्ञान और मस्तिष्क विद्या के यथार्थ ज्ञाता भले ही जितना चाहें उतना उद्योग करें पर उनके सब प्रयत्न निष्फल होंगे। प्रतिभाशाली मनुष्य स्वयं भी अपनी प्रतिभा की शक्ति तथा उसकी उत्पत्ति आदि का कुछ अधिक सन्तोषदायक निरूपण नहीं कर सकते हैं। इस विषय में जितनी

बात कही जा सकती है वह स्पष्टतया इतनी ही है कि प्रतिभा एक मुख्य गुण में जीवन के समान है। हम दोनों के विषय में कुछ नहीं जानते; केवल उनके कार्य से उन्हें समझते हैं। प्रत्येक देश तथा काल में अनेक प्रकार की प्रतिभा का होना सम्भव है। पर कहीं वह अधिक प्रदीप्त होती है कहीं कम। प्रतिभा सब शक्तियों का तत्त्व तथा दैवी बल है और उसके ऊपर जो कुछ मानुषी शक्ति का प्रभाव हो सकता है, वह देश, भूमि, या जल-वायु का नहीं किन्तु केवल सामाजिक मर्यादा अथवा राज्य-पद्धति का हो सकता है। यहूदी लोग प्रत्येक काल और स्थल में एक से रहे हैं क्योंकि उनकी सामाजिक मर्यादा एक सी है। ग्रीस तथा इटली में प्रतिभा का अधिक विकास हुआ इस कारण वे दोनों देश इसके दृष्टान्त गिने जाते हैं। वृक्ष, फल, पक्षी, कीट आदि सब जैसे के तैसे ही हैं क्योंकि आबहवा में परिवर्तन नहीं हुआ; परन्तु विश्व-विख्यात ग्रीक और रोमन कहाँ हैं? राज्य-पद्धति तथा सामाजिक मर्यादा बदल गई हैं और उनके साथ मनुष्य भी बदल गये हैं। स्वतन्त्रता यथार्थ में प्रतिभा की माता नहीं पर धात्री है; वह इसके उत्साह का मार्ग बना देती है, इसकी चपलता का उत्तेजन करती है और इसकी शक्ति को कार्य-सिद्धि के उपयुक्त बना देती है। प्रतिभा का विशेष विकास, या उसे उत्तेजित, करनेवाले जो कारण समझ में आते हैं उनके विषय में तो यही कहा जा सकता है कि जब हम इस विषय पर कोई सामान्य परि-

हार निश्चय करते हैं उसी समय अनेक अपवाद उसको निर्मूल करने के लिए सामने दीखते हैं। जो हम डा० जानसन के साथ सहमत होकर यह कहें कि "प्रतिभा एक सामान्य शक्ति है जो अकस्मात् किसी एक ओर प्रवृत्त हो जाती है" तो यह बात केवल सौ में दस बार ही ठीक होगी। पेली* और एडम् स्मिथ† ने कल्पित कथा तथा असत्य विचारों के विषय में अपनी पूर्ण अयोग्यता प्रदर्शित की है और जो मिस्टर लाक कविता करने का यत्न करते तो उन्हें, इँगलैंड के प्रसिद्ध कवि पोप को जितनी तत्त्वज्ञान के अनुसन्धान में निष्फलता हुई थी उससे बढ़कर होती। दूसरी ओर क्रिकूटन और मीरेंडोला के समान विद्वान् डाक्टर जानसन की उक्ति से सहमत होते दीखते हैं और यह सिद्ध करते हैं कि गहनता की न्यूनता होने से सदा विस्तार नहीं बढ़ता है। शेक्सपियर‡ की प्रतिभा सर्वतो-

---

* पेली एक प्रसिद्ध दार्शनिक और ब्रह्मज्ञानी था।

† एडम् स्मिथ संपत्ति-शास्त्र का संस्थापक था।

‡ शेक्सपियर का जन्म स्ट्रटफोर्ड-अपान-एवन नामक स्थान में २३ अप्रैल सन् १५६४ ई० को हुआ। उसका पिता ऊन कातने का व्यवसाय करता था जिसमें उसने अपने पुत्र को भी छोटे वय से ही लगा लिया था। शेक्सपियर बुरे मनुष्यों की सङ्गति में रहा करता था और उनके साथ बड़े आदमियों की वाटिकाओं में से हिरन चुराया करता था। एक आदमी ने तङ्ग आकर उस पर चोरी के अभियोग में निरोध का वारंट निकलवा दिया। उससे बचने के लिए वह लंडन को भाग गया। वहाँ वह अभिनय के समय थियेटर के दरवाज़े पर खड़ा हो जाया करता और जब

मुखी थी जिससे वह हर एक काम भली भाँति कर सकता था। उसे सर्वोत्तम बनाने के लिए चित्रकार की लेखनी, गायक की सारङ्गी, दार्शनिक की बुद्धि और भविष्यवेत्ता की पवित्र आत्मा ये सब उसमें अलग-अलग स्पर्धा करते थे। प्रतिभा का विकास होने के काल के सम्बन्ध में हम कोई सामान्य नियम नहीं बना सकते हैं। कहीं-कहीं प्रतिभा का विकास बाल्यावस्था में और कहीं यौवन में होता है; कभी-कभी वह क्षुद्र तथा अप्रसिद्ध मनुष्यों में उत्पन्न हो जाती है जिससे देश का बहुत नाम होता है और उन प्रतिभाशाली मनुष्यों की कीर्ति भी अनन्त काल के लिए स्थायिनी हो जाती है। कितने ही ऐसे सत्पुरुष दीखते हैं जो मेघ के भीतर से बिजली के समान अप्रसिद्ध स्थान में से एक साथ प्रकाशित हो गये हैं। उनके पराक्रम की समानता केवल उनके प्रभाव से हो सकती है। जिस बिजली के साथ मैंने उनकी समानता की है उसके समान शक्ति से ही उन्होंने सब बाधाओं का संहार किया है क्योंकि उनकी शक्ति विघ्नों से अधिक उत्तेजित होती और सङ्कटों से अधिक बढ़ती थी।

---

कोई बड़ा आदमी घोड़े पर से उतर तमाशा देखने जाता था तब वह उसके घोड़े की देखभाल किया करता था। तमाशे के समाप्त होने पर कुछ पैसे उसे मिल जाया करते थे। इसके अनन्तर वह नाटकों में पात्र बनने लगा पर इसमें उसे सफलता न हुई इसलिए इस व्यवसाय को भी उसने छोड़ दिया। फिर उसने नाटक लिखना आरम्भ किया जिसमें उसे पूर्ण सफलता हुई। उसने लगभग ३६ नाटक लिखे। उसकी कविता को सब देशों के मनुष्य पसन्द करते हैं। वह इँगलैंड का कालिदास माना जाता है।

# कीर्ति

कीर्ति का मार्ग जो सर्व-साधारण तथा सदा व्यवहृत हो तो उसमें इतना क्लेश न हो; और महापुरुषों को केवल प्रत्येक अवसर का लाभ उठाने को ही नहीं पर अवसरों को उत्पन्न करने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। सिकन्दर भविष्य कहनेवाली पिथिया को निषिद्ध दिन मन्दिर में खेंच ले गया, तब वह बोली कि "बेटा, तू अजित है।" इस भविष्यवाणी से उसे बहुत सन्तोष हुआ। इसी भाँति जिस गार्डिअस्* की लगाई हुई गाँठ को खोलने का अन्य मनुष्यों ने व्यर्थ श्रम किया था उसे इसने काट डाला।

* ग्रीस-निवासियों का यह नियम था कि वे देवताओं की सलाह लिये बिना कोई बड़ा भारी काम आरम्भ नहीं करते थे। ग्रीस में ऐसे बहुत से पवित्र स्थान थे जहाँ देवता अपने सच्चे भक्तों को उत्तर देने के लिए तैयार रहते थे। परन्तु डल्फ़ी में एक सूर्य का मन्दिर था जो और सब स्थानों से अधिक माननीय था। इस मन्दिर के केन्द्र में ज़मीन में एक छोटा सा छेद था जिसमें से, लोगों का विश्वास था कि, एक ख़ास तरह की भाप ऊपर आती थी। जब देववाणी से कोई बात निर्णय करनी होती थी तब उस छेद के ऊपर एक तिपाई डालकर उस मन्दिर की पुजारिन, जिसे पिथिया कहते थे, उस पर आ बैठती थी। वहाँ से भाप ऊपर चढ़कर उसके मस्तिष्क पर असर करती थी और जिन शब्दों का वह ऐसी उत्तेजित दशा में उच्चारण करती थी वे सूर्यदेव का उत्तर समझे जाते थे। एक बार फ़्रिजिया में राज-द्रोह फैला तब वहाँ के कुछ मनुष्य देववाणी की सम्मति लेने गये। उसने उत्तर दिया कि अगर वे ऐसे मनुष्य को अपना राजा बनावेंगे, जो रथ पर बैठ ज्यूस् देवता के मन्दिर को जा रहा हो और सबसे पहले उन्हें मार्ग में मिले, तो उनका राज-

जो मानवीय कीर्ति के लिए यात्रा करें उन्हें, एकटिअन * के शिकारी कुत्तों के समान, आखेट को जहाँ मार्ग न हो उस ओर से भी नहीं छोड़ना चाहिए। उन्हें गुप्तचर्या, आडम्बर तथा दौड़ने सरकने के योग्य होना चाहिए। लोहा गरम हो तभी उसे ठोकने की नीति ऐसे उद्योग के आगे हार मान जाती है जो कि लोहे को ठोक-ठोककर तपा दे; और जो मनुष्य केवल तूफ़ान को बन्द कर सकता है उसे ऐसे मनुष्य के सामने नम्र होना पड़ता है जो कि स्वयं तूफ़ान पैदा करके उसे बन्द कर सकता हो।

## बातून

आलसी मनुष्य जब व्यर्थ समागम से उद्योगी पुरुषों का समय नष्ट करते हैं तब वे उनसे बड़ा भारी कर लेते हैं। जैसे भिखारी प्रतिदिन घर-घर अपने लिए रोटी माँगते फिरते हैं

---

द्रोह शान्त हो जायगा। उन्हें सबसे पहले गार्डिअस् नामक किसान मिला जिसे उन्होंने फ़्रिजिया के राज्य-सिंहासन पर बैठा दिया। इसकी कृतज्ञता में गार्डिअस् ने अपना रथ ज्यूस् की भेंट किया और छड़ में ऐसी युक्ति से गाँठ लगाई कि देववाणी ने यह कहा कि जो कोई इसे खोलेगा वह संसार का राजा होगा। सिकन्दर ने इस गाँठ को तलवार से काट डाला।

* एकटिअन एक प्रसिद्ध व्याध था। उसने एक बार ग्रीस की एक देवी को नहाते देख लिया था इसलिए देवी ने उसे शाप दिया जिससे वह बारहसिंगा हो गया। फिर तो ख़ास उसके शिकारी कुत्तों ने ही उसे चीर-फाड़ डाला।

उसी भाँति ये भी अपना सुख माँगते फिरते हैं और भिखारी के समान ही कभी-कभी उन्हें निष्फल लौटना पड़ता है। यदि किसी बातून को हम यह जतावें कि हमें उससे व्याकुलता हो गई है तो इस बात पर उसे आश्चर्य नहीं करना चाहिए क्योंकि अपनी मुलाक़ात से जो उसने हमारी प्रतिष्ठा बढ़ाई उसका मुख्य कारण तो यही है कि वह स्वयं ही अपने से व्याकुल हो गया था। जब तक वह असहनीय व्याकुलता का बड़ा भारी बोझ इकट्ठा नहीं कर लेता तब तक घर पर बैठा रहता है पर पीछे उसमें से थोड़ा-थोड़ा घर-घर बाँटने के लिए वह बाहर निकलता है।

## महत्त्व

यथार्थ महत्त्व वही है जिसे सर्वोत्तम महापुरुष महत्त्व मानें; क्योंकि सर्वोत्तम होने की कठिनता केवल उनकी समझ में आ सकती है कि जो सर्वोत्तमता के बहुत निकट हों। जैसे किसी वस्तु से अधिक दूर खड़ा हुआ मनुष्य उसके पास की और वस्तुओं का अन्तर निर्णय करने में समर्थ न हो, उसी भाँति जो श्रेष्ठता से बहुत दूर हैं वे उनके विषय में विचार करने में बड़ी भूल करते हैं जो कि श्रेष्ठता में बहुत पास पहुँच गये हैं। जो यथार्थ में बड़े हैं वे वास्तव में बहुत कम हैं और अपनी उत्तमता को बड़ी कठिनता से स्वीकार करते हैं। पहले मैं एक लेख में लिख चुका हूँ कि मैं एक बार एक राक्षस को देखने गया था; वह बहुत ऊँचा और सुन्दर था। उस समय बालकों का एक

समुदाय उस कमरे में आया जिसे देख मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैंने यह सोचा कि इस राक्षस को देखकर बालकों के चित्त पर जो प्रभाव होगा उससे मुझे और भी प्रसन्नता होगी। परन्तु मेरी आशा व्यर्थ हुई क्योंकि इन छोटे-छोटे मनुष्यों पर इस राक्षस का मेरे विचार की अपेक्षा बहुत कम असर हुआ। इस विषय पर अपना आश्चर्य प्रकट करने के लिए मैंने उस राक्षस से ही बात-चीत छेड़ी तब उसने मुझसे कहा कि "मेरा निरन्तर यही अनुभव है कि छोटे बालक और ठिगने आदमी मुझे देखकर जो आश्चर्य प्रकट करते हैं वह लम्बे मनुष्यों के आश्चर्य से आधा भी नहीं होता। इसका कारण सोचने में मुझे ज़रा कष्ट हुआ पर अन्त में मैंने यह निश्चय किया कि बालक और ठिगने आदमियों को सर्वदा दूसरों के मुख के सामने देखना पड़ता है इसलिए उन्हें ऊँचा मुख करके देखने की आदत हो जाती है, यही कारण है कि सदा की अपेक्षा कुछ अधिक ऊँचा देखने में उन्हें कुछ कष्ट नहीं होता पर जो ऊँचे क़द के हैं उन्हें और लोगों को देखने के लिए नीची दृष्टि करनी पड़ती है इसलिए जब कोई ऐसा अवसर आ जाता है कि उनसे भी ऊँचे क़द के कारण, देखने के लिए उन्हें ऊँचा मुख करना पड़ता है तब उन्हें अत्यन्त आश्चर्य होता है।" ऐसे ही मनुष्य के मन का हिसाब है। जो यथार्थ महापुरुष हैं उन्हें अपने समान बड़े मनुष्य कदाचित् ही मिलते हैं पर नीचे नित्य मिलते हैं; लेकिन जब उन्हें किसी अपने से उत्तम महापुरुष

का दर्शन होता है तब उत्तम बुद्धि के चमत्कार के कारण उनका प्रभाव और भी बढ़ जाता है और जैसी सेवा उस महा-पुरुष की उचित होती है वैसी ही वे भक्ति-पूर्वक करते हैं।

## आदत

आदत से हमको फेरफार के सिवा हर एक बात का अभ्यास हो सकता है और जो फेरफार बहुत जल्दी-जल्दी न होता हो तो उसका भी हो सकता है। भूतपूर्व सर जार्ज स्टान्टन ने मुझसे कहा था कि "मैंने भारतवर्ष में एक ऐसा आदमी देखा था जिसने मनुष्य-वध किया था। इसलिए केवल अपना जीवन बचाने के लिए नहीं पर अपनी जाति से च्युत न होने के लिए, उससे जो प्रायश्चित्त करने को कहा गया था उसे उसने स्वीकार किया। वह यह था कि अपराधी सात वर्ष तक ऐसी शय्या पर बिना बिछौने सोवे जिस पर कीलें जड़ी हों पर वे इतनी पैनी न हों कि उसके शरीर में चुभ जायँ।" सर जार्ज इस व्यक्ति से इस प्रायश्चित्त के पाँचवें वर्ष मिले थे उस समय इसकी खाल गैंडे के समान हो गई थी पर उसकी स्पर्श-शक्ति गैंडे से भी अधिक घट गई थी। मगर उस समय यह अपनी कण्टक-शय्या पर चैन से सो सकता था और कहता था कि "अपने प्रायश्चित्त की अवधि पूरी हो जाने पर भी जिस नियम का मुझे हठ से पालन करना पड़ा है उसे मैं अपनी इच्छा से जारी रक्खूँगा।"

# सुख

सांसारिक सुख क्या है ? वह आभा जिसके विषय में हम सुनें इतना अधिक, पर देखें कुछ भी नहीं; जिसके वादे नित्य हों और नित्य तोड़े जायँ तिस पर भी हम उनमें नित्य विश्वास करें; जो वस्तु के बिना शब्द से ही और फल के बिना कली से ही हमें धोखा दे; जब तक हम उसके पीछे दौड़ें तब तक तो वह हमें स्वर्ग की परी के समान दीखे पर हाथ में आने पर बादल का टुकड़ा मालूम हो; तथा जो उसका भोग नहीं कर सकते वे जिसकी पूजा करें और जो भोग कर सकते हों वे जिसे तुच्छ समझें। आशा उसकी दूती, पर निराशा उसकी सहेली है; आशा केवल हमारी कल्पना को ललचाती है जो आशा पर बहुधा विश्वास कर लेती है पर निराशा हमारे अनुभव का सहारा लेती है जो उसका अवश्य विश्वास करता है। जीवन-नृत्य की प्रधान नायिका संपत्ति हम सबको इधर-उधर गली-कूचों में दौड़ाती है पर सबको एक मार्ग से नियमानुसार नहीं दौड़ाती। एरिस्टिपस्* भोजन के आनन्द, साक्रटीज़† ज्ञान और एपिक्युरस्‡ दोनों के द्वारा उसे ढूँढ़ता था; उसने सबका प्रेमभाव स्वीकार किया पर अपने आप

---

* एरिस्टिपस् साक्रटीज़ का एक शिष्य था।

† साक्रटीज़ ग्रीस का एक प्रख्यात दार्शनिक था।

‡ एपिक्युरस् भी ग्रीस का एक तत्त्ववेत्ता था।

किसी से प्रीति नहीं की यद्यपि इन सबने ही जितनी उसने उन पर कृपा की उससे अधिक कृपा का आडम्बर दिखाया था। इनकी निष्फलता से शिक्षा पाकर स्टोइक् लोगों ने बहुत विलक्षण रीति से अपना प्रेम दिखाना आरम्भ किया। उन्होंने निन्दा करके उसके प्रेमपात्र बनने की आशा की; उसका तिरस्कार करके उसको पाने की इच्छा की; और अभिमान से ऐसा अनुमान किया कि उसे भगाया जायगा तो वह लौट-कर हमारे पीछे दौड़ती आवेगी। वह तूफ़ान के पहले की शान्ति के समान धोखा देनेवाली, झरने के मुख के जल के समान चिकनी और वर्षा-काल के मनोहर इन्द्र-धनुष के समान सुन्दर है; पर, ऊसर भूमि की मरीचिका के समान, वह हमें ऐसी झूठी माया से धोखा देती है जो अन्तर से पैदा होती है पर समीप से नष्ट हो जाती है। इतना होने पर भी वह बहुधा बिना ढूँढ़े ही मिल जाती है और आशा करने से भी प्रायः आ मिलती है; पर जो बहुत श्रम से उसके पीछे भागते हैं उन्हें वह कभी नहीं मिलती क्योंकि जहाँ वह नहीं होती वहाँ वे उसे ढूँढ़ते फिरते हैं। कितनों ही पर यथार्थ में उसकी अधिक कृपा है पर उन पर क्रूरता भी कम नहीं है; उन्हें वह अपना प्याला पिला देती है जिसमें वे यहाँ तक चूर हो जाते हैं कि अपने आपे को भूलकर यह विचारने लगते हैं कि हम मनुष्य हैं या देवता। इटली के आनन्द-कारक सूर्य से भी अधिक आकर्षक आकृति से वह नेपोलियन

के समान कुछ मनुष्यों पर अधिक कृपा करती है पर केवल इस आशय से कि जब उससे वियोग हो तो वह अधिक दुःखदायी हो।

## आरोग्य

शरीर तथा मन दोनों की रचना में सब अङ्गों के ठीक-ठीक तथा आपस में अनुकूल होने से ही हम सुखी हो सकते हैं। पर जो एक बात भी प्रतिकूल हो जाय तो हमें दुखी होना पड़ता है। यद्यपि इस जीवन में सुख के अवसर बहुत कम और मिथ्या होते हैं तथापि दुःख तो यथार्थ तथा चिर-स्थायी होते हैं क्योंकि मैं तुम्हें एक छटाँक सुख की अपेक्षा सौ मन दुःख सहज में दिखा सकता हूँ। दुःख से दूर रहने में ही जो सुख न माने उसे अपना और संसार का बहुत कम ज्ञान है। इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य जो आरोग्य हों तो और सब वस्तु अपने आप प्राप्त कर सकते हैं। यही कहना पड़ता है कि वे आरोग्य हों क्योंकि प्रायः ऐसा होता है कि मूर्ख वैद्य से हमें बहुत हानि होती है और कुशल वैद्य को इस बात का ज्ञान नहीं होता कि ज़रा सा भी फ़ायदा कैसे होगा।

## संशय

संशय निर्बलता का चिह्न है क्योंकि जिस कार्य की भलाई-बुराई में हम संशय करते हैं वे कदाचित् ही बराबर होती हैं

इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य गरुड़ के समान तीक्ष्ण दृष्टि से डण्डी का ज़रा सा झुकाव भी शीघ्र परख लेते हैं; संशय के बहुधा ऐसे प्रसङ्ग भी देखे गये हैं कि जिनमें डण्डी का झुकाव बिलकुल अदृश्य-प्राय होता है चाहे एक पलड़े में जीवन और दूसरे में मृत्यु हो। भूतपूर्व अर्ल बर्कले के विषय में यह कहा जाता है कि उसे एक रात्रि को अपनी गाड़ी में सोते हुए किसी लुटेरे ने अकस्मात् जगाया और खिड़की में से एक पिस्तौल भीतर घुसेड़ और उसकी छाती के पास ले जाकर उसके रुपये-पैसे माँगे और कहा—"मैंने सुन रक्खा है कि आप यह कहा करते हैं कि कभी कोई अकेला डाकू आपके ऊपर छापा नहीं मार सकता, इसलिए आज मैं आपके गर्व की बात को उलटा साबित करने आया हूँ।" अर्ल बर्कले ने अपना हाथ जेब में डालकर कहा कि "अगर तेरे साथ दूसरा मनुष्य, जो तेरे पीछे खड़ा है, न होता तो वास्तव में तू मुझे नहीं लूट सकता था।" यह सुन तुरन्त उस लुटेरे ने पीछे देखा और तभी झटपट बर्कले ने अपने जेब में से रुपये के बदले पिस्तौल निकालकर वहीं उसका काम तमाम कर दिया।

## प्रतिष्ठा तथा सद्गुण

प्रतिष्ठा अनिश्चित होती है और वह सर्वदा एक सी नहीं रहती क्योंकि उसका आधार जन-समुदाय के विचार हैं इसलिए वह उनके समान ही अनिश्चित है। प्राणि मात्र में जो

सबसे अधिक परिवर्तनशील हैं उनकी उत्तम सम्मति की रेती के पाये पर वह अपना महल बनाती है। पर सद्गुण एकरूप तथा निश्चित हैं क्योंकि वे ईश्वर से आदर की आशा करते हैं जो आज, कल या भविष्य में एकरूप है। प्रतिष्ठा अपना पुरस्कार देने में बड़ी चञ्चल है। वह हमें पवन से जिलाती है और हमारा कीर्ति-स्तम्भ बनाने के लिए बहुधा हमारे घर को तोड़-फोड़ डालती है। इसकी चित्त-वृत्ति बहुत सङ्कीर्ण है क्योंकि इसकी आशाओं की जड़ संसार में है जिसकी सीमा काल और अन्त मृत्यु है। पर सद्गुण उदार हैं और उनकी आशाएँ अनन्त हैं क्योंकि उनका इस लोक को छोड़ परलोक तक विस्तार है; ऐसी उनकी सीमा है और अमर आनन्द के अनुभव में ही उनका अन्त है। जब जीवन में कोई तूफ़ान आवे तब प्रतिष्ठा पर विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि जो तूफ़ान उसके आसपास होता है उसमें वह मिल जाती है, और उसकी भारी वायु के साथ उड़ी हुई चली जाती है। पर सद्गुण सब तूफ़ानों की पहुँच से ऊपर हैं, उनकी नींव दृढ़ तथा निश्चित है क्योंकि वह स्वर्ग में गेरी गई है।

किसी मनुष्य को भी सद्गुण का जो मूल्य देना पड़ता है उसके लिए पीछे से परिताप नहीं होता क्योंकि उनका मूल्य जितना-जितना अधिक हम देते जायँ उतना-उतना ही अधिक बढ़ता जाता है। जब हम सद्गुणों को अपना सर्वस्व देकर ख़रीदें तब वे जितने बहुमूल्य होते हैं उतने और कभी नहीं होते।

# मानवीय मनोविकार

लेडी मेरी वर्टली मोंटेगू ने कहा है कि अपनी विस्तीर्ण यात्राओं में मैंने दो भाँति के ही मनुष्य देखे हैं—पुरुष और स्त्री। इस बहुत सरल और सादी बात का आधार मनुष्य-स्वभाव का अपूर्ण अवलोकन नहीं है; लेकिन हम कह सकते हैं कि यह भेद चाहे जैसा सङ्कीर्ण हो तो भी अब धीरे-धीरे ढीला हो चला है। क्योंकि हममें से कितने ही छैले बहुत सी छोटी-छोटी बातों में स्त्रियों का अनुकरण करने लगे हैं और स्त्रियाँ भी बहुत सी बड़ी-बड़ी बातों में मनुष्यों का अनुकरण करने लगी हैं। मिस एज़वर्थ और मेडेम-ड-स्टील ने सिद्ध कर दिया है कि आचार में लिङ्गभेद नहीं है; और मेडम-ला-रोश जेकीलीन और डचेस्-ड-अंगोलिन ने यह सिद्ध कर दिया है कि पराक्रम में भी लिङ्गभेद नहीं है; जङ्गली या सुधरे, चिथड़े पहने या उज्ज्वल वस्त्रों से चमकते हुए, हम सत्त्वरूप में वस्तुतः एक ही हैं। हम जिस सुख के पीछे भागते हैं या जिस दुःख से दूर भागते हैं वे एक से ही हैं; हम राग-द्वेष करते हैं, आशा-निराशा में भटकते हैं, उन दोनों के कारण भी एक से हैं, केवल उनकी स्थिति और आकार में कहीं-कहीं भेद होता है। एक स्काटलेंड-निवासी को इंडिया की एक जाति ने क़ैद कर लिया था। जब वहाँ उसके वध की तैयारी हो रही थी उसे उस जाति के सरदार ने अपना दत्तक पुत्र बना लिया। वे उसे अपने देश

में ले गये। वहाँ उसने उनकी भाषा, उनका आचार और उनके शस्त्रों का उपयोग भली भाँति सीख लिया। कुछ दिन के बाद उन्होंने अँगरेज़ी सेना के विपक्षी होकर फ्रेंच सेना से मिलने के लिए यात्रा की। रात में अँगरेज़ी सेना के शिविर के समीप होकर जाना ज़रूरी हुआ। इस समय वसन्त ऋतु थी। प्रातःकाल वृद्ध सेनापति ने इस युवक को जगाया और एक ओर ले जाकर उसे उसके देशवालों की सेना दिखाई। वृद्ध मनुष्य को बहुत क्रोध हुआ दीखता था और उसके नेत्र भी लाल हो गये थे। एक क्षण के अनन्तर वह बोला—"तुम्हारे देश के साथ युद्ध में मेरा इकलौता पुत्र मारा गया था; क्या तुम अपने बाप के एक ही पुत्र हो, क्या तुम्हारा बाप अब तक जीता होगा?" युवक ने जवाब दिया—"मैं भी अपने पिता का एक ही पुत्र हूँ और मेरा पिता अभी जीता-जागता मालूम होता है।" वे एक बहुत सुन्दर तथा पुष्पित वृक्ष के पास खड़े थे। वहाँ का दृश्य चित्ताकर्षक तथा मनोहर था और सूर्यबिम्ब से उसकी कान्ति और भी प्रकाशित हो गई थी। वृद्ध सेनापति ने युवक की ओर देखकर कहा—"इस दृश्य की सुन्दरता से तेरा हृदय भले ही प्रफुल्लित हो, मुझे तो यह सूखा जङ्गल दीखता है; लेकिन तू आज से स्वतन्त्र है; अपने देश को लौट जा और अपने पिता से मिल जो प्रातःकाल सूर्योदय को और वसन्त में प्रफुल्लित वृक्षों को देखकर आनन्दित हो सके।"

---

## नम्रता

तुम और मनुष्यों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् हो इस बात पर कठिनता से विश्वास करो; इस साधारण भूल से बड़ी हानि होती है। दूसरों के दोषों के यथार्थ ज्ञान से जितना लाभ होता है उतनी ही अपने को वृथा अधिक गुणी समझने से हानि होती है।

## व्यग्रता और त्वरा

व्यग्रता और त्वरा के समान भिन्न अन्य कोई वस्तु नहीं हैं। व्यग्रता निर्बल मन का और त्वरा बलवान् मन का चिह्न है। पिँजरे के भीतर की छिपकली के समान निर्बल मनुष्य सर्वदा व्यर्थ श्रम करता रहे पर उसका फल कुछ भी नहीं होता। वह दिन भर कुछ न कुछ भले ही करता रहे पर उन्नति ज़रा भी नहीं कर सकता। दरवाज़े में लगी हुई फिरकी के समान वह सबके सामने आता है पर किसी को ठहरा नहीं सकता; बकता बहुत है पर कहता कुछ नहीं; हर एक बात की देख-भाल करता है पर देख कुछ नहीं सकता; एक ही समय सैकड़ों काम आरम्भ कर देता है जिनमें से बहुत कम सिद्ध होते हैं और जो सिद्ध हों उनसे भी लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है।

## आलस्य

सद्गुण अथवा दुर्गुण के प्रभावशाली दृष्टान्त एकाएक जैसे समझे जाते हैं वैसे अपना अनुकरण कराने में समर्थ नहीं

होते। किसी उत्तम वस्तु के लिए जिसे तीव्र इच्छा न हो ऐसा तो क़दाचित् एक ही मिलेगा पर जिन्हें उत्साह न हो ऐसे सहस्रों मिलेंगे; आलस्य कितने ही मनुष्यों के सद्गुण प्राप्त करने में बाधा तो कर देता है पर बहुतेरों को दुर्व्यसन में पड़ने से भी बचाता है। आलस्य पैसिफ़िक (Pacific) महासागर के समान है; जैसे वह कभी हिलता-डुलता नहीं वैसे ही इस पर भी उत्तम या निकृष्ट वस्तुएँ कुछ असर नहीं कर सकतीं। यह समझा जाता है और बहुधा ठीक भी है कि आलस्य से दुर्गुण उत्पन्न होते हैं, पर जिस क्षण दुर्गुण यथार्थ में उत्पन्न हों उसी समय उन्हें दूर करने के लिए आलस्य छोड़ देना चाहिए।

## बुद्धि-माहात्म्य

वे ही बुद्धिमानों में धुरन्धर और उत्तमोत्तम कार्य करने के योग्य हैं कि जिन्हें अपनी बुद्धि से दूरवीक्षण यन्त्र के समान देखने की शक्ति है, जिसके द्वारा वे अत्यन्त लाभ की यथार्थ महत्ता तथा योग्यता परख सकते हैं और पास होने के कारण ही जो लाभ भड़कदार दीखते हैं उन्हें त्याग सकते हैं।

## परिचय

परिचय अत्यन्त दृढ़ मैत्री तथा अत्यन्त विकट शत्रुता का मूल है। इस कारण यह कितनी ही महानदियों के समान है जो एक पर्वत में से निकलकर बिलकुल उलटे मार्ग से बहती हैं।

## धूर्त

जो मनुष्य आचार की सुजनता, स्वभाव की एकरूपता और उच्चारण में सावधान होने का आडम्बर करते हों उन्हें नित्य शङ्का की दृष्टि से देखना चाहिए। ये बातें स्वाभाविक नहीं हैं। इनसे मन का आडम्बरशील होना सूचित होता है और जिन मनुष्यों को कुछ भी स्वार्थ न हो वे कभी इन बातों को नहीं सीखते। सबसे अधिक सम्पन्न-मनोरथ धूर्त बहुधा ऐसे हुआ करते हैं जिनके होठ तेल में डुबोये उस्तरे के समान चिकने होते हैं। उनमें जो तीक्ष्ण सर्प के समान स्वाभाविक कुटिलता है उसे ढकने के लिए वे पारावत के समान सरलता, जो उनमें नहीं है उसे, धारण करते हैं।

## धूर्त और मूर्ख

यह संसार हमारा बनाया हुआ नहीं है इसलिए हमें इसे अनुकूल बनाकर इसमें रहना चाहिए। हमें यह मालूम पड़ेगा कि जो किसी काम में न आवें ऐसे मूर्ख और धूर्तों से यह भरा है। पर ऐसे लोग अधिक होते हैं जिनमें दोनों के आचरण का मेल होता है और उनसे ही हमें अधिक काम पड़ता है। शब्दों का उचित स्थल में उपयोग जाननेवाले मनुष्यों को जैसे पुस्तकों का पूरा ज्ञान होता है उसी भाँति योग्य मनुष्यों को योग्य काम में नियुक्त करनेवाले मनुष्यों को जन-समूह का पूरा ज्ञान होता है। इँगलैंड की रानी

एलिज़ाबेथ के विषय में कहा जाता है कि उसका मन बहुत निर्बल था पर वह बुद्धिमान् मन्त्रियों को पसन्द करती थी; इसका किसी ने उपयुक्त उत्तर दिया था कि बुद्धिमान् मन्त्री पसन्द करना शासक की सर्वोत्तम बुद्धि का चिह्न है।

## ज्ञान

मानुषी ज्ञान भी कभी-कभी कितने ही अंशों में अपने पवित्र आदिकारण ईश्वरीय ज्ञान की समानता कर सकता है और ऐसी समता तभी सबसे अधिक प्रत्यक्ष होती है जब यह किसी हानिकारक वस्तु को सुख का साधन बना देती है—जैसे देशों के पारस्परिक सम्बन्ध में समुद्र के समान और क्या दुस्तर विघ्न दीखता है? पर प्रत्येक देश की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए और उनका सम्बन्ध घनिष्ठ होने के लिए सबसे श्रेष्ठ और सबसे सरल साधन विज्ञान के कारण यही हो गया है। वाष्प के समान प्रचण्ड, अग्नि के समान नाशक तथा जल-तरङ्ग के समान स्वतन्त्र और क्या है? तो भी विज्ञान के कारण ये जीवन की आवश्यकता, सुख तथा लावण्य के साधन हो गये हैं। सङ्गमरमर के समान अचेत, जड़ तथा कठिन और क्या है? तो भी शिल्पकार उसे सचेत बना देता है जिससे सब लोग सदा उससे प्रेम करते हैं। रङ्ग के समान अस्थिर, प्रकाश के समान शीघ्रगामी तथा छाया के समान नि:सार और क्या है? तिस पर भी कोई चतुर मनुष्य इनका

शरीर बना उसमें जान डाल सकता है; उनमें अमर जीवन स्थापन कर सकता है, उनको ऐसा मनोहर बना सकता है कि दिन पर दिन उनकी सुन्दरता बढ़ती जाय और वे प्रत्येक समय के मनुष्यों का आकर्षण करें। संक्षेप में इतना ही कहे देता हूँ कि बुद्धि के द्वारा मनुष्य आपत्ति में उपाय, भय में निर्भयता और विष में अमृत पा सकता है। उसके हाथ में आने से ही सब वस्तुएँ उसके संयोग से सुन्दर, उपयोग से वश में, और काम में लाने से सुखकर हो जाती हैं।

## मिथ्या ज्ञान

जिसे एक दिन भूल जाने की आवश्यकता हो ऐसे मिथ्या ज्ञान का सञ्चय करने में समय और श्रम वृथा नष्ट होते हैं। एक प्राचीन अलङ्कार-शास्त्र का अध्यापक, टिमोथीअस्, दूसरों के पास पढ़कर आये हुए विद्यार्थियों से दूनी दक्षिणा लेता था क्योंकि उन्हें केवल शिक्षा ही नहीं देनी होती थी बल्कि पूर्व-पठित मिथ्या ज्ञान को भी उनके हृदय से दूर करना पड़ता था।

## श्रम

यह दीखता है कि श्रम तथा उद्योग का कुछ अंश ईश्वर ने मनुष्य होने के कारण ही हमारे भाग्य में लिख दिया है। "परि-श्रम से रोटी मिलेगी" यह शाप गुप्त रूप से आशीर्वाद हो गया है। इसलिए कुछ भाग्यशाली मनुष्यों को, जो धन या पदवी के कारण सब भाँति के श्रम से मुक्त हैं, इस बात से प्रसन्न नहीं

होना चाहिए। इस आवश्यकता के विचार के कारण हमारे पूर्वजों को यह कहना पड़ा था कि "देवता हमें सब वस्तु बेच देते हैं, पर मुफ़्त में कुछ नहीं देते।" जीवन की आवश्यक वस्तुओं में से जल प्राय: बिना मूल्य मिल सकता है पर यह ठीक कहा गया है कि जो रोटी भी इसी भाँति मिल सकती होती तो यह भय था कि मनुष्य पूरा अवकाश मिलने से दार्शनिक होने के बदले—उद्योग के अभाव के कारण—केवल पशु हो जाते; और यथार्थ में यह विचार ठीक प्रतीत होता है। जिन-जिन देशों में बहुत सी वस्तुएँ स्वयं उत्पन्न होती हैं उनमें मनुष्य बहुत कम काम करते हैं; और जिन-जिन देशों में प्रकृति सबसे कम उत्पन्न करती है वहाँ मानवीय उद्योग पराकाष्ठा को पहुँच जाता है।

## तर्क

तर्क एक ऐसी खान है कि जिसमें अनेक उपयोगी तथा निरुपयोगी शस्त्र हैं, परन्तु बुद्धिमान् मनुष्य दो कारणों से उसकी देख-भाल करेगा—जो काम के होंगे उन शस्त्रों का उपयोग करने के लिए और जो निरुपयोगी होंगे उनके निर्माण के चातुर्य की प्रशंसा करने के लिए।

## बातून होना

मनुष्यों के नेत्र दो हैं पर जीभ एक है। इससे यह आशय है कि वे जितना बोलें उससे दूना उन्हें देखना चाहिए; पर

उनकी चाल से यही समझ में आता है कि उनके दो जीभ और एक नेत्र है; क्योंकि जिन्होंने सबसे कम देखा हो वे सबसे अधिक बोलते हैं और जिन्होंने किसी बात की भी आन्तरिक दशा को न जाना हो वे ही लोग अपने विचार हर एक विषय पर प्रकट कर देते हैं।

## लोभ

हमें धन-तृष्णा से पीछा छुड़ाने के लिए गम्भीरता से यह विचार करना चाहिए कि न तो कितनी ही सर्वोत्तम वस्तुएँ द्रव्य से प्राप्त हो सकती हैं और न कितने ही तीव्र दुःख उससे दूर हो सकते हैं। एथिंस में एक दार्शनिक ने द्रव्यनाश होने पर यह विचार कर धैर्य धारण किया था कि "मेरा धन नष्ट हो गया है, पर उसके साथ ही साथ मेरे मन की चिन्ता भी दूर हो गई है, क्योंकि जब मैं धनी था तब मैं हर एक निर्धन से भयभीत रहता था; पर अब मैं निर्धन हूँ इसलिए प्रत्येक धनी मुझसे भयभीत रहता है।"

## लाभकारी आक्रमण

जिससे भविष्यत् में लाभ होने की सम्भावना हो ऐसा आक्रमण हमें तुरन्त क्षमा कर देना चाहिए। कोई बुद्धिमान् मनुष्य ऐसे मूर्ख को मारने के लिए घर से बाहर नहीं जायगा

जो उसके घर की खिड़कियों को पैसे मार-मारकर तोड़ता होगा।

## महापुरुषों के महल

यदि धनी भद्र-पुरुष बुद्धिमानी से अपने घरों को सजाने के लिए बहुत रुपया ख़र्च करें, उनमें बहुत अच्छी संगमरमर की मूर्तियाँ तथा सर्वोत्तम चित्र रक्खें तो उनकी यह बात सराहने योग्य है पर उनके उत्साह की समाप्ति यहीं न हो जानी चाहिए। उन्हें इतना कष्ट और उठाना चाहिए जिसमें वे—उत्तम गृहों के स्वामी—भी उनके योग्य हों। स्वयं भी उन उत्तम गृहों के अनुकूल योग्यता सम्पादन करने में उन्हें धन व्यय करने से मुख नहीं मोड़ना चाहिए क्योंकि, जहाँ और सब वस्तुएँ उत्तम हैं, ऐसे गृहों में उन्हें स्वयं ही अधम नहीं होना चाहिए। उत्तम घर बहुत से दर्शकों को आकर्षित भले ही करें पर उन्हें ठहरा सकना तो केवल गृहस्वामी का ही काम है।

## गणित

जो मनुष्य अपनी बुद्धि और समय का कुछ भाग गणित के तत्त्व की खोज में लगाता है वह और सब विषयों पर विवाद करने में अपने प्रतिपक्षी पर यथार्थ में जय प्राप्त करेगा। जैसे प्राचीन रोमन लोग युद्ध में विजयी होते थे उसी भाँति यह विवाद में होगा। उनको युद्ध का दिन और दिनों की अपेक्षा

अधिक मनोरञ्जक होता था क्योंकि जिन शस्त्रों से वे लड़ते थे उनसे अधिक भारी शस्त्रों से वे लड़ने का अभ्यास करते थे और उनकी क़वायद यथार्थ युद्ध से दो रीतियों में भिन्न थी— उसमें थकावट अधिक होती थी पर जीत रक्तपात के बिना ही होती थी।

## गणित और तत्त्व-विद्या

गणितशास्त्र जितनी आशा देता है उससे अधिक करके बताता है परन्तु तत्त्व-शास्त्र जितना करके बताता है उससे अधिक आशा देता है। नाइल नदी के समान गणित का आरम्भ तो अति सूक्ष्म होता है पर उसका अन्त बहुत भव्य होता है; पर तत्त्व-शास्त्र का आरम्भ अनेक अलंकारादि के आडम्बर और शब्दों के पूर्ण विस्तार के साथ होता है पर जैसे रेती के मैदान में नाइज़र नदी का पता नहीं चलता उसी भाँति यह भी केवल कल्पना और विवाद में समाप्त हो जाता है।

## विवाह

विवाह एक ऐसा सम्बन्ध है जो दोनों में से एक के जीवन पर्यन्त रहता है और उसका लोप नहीं होता। इस कारण परि-ताप की घोर वेदना से बचने के लिए मनुष्यों को ऐसा सम्बन्ध करने के पहले उसके यथार्थ कारणों को भली भाँति विचार लेना चाहिए। उन्हें किसकी आवश्यकता है? पत्नी की, जो

उनकी वारिस हो सके उसकी, या दाई की ? क्या वे विषय-वासना के, किसी आवश्यकता के, अथवा अपनी दुर्बलता के कारण विवाह करते हैं ? क्या वे पूर्ण सुख का भोग किया चाहते हैं ? ये प्रश्न ऐसे हैं जिनका, सम्बन्ध दृढ़ होने के पहले ही, विचार करना चाहिए; इनका यथार्थ निर्णय कर लेने से, बहुत सी ऐसी निराशाओं की रोक हो सकती है जो बहुधा शोक-जनक और उपहासास्पद तथा सर्वदा अनिवार्य होती हैं। ऐसा हो जाने से न तो हम बहु-व्ययी धूर्तों को ऐसी स्त्रियों के साथ विवाह करते देख सकेंगे कि जिनके पास कुछ व्यय करने को नहीं रहा है और न ऐसे वृद्ध लम्पटों को मनोहर रमणियों का आलिङ्गन करते देख सकेंगे कि जिन्हें एक और फ़लालैन का कोट पहनकर सोना अधिक हितकर और उचित होता।

## स्मरण-शक्ति और विचार-शक्ति

हम मनुष्यों को बार-बार अपनी स्मरण-शक्ति की शिकायत करते सुनते हैं पर विचार-शक्ति की शिकायत किसी से नहीं सुनते ? क्या यह बात है कि उन्हें स्मरण-शक्ति के क्षीण होने से लज्जा नहीं आती क्योंकि उन्होंने यह सुन रक्खा है कि यह न्यूनता तो बड़े-बड़े विद्वानों में होती है ? अथवा क्या इसका यह कारण है कि तीव्र स्मरण-शक्तिवाले मूर्ख जितने सुलभ होते हैं उतने ही क्षीण विचार-शक्ति के समझदार आदमी दुर्लभ होते हैं ?

## मानसिक श्रम

उत्तम कुल में जन्म लेने से मनुष्य सदा उदार-बुद्धि नहीं होते। जो ऐसा हो तो अच्छे कामों में प्रवृत्त करने को यह बात सदा उत्तेजक हो सकती है पर यह कभी-कभी उत्तेजक होने के बदले उलटी अवरोधक हो जाती है। क्योंकि सर्वसाधारण से स्नेह और आदर मिलने के लिए हम मानसिक श्रम करते हैं, पर पदवी तथा उच्च कुल के कारण कुछ मनुष्यों को स्नेह और आदर बिना ही श्रम के मिल जाते हैं जो औरों को श्रम से भी नहीं मिलते; यद्यपि यह बात उनके लिए दुर्भाग्य की है। इसलिए जो मनुष्य कुल में उच्च होते हैं वे बहुधा बुद्धि में नीच होते हैं। इसका कारण योग्यता का अभाव न होकर बहुधा अनुद्योग होता है; क्योंकि मनुष्य-जाति में यह बात स्वाभाविक होती है कि जो वस्तु बिना श्रम प्राप्त हो सके उसके लिए श्रम नहीं करना चाहिए। जो नदी-तट पर जन्म हुआ हो तो कुआँ क्यों खोदना? तथापि जैसे न्यूटन की बुद्धि बिना श्रम के प्रखर थी उसी भाँति बिना रण-शिक्षा के ही तलवार से खेल करनेवाले में कभी-कभी स्नायविक शक्ति की आशा करनी चाहिए।

## नियम

नियम के विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि जो हम इसे अपने वश में रक्खें तो ठीक है; पर जो यह हमें अपने

वश में कर ले तो बहुत बुरा है। एक भद्र पुरुष
एक बार कहा था कि "मैंने प्रतिदिन किसी न किसी
के पचास पृष्ठ पढ़ने का नियम कर लिया है और कभी इनसे
न्यून या अधिक नहीं पढ़ता।" मैंने कुछ कहे बिना ही निश्चय
किया कि यह ऐसा मनुष्य है जिसकी लिखने के योग्य विषय
पढ़ने में रुचि है पर ऐसा नहीं है जिसे स्वयं पढ़ने लायक़ लेख
लिखने की बुद्धि हो।

## जनद्वेष

जब किसी मनुष्य को हम यह कहते सुनें कि सब संसार
दुष्ट है तब समझना चाहिए कि उसको ईर्ष्या के तो नहीं पर
वैर के कारण यह कहना पड़ा है, क्योंकि किसी मनुष्य के
संसार के विषय में ऐसा निर्णय करने के पहले ही प्राय: संसार
उसके विषय में वैसी ही सम्मति बहुत समय पहले निश्चय कर
लेता है। ऐसे मनुष्यों की ब्रदर्स नामक भविष्यवेत्ता के साथ
समानता करनी चाहिए। जब उसके मित्रों ने उससे पागलख़ाने
जाने का कारण पूछा तब उसने कहा था कि "मेरे और संसार
के बीच में कुछ मत-भेद हो गया। संसार ने कहा कि मैं विक्षिप्त
हूँ और मैंने कहा कि संसार विक्षिप्त है। संसार का पक्ष
प्रबल था इसलिए मैं यहाँ आ पड़ा।"

## गुप्त भाव

गुप्त भाव से भय अधिक बढ़ जाता है। जिस हाथ से बेलशाज़ार* का मरण हुआ वह किसी धड़ का नहीं था; यह बात ही उसकी अति भयानक शक्ति का कारण थी; और मृत्यु भी इससे ही भयङ्कर लगती है कि हम उसके विषय में कुछ नहीं जानते।

---

* बेलशाज़ार बैबीलोन का राजा था। उसने एक बार अपने हज़ार सरदारों को भोज दिया और उनके सामने मद्य-पान किया। जब वह मद्य पी रहा था, उसने अपने नौकरों को आज्ञा दी कि "हमारे सरदार आदि जो यहाँ उपस्थित हैं उनके मद्य-पान के लिए वे पात्र ले आओ जो हमारे पिता जेरुशेलम के मन्दिर में से लाये थे।" नौकर उन पात्रों को ले आये और सबने मिलकर उनमें खूब मद्य पिया। उसी समय एक मनुष्य के हाथ की उँगलियाँ दीखीं जिन्होंने दीवट के सामने दीवार पर कुछ लिख दिया। यह देख राजा का चेहरा फीका पड़ गया और उसके छक्के छूट गये। उसने अपने राज्य के जादूगर आदि को बुलवाया और उनसे कहा कि "जो कोई इस लेख को पढ़कर इसका आशय मुझसे कह देगा उसे मैं बहुत पुरस्कार दूँगा।" लेकिन उनमें से कोई भी उस लेख को न पढ़ सका तब तो राजा और भी दुःखी हुआ। तब रानी ने कहा कि "आपके राज्य में एक मनुष्य डैनियल है, उसमें वास्तव में दैवी शक्ति है। अगर उसे आप बुलावेंगे तो वह अवश्य इसे पढ़ सकेगा।" तब डैनियल बुलवाया गया और उसने राजा से कहा कि "परमेश्वर ने आपके पिता को राज्य, महत्त्व, यश तथा गौरव दिया था, जिसके कारण अन्य सब राजा उससे भयभीत रहते थे, क्योंकि वह जो कुछ चाहता कर सकता था। पर उसे बहुत अभिमान हो गया तब वह सिंहासन पर से उतार दिया गया था। आप यद्यपि यह सब बात जानते हैं तो भी आप अभिमान नहीं छोड़ते। अभी आपके नौकर ईश्वर के

# जन-स्वभाव

ग्रीस और रोम की प्राचीन स्थिति की वर्तमान स्थिति के साथ समानता करने से यह तो निःसन्देह सिद्ध होता है कि जन-प्रकृति के विकास के ऊपर राज्य-पद्धति का जितना प्रभाव होता है उतना पृथ्वी, वायु अथवा आब-हवा का नहीं होता। उक्त देशों की प्रजाओं को उनकी प्राचीन राज्य-पद्धति लौटा दो, तो तुरन्त उनका जातीय पराक्रम पुनः प्रदीप्त हो उठेगा और उनमें जल तथा वायु का चाहे जितना परिवर्तन सहन करने की सामर्थ्य भी हो जायगी; पर जल तथा वायु के चाहे जितने परिवर्तन से भी उनके प्राचीन पराक्रम का उनमें कभी उदय नहीं होगा। राज्यपद्धति के परिवर्तन से सम्बन्ध रखने-वाले कारण, यथार्थ रीति से देखे जायँ तो, ऐसे बलवान् होते हैं कि उनसे कभी-कभी सम्पूर्ण प्रजा एक व्यक्ति के समान ही अकस्मात् बदल जाती है। जिन रोम-निवासियों ने अपनी स्वतन्त्रता सीज़र को कुछ काल के उपयोग के लिए भी नहीं

---

मन्दिर के पात्रों को आपके सम्मुख लाये जिनमें आपने मद्य-पान किया पर उसकी कृतज्ञता आपने प्रकाशित नहीं की। इसलिए यह हाथ यहाँ भेजा गया था जो दीवार पर यह लिख गया है कि अब आपके राज्य का अन्तिम समय आ गया। तराज़ू में आपकी तुलना की गई तो आपमें बहुत कमी निकली। आपका राज्य, विभाग करके, मीड और परशियन लोगों को दे दिया गया है।" उसी रात्रि को बेलशाज़ार मार डाला गया।

दी थी उन्होंने उसे नीरो ❀ के अधीन कर दी; और ऐसा ही हमने वर्तमान समय में भी देखा है कि फ्रांस की सम्पूर्ण प्रजा, राज-भक्त होने पर भी, एकमत होकर अत्यन्त नम्र राजा सोलहवें लुई को तो मारने को प्रस्तुत हुई और जिसने उनके रक्तपात और करुण ध्वनि की कुछ परवा नहीं की ऐसे क्रूर राजा नैपोलियन को क्षमा कर और पारितोषिक देकर उसने विश्राम किया। इस भाँति उसने ऐसे मनुष्य को छोड़ कि जिसने अपनी दयालुता में ही अपना जीवन नष्ट कर डाला, ऐसे एक मनुष्य को पारितोषिक दिया कि जो अपनी की हुई हत्याओं का अभिमान से वर्णन कर जीता रहा।

किसी देश की भी प्रजा का चरित्र तब उन्नत होता है जब अन्यत्र विस्तार पाती हुई बड़ी-बड़ी बातों के सामने घर की छोटी-छोटी बातें भुला दी जायँ; पर जब उसकी अन्यत्र विस्तृत बड़ी-बड़ी बातें घर के द्वेष से ढक जायँ तब अधम हो जाता है।

## उदासीनता

संसार में उदासीनता बहुधा सम्भव नहीं होती क्योंकि हमारा स्वभाव ही ऐसा बनाया गया है कि अपने हृदय में उदा-

❀ नीरो रोम का एक सम्राट् था। सन् ३७ ई० में उसका जन्म हुआ और सन् ५४ में वह राज्य-सिंहासन पर बैठा। ३१ वर्ष की उम्र में वह आत्मघात करके मर गया।

सीन रहना कदापि सम्भव नहीं, पर अपने कामों से ऐसा दिखाने का प्रयत्न करना बुद्धिमानी का काम है।

## कुलीनता

कुलीनता एक ऐसी नदी है जो अपने सीधे तथा अस्खलित प्रवाह से एक साथ समय-रूपी शान्त-सागर में गिरती है पर और नदियों के विपरीत उसमें यह विलक्षणता है कि वह अपने मुख की अपेक्षा मूल में अधिक भव्य होती है।

## नूतनता

सालोमन* ने कहा है कि "पृथ्वी पर कोई नई बात नहीं है" इसलिए जितनी नूतन बातें आविष्कार से उत्पन्न हुई हैं उतनी ही विनाश से सम्भव हैं; क्योंकि जिसे हम आविष्कार समझते हैं वह बहुधा पुनरुज्जीवन होता है।

## अप्रसिद्धि

जो मनुष्य अप्रसिद्धि से सन्तुष्ट है वह यद्यपि कीर्तिभाजन नहीं हो सकता तथापि उपद्रव से बच सकता है; और जिसने मौन धारण करना निश्चय कर लिया है वह समालोचकों के

---

* सालोमन जेरुशेलम का राजा था। वह ईसवी सन् के पहले उत्पन्न हुआ था। वह बड़ा चतुर, न्यायी और महात्मा था। तत्त्वशास्त्र का भी उसे अच्छा ज्ञान था।

पूरे समुदाय पर निर्भयता से हँसा करे तो उसकी कोई हानि नहीं, यद्यपि उसके प्रतिपक्षी जोब* के समान यह वृथा भले ही कहें कि "अरे, हमारा शत्रु कोई पुस्तक लिखे तो आनन्द आवे।"

## प्राचीन समय

पहले एक बार मैं सूचना दे चुका हूँ कि प्रत्येक इतिहास-लेखक ने अपने समय को सबसे बुरा बताया है क्योंकि और समय की दुष्टता तो उसको केवल सुनी हुई होती है पर अपने समय की तो देखी और अनुभव की हुई होती है। एक अत्यन्त निपुण उक्ति के ऊपर अकस्मात् मेरा ध्यान आकर्षित हुआ है जिससे कुछ नवीन विचार उत्पन्न होंगे। अतएव अपनी इस सूचना को यहाँ पुनः दुहराता हूँ। एक प्राचीन लेखक ने लिखा है—"यह बात कितनी आश्चर्य-जनक है कि वर्तमान समय में रहनेवाले

* जोब एक प्राचीन हिब्रू काव्य का नायक है। वह बड़ा ईमानदार था और उसके २ पुत्र, ३ कन्यायें तथा बहुत से पशु और नौकर-चाकर थे। जेहोवाह की आज्ञा से शैतान ने उसके बाल-बच्चे और सब धन छीन लिया और वह रोगी हो गया परन्तु उसने धैर्य्य से सब आपत्ति सहन की और उसके ३ मित्रों ने उसे आश्वासन दिया। पुस्तक का अधिक भाग उनकी वक्तृता से ही पूर्ण है। उनकी राय में आपत्ति का कारण दुष्टता और कपट धर्म था। इसका उसने उन्हें उत्तर भी दिया पर फिर ईश्वर स्वयं आया और आकाशवाणी से उसे उत्तर दिया। अंत में जोब विपत्ति से छूटा और १४० वर्ष तक और जिया। इस बार वह पहले से अधिक धनी था और उसके ७ पुत्र और ३ कन्यायें हुईं।

हम लोग जिस भूत समय का अपने पूर्वज तिरस्कार करते थे उसकी निरन्तर प्रशंसा करते हैं, और हमारी संतति जिसकी प्रशंसा करेगी उस वर्तमान समय की निन्दा करते हैं।" यह उक्ति सरस और सत्य है; पर यदि दोनों पक्षों की स्तुति, निन्दा यथार्थ हों तो यह परिणाम हुआ कि वर्तमान समय में संसार इतना बिगड़ गया है कि उसमें रक्षा तथा मनुष्य-समाज की स्थिति बिलकुल असम्भव है। क्योंकि यदि उत्तरोत्तर होनेवाली संतति भूत काल की प्रशंसा और वर्तमान काल की निन्दा करे और उसका कहना यथार्थ हो तो सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य कितने उत्तम होंगे जो वर्तमान समय में बुरे से बुरे अवश्य हो गये हों! यदि प्रथम पक्ष स्वीकार किया जाय तो जो जल-प्रलय हुआ उसकी आवश्यकता नहीं थी, और जो उत्तर पक्ष स्वीकार किया जाय तो जल के स्थान में अग्नि का प्रलय होता तो उससे भी सुधार नहीं हो सकता था; पर क्षण भर तो भी हमको विचार करना चाहिए कि प्राचीन समय के साधारण प्रशंसक कौन हैं? वे प्रायः वृद्ध पुरुषों में पाये जाते हैं और तरुण मनुष्य अनुभवशून्य होने से, जिन्हें अनुभव हो चुका है उनकी, बातें सुन-सुनकर उन पर विश्वास कर लेते हैं। पर वृद्ध अपने यौवन के, निर्बल अपने बल के, रोगी अपनी आरोग्यता के, और निराश अपनी आशा पूर्ण होने के समय की प्रशंसा करें तो क्या यह स्वाभाविक नहीं है? केवल यह बात ही शोचनीय है कि समय तो वैसा ही है पर मनुष्य बदल गये हैं।

## वक्ता

जो वक्ता बहुत कोलाहल के साथ असंख्य शब्द बिना दलील और युक्ति के कह जाते हैं और सबसे अधिक अस्पष्ट व्याख्यान सबसे अधिक उच्च स्वर से देते हैं उन्हें प्रकृति की पुस्तक से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। इसमें बहुधा गर्जना के बिना ही बिजली चमकती है पर गर्जना कभी बिजली बिना नहीं होती।

## वक्तृत्व तथा मुद्रायन्त्र

वक्तृत्व अर्ध-ग्राम्य समय में उत्पन्न होता है और मुद्रायन्त्र से विचार-शक्ति को सहायता मिलती है। जब से वक्ता अपना व्याख्यान प्रसिद्ध करने की मूर्खता करने लगे और पाठक पढ़ने की इच्छा करने में बुद्धिमानी दिखाने लगे तब से ही शब्द-पाण्डित्य की कला का मूल्य घटता गया। आजकल कोई ऐसा सम्राट् नहीं जो एक वक्ता के पुरस्कार में दस सहस्र निवासियों का ग्राम दे दे। प्राचीन समय के मनुष्य लिखने या पढ़ने की अपेक्षा गपशप और सुनना अधिक पसन्द करते थे। इससे वक्ताओं को अपनी योग्यता दिखाने के अधिक प्रसङ्ग मिलते थे क्योंकि शब्दों को जितनी सहायता मुद्रायन्त्र से मिलती है उतनी ही विचारों को जिह्वा से मिलती है; अन्तर केवल इतना है कि जिह्वा से वे झटपट और थोड़े में कह दिये जाते हैं और ये दोनों बातें वक्ता को बहुधा निष्प्रयोजन भी नहीं होतीं। एक प्राचीन वक्ता ने

कहा था कि मेरी सम्मति में लोगों के कान हों तो बुद्धि का न होना ही अच्छा है। इस संसार की सब उत्कृष्ट वस्तुओं में कुछ न कुछ दोष अवश्य होता है और कुछ न कुछ गुण भी होता ही है। मुद्रायन्त्र का दोष यह है कि उससे पाखण्डी मनुष्य हमें वृथा आलस्य में पड़ा रहने देते हैं, और उसके आविष्कार न होने के पहले लाभ यह था कि यदि मूर्ख क्षुद्र विषय पर पुस्तकें लिखते थे तो कोई उनकी नक़ल नहीं करता था, और उनकी अधिक प्रतियाँ करने में इतना परिश्रम और व्यय होता था कि वे उन्हें बाज़ार में नहीं बेच सकते थे। पुस्तक-विक्रेता एक अंश में अश्व-व्यापारियों के समान हैं; जो वे दुष्ट घोड़े को ख़रीदें तो उसे ही बेचते हैं पर दुर्भाग्यवश अश्वव्यापारी घोड़ों की परीक्षा में जितने चतुर होते हैं उतने पुस्तक-विक्रेता पुस्तक के गुण-दोष-विवेचन में नहीं होते और घोड़े का व्यापारी जितनी बुद्धिमानी से उस पर चढ़ता है उसकी अपेक्षा पुस्तक-विक्रेता बहुत कम बुद्धिमानी से पुस्तकों को पढ़ते हैं। हम वक्ताओं का वर्णन करना भूल गये अतएव उसे पुनः आरम्भ करते हैं। जो, डिमास्थनीज़ के समान, हृदय की अपेक्षा बुद्धि पर अधिक प्रभाव डालने का यत्न करता है, मिथ्या-शब्द-चातुर्य की अपेक्षा दलील से समझाता है, जिसके मुख से दृढ़ निश्चय बिना बड़े-बड़े शब्द नहीं निकलते, जो युक्ति द्वारा समझाये बिना किसी विषय पर भी लोगों का विश्वास दृढ़ कराने की कोशिश नहीं करता वह असाधारण वक्ता है और उसे प्रत्येक समय में समान

सफलता होगी। सिसरो के लम्बे-चौड़े और अलंकृत व्याख्यान सुनकर लौटते समय रोम-निवासी आपस में कहा करते थे कि "अहा! हमारे वक्ता ने कैसा उत्तम व्याख्यान दिया है।" पर डिमास्थनीज़ का व्याख्यान सुनने से एथिंसनिवासी प्रस्तुत विषय में ऐसे तन्मय हो जाते थे कि वे वक्ता को बिलकुल भूल-कर शत्रुता का बदला लेने के आवेश में आकर दौड़ते हुए यही कहते थे कि "चलकर फ़िलिप * से लड़ो।"

## पक्ष-नेता

जिसकी पक्ष-नेता होने की इच्छा है उसके लिए अपने प्रति-पक्षियों को तङ्ग करने की अपेक्षा स्वपक्षियों का प्रसन्न रखना अधिक कठिन है। बहुधा मिथ्या और निर्बल कारणों के आधार पर उसे कार्य करना पड़ेगा क्योंकि यथार्थ और दृढ़ कारणों को वह प्रकट नहीं कर सकेगा। धनिक तथा उपाधि-धारी दोषी होंगे तो भी कभी-कभी उसे उनकी तरफ़दारी करनी पड़ेगी और जो यथार्थ उत्साही हीन दशा में होंगे तो उनके दोष-हीन होने पर भी उनसे दूर रहना पड़ेगा। ऐसे क्षण भी उपस्थित होंगे कि जब उसे केवल शूरों के भय के साथ ही नहीं किन्तु बुद्धिमानों की मूर्खता के साथ भी सहानुभूति करनी होगी।

* फ़िलिप मेसीडन का राजा था। जब उसने ग्रीस पर चढ़ाई की तब डिमास्थनीज़ ने ख़ूब व्याख्यान देकर वहाँ के निवासियों को लड़ने के लिए तैयार किया था।

जो बातें प्रत्यक्ष दीखें उनसे अन्धा और जो देखने से न सूझें उनका दर्शक उसे बनना पड़ेगा। अन्य सबसे उच्च होने में इसे अपने से बहुत नीचा होना पड़ेगा क्योंकि सबसे ऊँचे वृक्षों की जड़ सबसे नीची होती है। परन्तु अति सूक्ष्म निरीक्षण बिना इसके अभ्युदय में ही इसका नाश होगा। क्योंकि छिपाकर रक्खी हुई तोप, जो स्पष्ट दीखती हो उसकी अपेक्षा, अधिक नाशकारक होती है अतएव अपने प्रतिपक्षियों के द्वेष की अपेक्षा इसे अपने पक्षियों की गुप्त ईर्ष्या से अधिक सावधान रहना पड़ेगा। ऐसी ईर्ष्या करनेवाले मनुष्य निरन्तर इसके निकट रहेंगे पर यह उन पर अपना सन्देह नहीं प्रकट कर सकेगा। वे उसकी भीतरी परताल करेंगे पर इसने उन्हें देख लिया यह बात इसे नहीं जतानी होगी और जब यह ईर्ष्या का फल पाने के लिए प्रस्तुत हो तब इसे अपनी तैयारी का चिह्न उन्हें नहीं दिखाना होगा और तैयार हुए पीछे उनसे अपनी रक्षा करने में भी अपनी ढाल-तलवार दोनों को छिपा लेना पड़ेगा। एक महापुरुष में से—उसने प्रसङ्गवश जो-जो किया हो, उसे भाग्य से जो कुछ मिला हो तथा अपने मित्रों की बुद्धिमानी और शत्रुओं की मूर्खता से जो कुछ मिला हो—इन सबको निकाल दोगे तो जिसे बड़ा पराक्रमी समझते होगे वह केवल एक निर्बल मनुष्य के समान दीखेगा। वाल्टेअर ने कहा है कि "क्रामवेल * बड़ा भाग्यशाली था जो वह ऐसे

* सन् १६४१ ई० से सन् १६६० ई० तक इँगलैंड में कोई राजा नहीं था। सन् १६५० में क्रामवेल राज्य का रक्षक नियत किया गया था जो

समय रङ्गभूमि पर आया जब लोग राजाओं से व्याकुल हो गये थे पर उसके पुत्र रिचर्ड्स का यह दुर्भाग्य था कि वह उस समय अपना स्वत्व प्रतिपादन करने को उपस्थित हुआ जिस समय प्रजा रक्षकों से व्याकुल हो गई थी।"

## सन्धि

जिस सन्धि के कराने में उसके मध्यस्थ को अधिक पुरस्कार मिला हो वह प्राय: उत्तम नहीं होती। पारितोषिक इसलिए दिया जाता है कि शत्रु के साथ छल किया जाय और सन्धि का सम्पूर्ण लाभ स्पष्ट रीति से अपने ही पक्ष में रहे। ऐसी सन्धि नहीं चलती; उत्तम तो वही सन्धि कही जा सकती है जो सबसे अधिक दृढ़ हो। इस कारण जिस सन्धि में दोनों पक्षों के लाभ समान हों और जिससे दोनों का शुभ सम्भव हो वह सबसे अधिक दृढ़ होती है क्योंकि उससे दोनों पक्षों का भला होता है; नहीं तो शस्त्र धारण करने और उनका उपयोग जानने-वाली प्रजा चर्म-पत्र के लेख से वश में नहीं रह सकती।

## विद्याभिमान

दूसरी भाषा के शब्दों से जो भाव प्रकट किया जाय उसके प्रकट करने के शुद्ध और सरल शब्द यदि अपनी भाषा में मिल

---

सन् १६५८ अर्थात् अपनी मृत्यु होने तक काम करता रहा। उसके बाद उसका पुत्र रिचर्ड्स रक्षक बनाया गया पर सन् १६६० में द्वितीय चार्ल्स फिर राजा हो गया। क्रामवेल ने प्रजा-तन्त्र राज्य स्थापन करने का बड़ा यत्न किया परन्तु उसे इसमें सफलता नहीं हुई।

सकते हों तो ऐसे सरल शब्दों को छोड़ अन्य भाषा के शब्दों को अपनी भाषा में सन्निविष्ट करना मिथ्या विद्याभिमान के सिवा और कुछ नहीं है। क्योंकि अन्य भाषा के शब्दों के मिलाने से अपनी भाषा के शब्दों की हानि होती है इस-लिए जब तक अपनी भाषा के शब्द विश्वास के अयोग्य न पाये जायँ तब तक अन्य भाषा के शब्दों को सन्निविष्ट नहीं करना चाहिए।

## कञ्जूस

साधारण रीति से यह कहा जाता है कि हर एक मूर्ख को धन मिल सकता है; पर ऐसा परामर्श बुद्धिमानों का नहीं होता। यह बात यथार्थ है कि जो ऊपर से आलसी दीखते हों ऐसे लोगों को रुपया मिल जाता है पर वे अपने लाभ के कारण अपने आलस्य का कुछ उपकार नहीं मानते। उनके मुख्य उद्देश्य—धन—के साथ जिस वस्तु का ज़रा भी सम्बन्ध न हो ऐसी हर एक बात में वे मूर्ख दीखते हैं क्योंकि उनकी सब शक्ति केवल एक बात पर ही स्थित हो जाती है। अपने उद्देश्य में वे बहुत बुद्धिमान् होते हैं। यह बात जिन्हें उनसे काम पड़ता हो उनकी समझ में सहज में आ सकती है। यद्यपि साधारण लोग उन्हें छछूँदर के समान अन्धा गिनते हैं तो भी अपना पोला ढेर बनाने में दोनों की पूर्ण रीति से तीक्ष्ण दृष्टि होती है, और अपने नीच और गन्दे काम के लिए

दोनों के, उन्हें अन्धा समझनेवालों की अपेक्षा अधिक अच्छे, नेत्र होते हैं।

## धीरे-धीरे उत्तमता की प्राप्ति

जिस लेखक को अमर होने की आकांक्षा हो और जो लेखनी के परिश्रम को टाँकी के परिश्रम के समान अमर करना चाहता हो उसे शिल्पकार का अनुकरण करना चाहिए। शिल्पकार के समान, वह जो कुछ नित्य जोड़े उससे नहीं पर जो नित्य निकाल बाहर करे उससे, उसे अन्त में पूर्णता को पहुँचना चाहिए; नहीं तो सुन्दर सूर्य-मूर्ति जैसे बिना कटे हुए पत्थर में छिपी रहती है, वैसे ही उसकी सम्पूर्ण शक्ति सामग्री के बहुत से पुञ्ज में दब जायगी। माइकेल एंजिलो* जब एक मूर्ति तैयार कर रहा था, उन्हीं दिनों में उससे एक मित्र मिलने आया और कुछ समय बाद वह फिर मिला। तब भी वह शिल्पकार उसी को बना रहा था। उस मित्र ने मूर्ति को देखकर कहा—"आपसे मैं पहले मिला था तब से तो, मालूम होता है, आपने कुछ नहीं किया।" शिल्पकार ने उत्तर दिया—"क्यों नहीं, मैंने इस भाग पर फिर हाथ फेरा

---

* माइकेल एंजिलो टस्कनी का एक कुलीन था। वह सन् १४७४ ई० में पैदा हुआ था। उसमें अलौकिक योग्यता थी। चित्रकारी और पत्थर की मूर्ति बनाने में वह अद्वितीय था। शरीर-व्यवच्छेद-विद्या का भी उसे पूरा-पूरा ज्ञान था।

है और इसको चिकना किया है, इस स्नायु को कम किया और इसको और बनाया है; इस अधर को अधिक भाव-सूचक किया और इस अवयव को विशेष वीर्यवान् बनाया है।" मित्र ने कहा—"यह तो ठीक है पर ये सब छोटी-छोटी बातें हैं।" एंजिलो ने कहा—"ऐसा भले ही हो पर याद रक्खो कि बहुत सी छोटी-छोटी बातों से ही एक बड़ी बात बनती है और एक बड़ी बात छोटी बात नहीं है।"

## वैद्य

निर्धन वैद्य के धनाढ्य रोगी को आराम करने की अपेक्षा धनाढ्य रोगी निर्धन वैद्य को अधिक अवसरों पर आराम कर देता है; और यह बात ज़रा विरुद्ध दीखती है कि निर्धन वैद्य को शीघ्र फ़ायदा होना धनाढ्य के अधिक समय तक फ़ायदा न होने पर निर्भर है। कितने ही मनुष्य चमत्कार की बात कहते हैं कि वैद्य ने तो हमारे आरोग्य होने से निराश होकर इलाज छोड़ दिया था पर हमें आराम हो गया। लेकिन उनका यह कहना अधिक युक्ति-सङ्गत होता कि हमारा इलाज छोड़ दिया था इस कारण ही हम अच्छे हो गये।

## व्यसन

अपने व्यसनों का ऐसी योग्य रीति से प्रबन्ध करना चाहिए कि जिससे उनमें से एक भी इतना न बढ़ जाय कि

वह और सबका नाश कर दे; इसमें युद्धनेता के समान चातुर्य और रण-कौशल से काम लेना पड़ता है क्योंकि व्यसनों की तृप्ति सहज में नहीं होती और वे एक दूसरे को नष्ट कर देते हैं। उदाहरण की भाँति देखा जाय तो मद्य-पान से हितकर और शुद्ध व्यसन करने की शक्ति क्षीण हो जाती है, जुए से उसके साधनों का नाश हो जाता है और विषय-भोग से उसका आनन्द जाता रहता है।

## कवि

समय के बीतने से उत्तम श्रेणी के कवि को उतना ही लाभ होता है जितना उत्तम वर्ग के चित्रकार को होता है पर दोनों की प्रक्रिया में भेद है। जिन कवियों की कीर्ति उनके काव्यों के कारण स्थापित हो चुकी है और जिनका नाम उनके पीछे के समय में भी लिया जाता है उन्हें योग्यता से अधिक यश मिलता है; और बाइबिल की यह उक्ति कि "जिसका है उसे मिलेगा" उनकी कीर्ति के सम्बन्ध में यथार्थ है। कोई सुन्दर दृश्य जैसे दूर से उत्तम दीखता है वैसे ही सुन्दर काव्य भी कुछ समय के अनन्तर ही वास्तव में अच्छा लगता है। जब किसी सुन्दर नगर को हम उससे दूर के किसी ऊँचे टीले पर से देखते हैं तब हमें उसके गली-कूचे, अन्धी गलियाँ और मलिन झोंपड़े वहाँ से नहीं दीखते; उसके ऊँचे मीनार, सुन्दर कीर्ति-स्तम्भ तथा महलों और मन्दिरों के अतिरिक्त हमें वहाँ

से और कुछ नहीं दीखता। बहुत समय के अनन्तर यदि किसी काव्य की देखभाल की जाय तो वह भी हमको ऐसा ही दीखता है। हमारा सुन्दर वाक्य सुनने का ही अभ्यास पड़ा हुआ है क्योंकि केवल उनकी ही आवृत्ति की जाती है। नीरस और तुच्छ रचना को या तो हम देखते नहीं या याद नहीं रखते। मिल्टन और शेक्सपियर का कोई भी पूरा ग्रन्थ जिसने नहीं पढ़ा ऐसा बालक भी उनके उत्तमोत्तम वाक्य सुना सकता है।

## विनय

कितने ही मनुष्य ऐसे हैं जो यदि कोई उपकार करने में समर्थ न हों तो उसे इस रीति से मना करते हैं कि उससे ही हमें प्रसन्नता होती है; कितने ही ऐसे हैं कि वे उपकार इतनी भद्दी तरह से करते हैं कि जितनी हमें उनके उपकार से प्रसन्नता न हो उससे अधिक उनके उपकार करने की रीति से दुःख होता है। यदि हमारा रूमाल अकस्मात् पृथ्वी पर गिर पड़े और कोई उसे चिमटी से उठाकर दे तो हमें कितना बुरा लगे!

## प्रजा

समुद्र के समान प्रजा भी जब तक कोई विशेष कारण न हो तब तक कदाचित् ही अपनी मर्यादा छोड़ती है, पर यदि उन कारणों का नाश हो जाय तो भी दोनों सबसे अधिक हानि कर सकते हैं।

# अधिकार

जैसे मद्यपान से बड़े बलवान् मनुष्य उन्मत्त हो जाते हैं उसी भाँति अधिकार से सर्वोत्तम मनुष्य भी उन्मत्त हो जाते हैं। किसी मनुष्य को भी इतना बुद्धिमान् या भलामानस नहीं समझना चाहिए कि उसे सब अधिकार सौंप दिया जाय; क्योंकि अधिकार का पात्र होने के लिए उसमें चाहे जितनी योग्यता हो, तो भी जब वह अधिकार उसके पास होगा तब उसके काम का कोई उत्तरदाता नहीं हो सकेगा, क्योंकि वह स्वयं ही अपना उत्तरदाता नहीं हो सकता।

# स्तुति तथा निन्दा

किसी ने बहुत उचित कहा है कि जब लोग हमारी निन्दा करें तब हमें अपने ऊपर, और जब स्तुति करें तब उनके ऊपर सन्देह करना चाहिए। जिस निन्दा के हम पात्र न हों उसका तिरस्कार करने से हममें एक असामान्य सद्गुण समझा जाता है; और इससे भी अधिक उत्तम बात यह है कि जिस स्तुति के हम योग्य हों उसका तिरस्कार करें। पर जो प्रामाणिकता केवल लोकोक्ति के कारण होती है वह उसके बिना जाती रहती है, और जिस सद्गुण को दिखाने के लिए रङ्गभूमि की ओर देखने के लिए संसार की आवश्यकता हो उस पर एकान्त अथवा निर्जन वन में विश्वास नहीं किया जा सकता है।

# बातून

कितने ही बातून अपनी बात इतने सपाटे से कहते हैं और अपने मत-भेद के वर्णन के इतने शौक़ीन होते हैं कि वे शेरीडन* का परिहास और स्विफ़्ट† की व्यंगोक्ति सुनने के लिए भी अपनी बकबक बन्द नहीं करते। जैसे कोई किसी सङ्गतराश की आरी को सारङ्गी के सुन्दर स्वर से बन्द करने की इच्छा करे और उसका प्रयत्न निष्फल हो वैसे ही किसी भलेमानस को इनकी बकबक बन्द करने के यत्न में सफलता नहीं होती। बहुत से मनुष्य ऐसे हैं जो अपनी उस मूर्खता को मौन से ढकी रखते हैं जिसे बातून अपनी बकवाद से प्रकट कर देते हैं। पर वे इतने उदासीन होते हैं कि उनकी बुद्धि को किसी उपाय से उत्तेजन करने का यत्न करना बुझती हुई अग्नि को बरफ़ के चिमटे से सुधारने के समान है। इनके अतिरिक्त एक तीसरी भाँति के मनुष्य होते हैं जिनमें पहली और दूसरी श्रेणी के मनुष्यों का मेल और उनके गुणों का कुछ-कुछ अंश भी होता है। वे मूर्खों के सम्मुख तो बात-

---

* शेरीडन अँगरेज़ी का एक कवि था। सन् १७५१ ई० में वह डबलिन में पैदा हुआ था। उसकी रचना विशेष करके स्वाभाविक तथा सरल हास्य के कारण प्रसिद्ध है।

† स्विफ़्ट अँगरेज़ी का एक बड़ा प्रसिद्ध लेखक और राजनीतिविशारद था। उसका जन्म ३० नवंबर सन् १६६७ को हुआ था। हास्य और व्यंग लिखने में वह अद्वितीय था।

चीत करते हैं पर बुद्धिमानों के सामने चुप रहते हैं। लेकिन यथार्थ बात तो यह है कि उनमें स्वयं कुछ उत्साह नहीं होता और दूसरों में जो हो उसमें उनकी रुचि नहीं होती। ऐसे लोगों के साथ बातचीत जारी रखना बिलकुल असम्भव है।

## समाचार-पत्र

समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता से राज्य में बहुत लाभ होता है। लेकिन उनका स्वेच्छाचारी होना भी उनके नियम-बद्ध होने से उत्तम है, क्योंकि पहले से दोनों पक्ष सुने जा सकते हैं पर दूसरे से नहीं। स्वेच्छाचारी समाचार-पत्र हानिकारक हो सकते हैं पर नियम-बद्ध तो हानिकारक अवश्य हैं क्योंकि उनसे बुद्धिमानी की अपेक्षा मूर्खता का प्रचार अधिक हो सकता है और सत्य की अपेक्षा असत्य प्रबल प्रमाणित हो सकता है। स्वेच्छाचारी समाचार-पत्रों से यह नहीं हो सकता, क्योंकि जब वे विष देते हैं तभी उसका उतार भी बता देते हैं, जो नियम-बद्ध समाचार-पत्रों से नहीं बताया जा सकता। अस्वतन्त्र समाचार-पत्रों से दुगनी हानि होती है। वे केवल यथार्थ मार्ग ही नहीं छिपा रखते हैं, क्योंकि ऐसा हो तो हम एक स्थान पर सीधे-सीधे खड़े रहें, पर दूषित मार्ग बता देते हैं जो कपट से हमारा आकर्षण कर लेता है और वहाँ हमारा नाश हो जाता है।

## गर्व

गर्व प्रायः ठीक हिसाब नहीं करता और मिथ्या विचार कर लेता है। घमण्डी मनुष्य औरों से कुछ दूर रहता है; इतनी दूर रहने से दूसरे उसे बिलकुल तुच्छ दीखते हैं; पर वह यह भूल जाता है कि इस अन्तर के कारण ही दूसरों को वह भी छोटा दीखता है।

## राजाओं में ईमानदारी

ईमानदारी राजाओं का सबसे बड़ा ख़ज़ाना है; क्योंकि इसमें से जितना अधिक दिया जाता है उतना ही यह अधिक दृढ़ होता चला जाता है और देने के साथ ही साथ इनका धन बढ़ता चला जाता है। राजा के मुख से निकली हुई असत्य बात सब प्रजा को उतनी ही हानिकारक होती है जितनी सङ्केत की भ्रान्ति पूरी सेना को। नाविकों को दीप-गृह के समान प्रजा को राजा का वचन है। राजा को अपना वचन पीछे फेरना रोशनी बन्द कर देने के बराबर है। पर अपना वचन देकर पीछे उसका पालन न करना सिर्फ़ रोशनी बन्द कर देने के बराबर ही नहीं है बल्कि झूठी रोशनी दिखाने के बराबर है।

## व्यवसाय का साफल्य

एक व्यवसाय छोड़ दूसरा ग्रहण करने में मनुष्य को कदाचित ही सफलता प्राप्त होती है क्योंकि लोग उसे दूसरे काम

के योग्य नहीं समझते। यह बात नहीं कि यथार्थ में वह योग्य न हो। संसार में लोग ऐसा विचार करते हैं—किसी मनुष्य को एक व्यवसाय में अपनी आयु के प्रथम भाग में भी, कि जब परिश्रम करने की सबसे अधिक शक्ति थी, सफलता प्राप्त न हुई तब उसे दूसरे काम में सफलता पाने की सम्भावना नहीं। पर इसका उत्तर यह है कि मनुष्य का प्रथम व्यवसाय उसके लिए और मनुष्य पसन्द करते हैं पर दूसरा तो वह स्वयं अपने लिए पसन्द करता है; इसलिए प्रथम व्यवसाय में जो निष्फलता हो वह औरों से छिपाकर जो वह अपने दूसरे व्यवसाय पर एकाग्र होकर ध्यान देता हो उससे हो सकती है; और ऐसा होने से उसका उनसे मुक़ाबला करना चाहिए जो दूसरों से ओषधि की सलाह लेकर भोजन केवल अपनी इच्छा से ही करते हैं।

## उपाय

अनेक उपाय, जिनको शेख़चिल्ली के विचार गिनकर हम हँसते हैं, केवल कल्पित गिनकर जिनका तिरस्कार करते हैं, और असम्भव समझ जिनका निषेध करते हैं, जब शुद्ध ज्ञान के प्रभाव से हममें सुधार होगा तब सिद्ध हो जायँगे; उस सुधार से मनुष्य अपनी यथार्थ उपयोगी बातें समझने के योग्य बुद्धिमान् बन जायँगे और स्वार्थ-रहित होकर उनका अनुसरण करेंगे।

# दैव

राजा प्रजा पर राज्य करते हैं और उनके मनोभावों का उन पर प्रभुत्व होता है। पर दैव सबको रद्द कर सकता है और राजाओं के दुर्व्यसन और सद्गुण दोनों में से परमेश्वर की इच्छा सम्पादन करने के साधन उत्पन्न कर सकता है। दृष्टान्त देखा जाय तो आठवें हेनरी* की विषयासक्ति के कारण

* आठवें हेनरी ने अपनी रानी—कैथराइन आफ़ अरागन—का परित्याग करना चाहा और इस कार्य्य के सम्पादन के लिए रोमन कैथोलिक धर्म के नियमों के अनुसार उसने पोप से आज्ञा माँगी। जब पोप ने उसे आज्ञा नहीं दी तब उसने पोप का विरोध किया और अपना यह मत प्रकट किया कि पोप से आज्ञा लेना न्यायसङ्गत नहीं है। इसके बाद उसने अपनी रानी का परित्याग कर दिया। हेनरी की मृत्यु के अनन्तर उसकी पुत्री—एलिज़ाबेथ—राज्यसिंहासन पर बैठी और उसके पिता ने पोप की आज्ञा भङ्ग कर जिस परिवर्तित (प्रोटेस्टेंट) धर्म की नीव डाली थी उसकी उसने और भी पुष्टि की। एलिज़ाबेथ की एक बहन 'मेरी' स्पेन के राजा द्वितीय फ़िलिप को ब्याही गई थी जो बहुधा बीमार रहा करती और जिसके कोई सन्तति होने की आशा नहीं थी। पर वह रोमन कैथोलिक धर्म की कट्टर अनुयायिनी थी इसलिए चाहती थी कि एलिज़ाबेथ का घात करा दिया जाय; पर उसका पति उससे इस बात में सहमत नहीं हुआ; क्योंकि 'मेरी' तो मरने को पड़ी थी और एलिज़ाबेथ के हटने से मेरी स्टुअर्ट-राज्याधिकारिणी होती जो फ़्रांस के राजा से ब्याही गई थी। इससे फ़्रांस और इँगलैंड का मेल हो जाता पर फ़िलिप चाहता था कि 'मेरी' मर जाय तो वह स्वयं एलिज़ाबेथ से अपने साथ विवाह करने के लिए अनुरोध करे जिससे इँगलैंड और स्पेन एक हो जायँ। इसलिए फ़िलिप ने एलिज़ाबेथ के जीवन की रक्षा की जिससे प्रोटेस्टेंट धर्म की पुष्टि हुई।

धर्म-परिवर्तन की नीव डाली गई थी पर स्पेन के दूसरे फ़िलिप के लोभ से उसकी पुष्टि हुई। मेरी ने कैथोलिक धर्म पूर्ण रीति से स्थापन करने के लिए एलिज़ाबेथ का बलिदान कर दिया होता पर उसके पति—फ़िलिप—ने ही उसे इस काम के करने से रोका, क्योंकि एलिज़ाबेथ के मरने से दूसरे फ़्रांसिस को ब्याही गई मेरी स्टूअर्ट-राज्याधिकारिणी होती जिससे ग्रेट ब्रिटन और फ़्रांस का मेल हो जाता और फ़िलिप की—अपना राज्य स्थापन करने की—कामना धूल में मिल जाती। इसका परिणाम यह हुआ कि एलिज़ाबेथ के जीवन की रक्षा की गई और प्रोटेस्टेंट धर्म की पुष्टि हुई।

## दूर-दर्शिनी बुद्धि

औरों से अच्छा होना बुद्धि का चिह्न है पर उस उत्तमता को गुप्त रखने के अवसरों का जानना पहले से भी अधिक बुद्धि का लक्षण है। जब केलीग्युला ने एक व्याख्यान देकर प्रसिद्ध वक्ता डोमिशीअस् के ऊपर कटाक्ष किया तब उसने कुछ उत्तर नहीं दिया और इस क्रूर राजा के अप्रतिहत वाङ्माधुर्य से परास्त हो जाने का आडम्बर दिखाया। जो वह उत्तर देता तो इसे वास्तव में परास्त कर सकता था पर साथ ही साथ मारा भी ज़रूर जाता। इसलिए उसने विजय से जीवन-हानि की अपेक्षा पराजय से जीवन-रक्षा को बुद्धिमानी से स्वीकार किया।

## नामवर आदमी

अधिकांश मनुष्य बुद्धि और परिहास के कुछ अंश के कारण ऐसे समाजों में नाम पा जाते हैं जिनमें उनके हेल-मेल के मनुष्य हों पर जब वे सांसारिक जीवन की रङ्गभूमि पर अपनी छटा दिखाने जाते हैं तब उन्हें सफलता प्राप्त नहीं होती। जो छोटे-छोटे समाजों में बड़े, लेकिन बड़े-बड़े समाजों में छोटे, गिने जायँ, ऐसे मनुष्य मूर्खों के सामने तो विद्या का आडम्बर दिखाते हैं पर विद्वानों के सम्मुख अपने को अज्ञान ही बताते हैं। वेल्स के झरने जैसे ग्रीष्म ऋतु की धूप से सूख जाते हैं उसी भाँति उनकी बुद्धि-शक्ति सर्वसाधारण के सामने नष्ट हो जाती है; और जैसे वे झरने, जब शीत ऋतु में उन्हें कोई देखने नहीं जा सकता तब, बड़े सुन्दर लगते हैं उसी भाँति ऐसे मनुष्य भी दस-पाँच मूर्खों के सामने ख़ूब डींगें हाँकते हैं।

## दण्ड

ईश्वर सद्‌गुण का ही पक्षपात करता है क्योंकि जिसे दण्ड से भय होता है वही दण्ड पाता है और जो दण्ड के योग्य है उसे ही दण्ड से भय होता है।

## विवाद

दो बातों का उचित विचार करने से बहुत से झगड़े रुक सकते हैं। प्रथम तो यह कि हम शुद्ध अर्थ के बदले केवल

शब्दों पर ही तो नहीं झगड़ते; दूसरे, जिस विषय पर विवाद हो रहा हो वह वास्तव में विवाद के योग्य है या नहीं।

## सम्बन्धी

सम्बन्धी हमसे जो कुछ चाहें सबसे अधिक कहते हैं पर वे हमारी सहायता सबसे कम करते हैं। यदि कोई अपरिचित मनुष्य रुपये से सहायता नहीं कर सकता तो कहने-सुनने से हमारा अपमान भी नहीं करता; पर सम्बन्धी तो बहुधा अपने धन के विषय में यथार्थ में लोभी और शिक्षा देने में वास्तव में उदार होते हैं।

## परिताप

शत्रु से बदला लेना हमारे देह का ताप है जिसका उपाय केवल अपने प्रतिपक्षी के शरीर का नाश करना है। इस उपाय से बहुधा प्रत्यागमन (Relapse) हो जाता है जिसे परिताप कहते हैं। यह रोग ताप से अधिक भयङ्कर होता है क्योंकि यह असाध्य है।

## व्यंगोक्ति

व्यंगोक्ति तभी उत्तम गिनी जाती है जब वह अपना काम दुगनी तीक्ष्णता से करे। वह आनन्द उत्पन्न करने की शक्ति का सर्वोत्तम चिह्न है क्योंकि जिस समय मनो-विकार पूरे-पूरे

उत्तेजित हों उस समय बुद्धि के एकाग्र तथा तात्कालिक उपयोग का फल है। जब फ़र्नी में किसी अँगरेज़ यात्री ने वाल्टेअर के सम्मुख हेलर का नाम लिया तब वह उसकी बहुत प्रशंसा करने लगा। यात्री ने कहा—"यह प्रशंसा पक्षपात-रहित दीखती है क्योंकि हेलर ने ते कभी आपकी प्रशंसा नहीं की।" वाल्टेअर ने तत्काल उत्तर दिया—"कोई हानि नहीं, कदाचित् हम दोनों भूलते हों।"

## पश्चात्ताप

पश्चात्ताप के बीज युवावस्था में आनन्द से बोये जाते हैं पर उनका फल वृद्धावस्था में दुःख द्वारा मिलता है।

## अल्प भाषण

यदि पहली मुलाक़ात में कोई मनुष्य न बोले, तो उससे उसकी अगाध शक्ति प्रतीत हो; दूसरी में न बोले तो कदाचित् सावधानता प्रतीत हो, पर जो वह तीसरी में ऐसा करे, तो मैं यही समझूँगा कि वह मन्दबुद्धि है।

## ईश्वराधीनता

किसी बात से असन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। जो हमारे दुःख दूर हो सकें तो यह बात अनुचित है और जो न हो सकें तो व्यर्थ है। सच्चे धार्मिकों के धैर्य का आधार

स्टोइसिज़्म* की अपेक्षा उत्तम होता है। जो-जो होता है उससे वे सन्तुष्ट रहते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि जो बात होती है वह ईश्वर को रुचिकर है और जो ईश्वर की रुचि से होती है वह उत्तमोत्तम है। उनका विश्वास है कि कोई नई बात हमारे लिए नहीं हो सकती और हम ऐसे पिता की रक्षा में हैं कि ऐसा कोई दुःख नहीं होता जो ईश्वराधीनता से पराजित अथवा मृत्यु से शान्त न हो सके।

## प्रत्यपकार

कितने ही विद्वान् प्रत्यपकार के लिङ्ग की कल्पना करते हैं और उसे केवल स्त्री-जाति में ही बताते हैं। परन्तु और अनेक दुर्गुणों के समान यह भी स्त्री-पुरुष दोनों में होता है; तथापि गर्व के नाश अथवा प्रेम में निराश होने से यह बहुधा उत्पन्न होता है इसलिए लोग यह सोचते हैं कि यह स्त्री-जाति के हृदय

---

* स्टोइक् उन दार्शनिकों को कहते हैं जो ज़ीनो के मत के अनुयायी हैं। एथिंस नगर में स्टोआ एक स्थान है जहाँ ज़ीनो शिक्षा दिया करता था इसलिए उसके सम्प्रदाय के तत्त्ववेत्ता स्टोइक् कहलाने लगे और उसके सम्प्रदाय का नाम स्टोइसिज़्म पड़ा। ईसवी सन् के लगभग ३०८ वर्ष पहले ज़ीनो ने इस सम्प्रदाय की नींव डाली। स्टोइसिज़्म के ये सिद्धान्त हैं कि मनुष्य को विषय-भोग से पराङ्मुख होने का यत्न करना चाहिए; सुख या दुःख का उस पर कुछ असर नहीं होना चाहिए; जो कुछ ईश्वर करे उससे बिना किसी शिकायत के सन्तुष्ट रहना चाहिए; और केवल सद्गुण और परोपकार को सर्वोत्तम समझना चाहिए।

में अधिक प्रबलता से रहता है पर जैसे इन दोनों दुर्गुणों के कारण केवल स्त्रियों में ही नहीं होते उसी भाँति इनके कार्य भी केवल उनमें नहीं होते। विचार करने से यथार्थ बात यह समझ में आती है कि पुरुष और स्त्री दोनों अपमान की अपेक्षा हानि को अधिक शीघ्रता से क्षमा कर देंगे और विशेष करके वह हानि भी जब कोई हमारा अपमान करने को नहीं पर अपने लाभ के लिए पहुँचाये। मारगरेट लैम्ब्रम पुरुष का वेष धारण कर ट्वीड नदी को पार करके एलिज़ाबेथ को मारने के लिए इँगलैंड आई। ऐसा वैर-व्रत उसे दो कारणों से ग्रहण करना पड़ा था—(१) अपनी रानी मेरी का मरण, और (२) अपने पति का मेरी की मृत्यु के दुःख से मरण। एलिज़ाबेथ के समीप जाने की कोशिश करने में उसकी एक पिस्तौल गिर पड़ी, जिस पर वह पकड़ी गई और रानी के सामने उपस्थित की गई। तब उसने बड़े साहस से अपने विचार प्रकट किये और कहा कि "जो नियम यह सूचित करता है कि प्रेम-प्रेरित स्त्री के वैर को बल अथवा बुद्धि से कोई रोक नहीं सकता, उसकी सत्यता अनुभव से सिद्ध करने की मुझे आवश्यकता हुई।" महारानी ने इस अवसर पर ऐसा उदाहरण दिखाया कि जो असाधारण था। उसने उस अपराधिनी को अपनी महानु-भावता के कारण क्षमा किया; और इस भाँति उस स्त्री को सर्वोत्तम रीति से यह प्रतीत कराया कि ऐसे कितने ही हानि के प्रसङ्ग होते हैं जिन्हें स्त्री भी क्षमा कर सकती है।

# वात-व्याधि

यद्यपि कभी-कभी किसी कार्य का कल्पित कारणों से ज़रा भी सम्बन्ध नहीं होता तो भी क्षुद्र ममता के कारण हम सब बातों को केवल अपने ही कारणों से उत्पन्न मान लेते हैं। एक बहुत उत्साही और प्रसिद्ध धर्मोपदेशक, जिसकी वाणी बहुत मधुर थी, अपने श्रोताओं में से एक मनुष्य को व्याख्यान के समय बहुत दिन से उपस्थित नहीं देखता था। मतभेद के कारण इसके श्रोताओं में से बैठ तो बहुत से रहे थे पर इसको ऐसा अभ्यास हो गया था कि एक की अनुपस्थिति भी सहज में ताड़ लेता था। एक बार उपदेशक ने अपने लेखक से अति उत्कण्ठा से पूछा—"कृषिकार बी० क्यों नहीं आता? मैंने उसे तीन सप्ताह से यहाँ नहीं देखा है; मेरी राय में उसके यहाँ नहीं आने का कारण सोशिनिअनिज़्म* नहीं है!" लेखक ने कहा—"नहीं, साहब! इससे भी बुरा कारण है।" "सोशिनिअनिज़्म से भी बुरा? तो डीज़्म† होगा?" "नहीं, इससे भी बुरा।" "डीज़्म से भी बुरा? हे ईश्वर, मैं तो नहीं समझता पर एथीस्म ‡ तो नहीं।" "इससे भी बुरा।" "एथीस्म से भी बुरा! असम्भव;

---

* सोशिनिअनिज़्म की क्रिश्चियन धर्म से कितनी ही बातों में एकता नहीं है।

† मूर्ति-पूजा।

‡ नास्तिकता।

एथीस्म से बुरा तो कुछ हो ही नहीं सकता।" "नहीं, साहब ! है, रयूमेटिज़्म* ।"

## उपहास

दया के समान उपहास के पात्र भी हम बिलकुल अकेले नहीं होना चाहते; और हमारे ऊपर लोग दया करते हों या हमारी हँसी करते हों उनमें और लोग आ मिलें तो हमें दुःख नहीं होता और हमारी राय में बोझ आपस में बाँट लेने से भार कम हो जाता है। इस बात के उदाहरण में लिप्ज़िक् की लड़ाई में जो एक भलामानस था उसकी कही हुई ज़रा सी बात बिलकुल ठीक मालूम होती है। सबको याद होगा कि हमारी सरकार ने इस लड़ाई में सहायता के लिए कुछ रण-सामग्री भेजी थी जिसके सेनापति अकस्मात् मर गये। इस सर्व-स्मरणीय युद्ध में फ्रेंच लोगों का पराजय होने के अनन्तर लिप्ज़िक् में देश-देश के सिपाही भाँति-भाँति के हथियार लिये फिरते थे; और वहाँ भाँति-भाँति के सिक्के चलने लगे थे। एक अँगरेज़ी सैनिक, जो उस रण-सामग्री पर नियत था और जिसने दुर्भाग्य से कुछ फ्रांस और जरमनी के सिक्के उठा लिये थे, लिप्ज़िक् के सर्वोत्तम होटल में गया और उसने उसके मालिक से एक शिलिंग दिखाकर पूछा कि "क्या यह सिक्का यहाँ चल

* वात-व्याधि।

जाता है ?" उसने जवाब दिया—"हाँ, जो वस्तु तुम यहाँ से चाहो इस सिक्के से मिल सकती है। आजकल यह सिक्का यहाँ चल रहा है।" भाग्यशाली सैनिक ने ऐसा अवसर पाकर उत्सुकता से सर्वोत्तम भोजन लाने के लिए आज्ञा दी और किसी सङ्कोच या विचार के बिना उसने पेट भरकर ख़ूब खाया। जाते समय अपना एक का एक शिलिंग, जो उसके पास था, वह हिसाब में देने लगा। होटल के मालिक ने इस सिक्के को देख जो आश्चर्य प्रकट किया उसका वर्णन की अपेक्षा अनुभव सुगमता से किया जा सकता है। अन्त में बात खुली। फिर विदित हुआ कि उसे सैनिक से इसके अतिरिक्त और कुछ मिलेगा भी नहीं और इससे उसका बड़ा भारी उपहास भी होगा। इस रीति से जो लाभ हुआ उसे उसने अपने पड़ोसी के साथ बाँट लेना चाहा। वह अपने अभ्यागत को द्वार के आगे ले जाकर उँगली से बताने लगा और बोला—"यह जो होटल सामने दीखता है इसे तुमने देखा ? इसका मालिक मेरा बड़ा शत्रु है। यह बात उसके जाने बिना रहेगी नहीं और ऐसा होने से यह सब गाँव में प्रकट हो जायगी। अब मित्र! बात यह है कि तुमने जो भोजन किया सो बहुत अच्छा किया पर मैं उसके सिवा तुमको पाँच फ़्रैंक* और देता हूँ लेकिन शर्त यह है कि जैसा तुमने आज यहाँ किया वैसा ही कल वहाँ करो।" सिपाही ने दाम

---

* एक फ़्रैंक ९½ पेंस से कुछ ज़ियादा होता है।

लेकर शर्त स्वीकार कर ली। सब दामों को धीरे से जेब में रखने के पीछे उसने मालिक से जाने के लिए आज्ञा माँगी। उस समय उसने ऐसे विनय से सलाम किया जिसमें उसका ज़रा भी अपमान न हो और कहा कि "आपकी इच्छा के अनुसार करने के लिए मैं तैयार हूँ। जो कुछ मुझसे हो सकेगा ज़रूर करूँगा। पर यह मैं आपसे स्पष्ट कहा चाहता हूँ कि उसके साथ मुझे सफलता नहीं होगी क्योंकि उसके साथ मैं ऐसा छल कल ही कर चुका हूँ और उसकी ख़ास भलमनसाहत के कारण ही आज आपको मेरे दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।"

## रोम के पराक्रमी पुरुष

जूलिअस् सीज़र, पाम्पी, ब्रूटस, केटो, एटिकस, लीवी, सिसरो, हारेस, वर्ज़िल, हार्टेन्शीअस्, आगस्टस्, और मारकस वारो ये सब समकालीन थे और एक ही नगर में रहते थे; जब हम यह विचार करते हैं तब हमको ज़रा भी आश्चर्य नहीं होता कि जो नगर ऐसे सुपुत्रों को उत्पन्न कर शिक्षित कर सके उसे सम्पूर्ण संसार का राजा होने का अभिमान और साधारण आपत्ति से दूर होने का गर्व अवश्य होना चाहिए। लेकिन जो लोग विश्वास मात्र से ही किसी बात को स्वीकार नहीं करते, वरन् मनुष्य-प्रकृति की भीतरी परताल करते, और बाह्य चमत्कार से मोहित न होकर वस्तु के सारासार की तुलना

करते हैं वे बुद्धि के ऐसे अलौकिक समागम की उत्पत्ति का कारण मात्र ही देखकर चुप नहीं हो जायँगे किन्तु यह भी पूछेंगे कि जिनके उदाहरण भविष्यत् में इतने शिक्षाप्रद हैं वे ही पुरुष अपनी उपयोगिता और उन्नति से क्यों वञ्चित रहे ? क्योंकि यह तो अवश्य कहा जायगा कि जिस समय रोम में ऐसे-ऐसे विद्वान् थे उसी समय उसमें अत्यन्त भयङ्कर अन्तर्युद्ध होते थे और ऐसे बुद्धि के प्रकाश से उद्दीपित होने के बदले वह जला जाता और शान्त होने के बदले तपता था। रोम के इतिहास की इस समय की बात विचारने से हमको जो निश्चय होता है वह ऐसा नहीं जिससे हमें कुछ आश्वासन हो या जिसे हम अच्छा समझें। मेरी समझ में यह आता है कि उदार बुद्धि का विकास होने के लिए सांसारिक स्वतन्त्रता के सम्पूर्ण अंशों की आवश्यकता है। लेकिन जन-समुदाय इस बात की ज़मानतें नहीं करता कि ऐसे उदार-बुद्धि मनुष्य आज्ञाकारी होने के बदले आज्ञाकारक होने की इच्छा नहीं करेंगे, वहाँ के स्थापित नियमों से परे होने का प्रयत्न नहीं करेंगे और इससे वे उस स्वतन्त्रता का नाश नहीं करेंगे कि केवल जिसके कारण ही वे श्रेष्ठ हो सके थे। बहुधा ऐसे मनुष्य सब वस्तुओं को अपने देश के अधीन करके आरम्भ और देश को अपने अधीन करके कार्य को समाप्त कर देते हैं। उक्त महापुरुषों में से प्रत्येक के चरित्र की हम देख-भाल करें तो मालूम होगा कि हारेस, वर्ज़िल, हार्टेन्शीअस्, वारो और लिवी ये सब लिख रखने के योग्य

कोई काम करने की अपेक्षा पढ़ने योग्य लिखने में अधिक लगे रहते थे। एटिकस, एपिक्युरस का सच्चा शिष्य था और केवल अपने शरीर के सुख और स्वास्थ्य की ओर वह इतना ध्यान रखता था कि उसे औरों के शरीर की कुछ परवा नहीं थी। यद्यपि सिसरो की प्रकृति, विचार और काम दोनों के, उपयोगी थी तथापि यह नहीं कह सकते कि उसके समय में जो हत्याएँ हुईं उनमें यह भी शरीक था। यथार्थ में देखा जाय तो इसमें, इसके मित्र एटिकस के समान, स्वाभाविक प्रसन्नता का एक ऐसा गुण था कि यह अपने विपत्तियों के बीच में भी भली भाँति काल-यापन कर सकता था। अब केवल चार महापुरुषों का वर्णन रह गया है जो वास्तव में अलौकिक सामग्री से बने हुए थे पर उनमें ऐसे परस्पर-विरुद्ध तत्त्वों का मिलाप था कि उनका एकत्र होना, प्रतिकूल धूमकेतुओं की टक्कर के समान, सारे संसार को डावाँडोल कर सकता था। वे चार सीज़र, पाम्पी, ब्रूटस, और केटो थे। सीज़र अपने से अधिक श्रेष्ठता और पाम्पी समान-भाव सहन नहीं कर सकता था। ब्रूटस में यद्यपि स्वयं अधिकार की इच्छा नहीं थी तो भी वह चाहता था कि और कोई भी व्यक्ति अधिकार भोगने के योग्य न हो। रोम की क्षीण अवस्था में प्लेटो* की "रिपब्लिक" की कल्पना सच्ची साबित

---

* प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम 'रिपब्लिक' है। उसमें उसने आदर्श प्रजातन्त्र राज्य का वर्णन किया है कि कैसे मनुष्य स्वार्थपरायणता छोड़ देश की सेवा कर सकते हैं।

करने के लिए केटो ने कम प्रयास किया होता तो वह अपने देश की अधिक रक्षा कर सकता था पर उसने इससे अपने मित्रों को अप्रसन्न किया और शत्रुओं को अधिक उकसाया। केटो स्वतन्त्रता का उग्र रक्षक तथा निर्लोभ था तो भी उसके घमण्डी होने के कारण लोग उसे सीज़र की अपेक्षा कम चाहते थे जो स्वतन्त्रता का नाशक और लोभी होकर भी घमण्डी नहीं था। उत्तम काम में अपनी आत्मा का बलिदान करनेवाले केटो का यही एक दुर्भाग्य था कि वह ऐसे ज़माने में पैदा हुआ था कि जब समय उसकी प्रामाणिकता को सहन नहीं कर सकता था और उसकी ईमानदारी समय को सहन नहीं कर सकती थी।

## राजाश्रय

फल का अनुभव किये बिना ही उसको उत्तेजन देनेवाले राजा के आश्रय से विज्ञान उन्नत होता है या फल के अनुभव करने की समझ और इच्छा होने पर भी लोभ के कारण उसे उत्तेजन न दे ऐसे राजा के आश्रय से? जब अनुभव करने की समझ और उत्तेजन देने की उदारता दोनों किसी राजा में एकत्रित हों तभी लाभ हो सकता है, क्योंकि राज-मुकुट में यही दो मुख्य रत्न हैं जो एक दूसरे को प्रदीप्त करते हैं।

---

केटो ने यही चाहा कि रोम में प्लेटो की कल्पना के अनुसार आदर्श प्रजातन्त्र राज्य स्थापित हो जाय।

## निन्दा

सब गाँवों के लोग तुमसे कहेंगे कि सब संसार में हमारे गाँव के समान निन्दा-पूर्ण और कोई गाँव नहीं पर यथार्थ बात यह है कि सभी गाँव इस दोष के पात्र होते हैं लेकिन कहनेवाला तो जहाँ रहता हो केवल वहाँ का रस्म-रिवाज देखता है। इतिहास-लेखकों का भी यही हाल है। वे अपने समय की दुष्टता के विषय में बहुत से लेख लिखते हैं। वास्तव में तो हर एक समय में दुष्टता होती है लेकिन और समय की दुष्टता तो इतिहास-लेखकों की पढ़ी या सुनी होती है पर अपने समय की तो प्रत्यक्ष देखी और अनुभव की हुई होती है।

## अध्यापक

निर्बल बात के द्वारा बलवान् पक्ष की पुष्टि करने से हम बहुधा उसकी हानि करते हैं। उदाहरण देखो तो प्राचीन अध्यापक, जो कितनी ही बातों में विद्यार्थियों से भी उतरते हुए थे, क्रिश्चियन धर्म के सिद्धान्तों का प्रसिद्ध दार्शनिक अरिस्टाटल के वाक्यों से समर्थन करने से नहीं चूकते थे। तो भी उनके समान ही जो मनुष्य वर्तमान समय की हलकी तोप की मदद को पुरानी भारी तोपें लावे तो उस पर हँसे बिना नहीं रहेंगे।

## विज्ञान

जो रोग असाध्य हैं उनमें जितने मूर्ख वैद्य धन्धे से लगे रहते हैं उतने और किसी में नहीं; और जो विषय विज्ञान में निश्चित

नहीं हो सकता उसके ऊपर जितनी क़लमें घिसी गई हैं उतनी और किसी के नहीं। सत्य को लम्बे-चौड़े स्थान की आवश्यकता नहीं और उसका स्थान जो कूप कल्पना किया गया है वह भी गहराई और सिकुड़ाई के कारण उसके सर्वथा योग्य है। इसलिए ऐसा होता है कि जो विज्ञान अनुभव से सिद्ध होने योग्य होते हैं अथवा जिनमें गिनती से निश्चित होने की सम्भावना होती है वे कभी लम्बे-चौड़े नहीं होते क्योंकि स्पष्टता का संक्षिप्तता के साथ सदा निकट सम्बन्ध होता है, जैसे बिजली सबसे अधिक चमकती है पर वह सबसे अधिक क्षणिक भी है। इसके विपरीत जैसे-जैसे निर्णय कम होता जाता है वैसे-वैसे ही शब्द-समूह बढ़ता जाता है। ग्रहण जाननेवाले को खगोल शास्त्र पढ़ना चाहिए; अथवा जानी हुई वस्तु से अज्ञात का निश्चय करने को गणित समझनी चाहिए; तो भी जिन मूल तत्त्वों से इन दोनों का अगाध ज्ञान प्राप्त होता है वे बहुत संक्षिप्त हैं। पर जब मैं दार्शनिक और तत्त्व-वेत्ताओं की बड़ी-बड़ी पुस्तकों को देखता हूँ तब मेरे चित्त में एक साधारण प्रश्न उठता है "इन दोनों प्रकार के विद्वानों ने ऐसा क्या किया है जो इन दोनों शास्त्रों से अनभिज्ञ मनुष्यों ने इनसे अधिक उत्तम रीति से नहीं किया ?"

## सांप्रदायिक अभिमान

जैसे प्रत्येक व्यक्ति का है उसी भाँति सब प्रजा का है; जो औरों के विषय में सबसे कम जानते हैं वे अपने ऊपर सबसे

अधिक अभिमान करते हैं; क्योंकि अज्ञान और गर्व यह सगे होने पर भी अन्योन्यगामी हैं और एक दूसरे को पैदा करते हैं। चीन देश के मनुष्य यूरोप की शिल्प-विद्या को तुच्छ समझने का आडम्बर करते हैं पर वे एक साधारण घड़ी की मरम्मत भी नहीं कर सकते। जब घड़ी बिगड़ जाती है तब वे कहते हैं कि यह मर गई और उसे जीती हुई से बदल लेते हैं। परशिया के निवासियों का यह विचार है कि सब परदेशी व्यापारी उनके पास उत्तरीय समुद्र के एक ऐसे निर्जन द्वीप से आते हैं जहाँ कोई भी सुन्दर या उत्तम वस्तु उत्पन्न नहीं होती। वे कहते हैं कि अगर वे वस्तुएँ वहाँ मिलती हैं तो क्यों यूरोप के निवासी उन्हें हमसे ख़रीदकर ले जाते हैं? तुर्किस्तान के मनुष्य मक्का या मदीना के पवित्र नगरों को किसी विदेशीय सज्जन के निवास या केवल पाद-न्यास से भी अपवित्र किये जाने की आज्ञा नहीं देंगे; और जापान की डायरो की मूर्ति तो इतनी पवित्र है कि सूर्य को भी उसके उत्तम सिर पर प्रकाश करने की आज्ञा नहीं दी गई है।

## स्वार्थपरता

अरिस्टाटल* ने कहा है कि मनुष्य ऐसा प्राणी है जो स्वभाव से ही जन-समुदाय के सहवास में रहता है; पर उसे

---

* अरिस्टाटल ग्रीस का एक प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता था। इसने प्लेटो के पास विद्याध्ययन किया था। यह सिकन्दर का शिक्षक था।

यह और कहना चाहिए था कि वह स्वार्थी भी है। पराक्रम, आत्म-संयम और उदारता, जहाँ धर्म-बुद्धि से पैदा नहीं होते वहाँ, एक भाँति के स्वार्थ का अन्य भाँति के स्वार्थ की न्यौछावर कर देने का आश्रय होते हैं। मेरी राय में यह एडम् स्मिथ ने कहा है कि यदि यूरोप में कोई मनुष्य रात्रि को इस निश्चय के साथ सोवे कि कल दोपहर को सब चीन देश का भूकम्प से नाश हो जायगा तो इस विचार से उसकी निद्रा में इतना विघ्न भी न होगा जितना कि इस निश्चय से होता कि उस समय उसकी एक उँगली भी कट जायगी। यह मनुष्य-प्रकृति का एक नियम दीखता है जो शायद हमारी रक्षा के लिए ही बनाया गया है कि अपनी साधारण आपत्ति भी हमें औरों की बड़ी आपत्तियों की अपेक्षा अधिक पीड़ा देती है; पर वह ऐसी होनी चाहिए जिसे हम रोक न सकते हों और जिसके ऊपर मनुष्य का कोई अधिकार न हो; क्योंकि कदाचित् ऐसा तो कोई भी मनुष्य न होगा जो चीन देश के बचाने के लिए एक उँगली के नाश पर भी राज़ी न हो। यह कहा गया है कि जब कोई अत्यन्त मर्मभेदी करुणान्त नाटक हो रहा हो उसी समय नाट्य-शाला के द्वार पर किसी राज-द्रोही को फाँसी पर लटकाना हो तो पूरी रङ्गभूमि ख़ाली हो जायगी। इससे यह स्पष्ट समझ में आ जायगा कि मनुष्यों को कृत्रिम की अपेक्षा वास्तविक दुःख का दर्शन अधिक हृदयङ्गम होता है। पर ऐसे प्रयोग का यथार्थ परि-

णाम यह होगा कि बहुत से दर्शक तो अपना स्थान छोड़-छोड़कर बाहर आ जायँगे पर बहुत से अपने स्थान से सरकेंगे भी नहीं। इसका कारण यह है कि एक ओर विषय-भोग की और दूसरी ओर विपत्ति की पराकाष्ठा से मनुष्यों का हृदय बहुत कठिन हो जाता है; पर मध्यम श्रेणी के मनुष्य इन दोनों सीमाओं के समान अन्तर पर होते हैं इसलिए उनमें ही दया, प्रेम और मनुष्य-स्वभाव की उदार वृत्तियों के अङ्कुर सहज में उग सकते और बढ़ सकते हैं। लेकिन यदि मेरी कल्पना के अनुसार कदाचित् सम्पूर्ण नाट्य-गृह ख़ाली हो जाय तो भी हमको यह निश्चय नहीं करना चाहिए कि हम केवल अपने सुख से ही नहीं पर दूसरों के दुःख से भी सुखी होते हैं। क्योंकि कितने ही मनुष्यों का जैसा आचरण सहानुभूति से होता है वैसा ही बहुतों का मूर्खता से होता है; और परिणाम समान होने पर भी उसके कारण विरुद्ध होते हैं। एक मनुष्य बहुत दूर से एक खाड़ी को पार करके पेरिस में फाँसी देखने गया तो यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें करुणा नहीं थी। पर एक स्त्री जो बरसात में सात मील तक फाँसी देखने गई, और दोषी को दण्ड देने में कुछ दिन का विलम्ब किया गया इसलिए रोती और हा हा करती घर लौट आई उसमें तो वास्तव में दया और परोपकार का अभाव कहा जा सकता है।

# आत्म-संयम

जब मैं लोगों को गम्भीरता से यह कहते सुनता हूँ कि हमने अमुक अयोग्य भोग का त्याग करने के लिए मन से विचार कर लिया है तब बार-बार मेरा यह विचार होता है कि उन्होंने मन के साथ शरीर से भी विचार कर लिया होता तो अच्छा होता। फ़ालस्टाफ़* भोजन के समय योगी के समान मिताहारी और युद्ध के समय वीर के समान पराक्रमी हो सकता था जो वह पहली बात में केवल पेट की, और दूसरी में चरणों की अनुमति ले सका होता। जो ऐश्वर्य भोगना चाहे उसे उत्तम नियमवाले मन का नियमित शरीर के साथ संयोग करना चाहिए; क्योंकि शरीर और मन दोनों में, स्त्री-पुरुषों के समान, बहुधा दुर्बल बलवान् को वश में कर लेता है; यद्यपि गृह-कार्य-निर्वाह और नीति में सब बातें तब भी ठीक होती हैं जब दोनों में से एक भी अनुचित रीति से बर्ताव न करे और दोनों एकमत हों।

# ममता

अपने बुरे कामों के अच्छे कारण ढूँढ़ने में हम उतने ही चतुर होते हैं जितने औरों के अच्छे कामों के बुरे कारण ढूँढ़ने में होते हैं। मैं यह पहले लिख चुका हूँ कि ममता की अपेक्षा

* फ़ालस्टाफ़ कवि-शिरोमणि शेक्सपियर के "मेरी वाइव्ज़ आफ़ विंडसर" और "चतुर्थ हेनरी" नामक नाटकों में एक नाटक-पात्र है। दोनों में वह स्थूल, विषयी, डरपोक तथा सर्वभक्षी दिखाया गया है।

और किसी ठग ने न तो इतने रूप धरे हैं और न स्वयं अपने ही रूप से इतना कोई शरमाता है। ममता के कारण लोग बड़े नीच काम कर बैठते हैं और ख़ूब उत्कोच लेते हैं। सर राबर्ट वाल-पोल की एक कहानी इस प्रसङ्ग के इतनी अधिक अनुकूल है कि उसे यहाँ लिखे बिना मैं नहीं रह सकता; क्योंकि सब पाठक उसे यहाँ बहुत उपयुक्त समझेंगे, और कितनों ही के लिए वह नई होगी। सर राबर्ट को हाउस आफ़् कामंस में एक बात स्वीकार करानी थी। इसकी अपेक्षा और कोई राज्य की दो बड़ी-बड़ी गुप्त बातें भली भाँति नहीं समझता था—राजा की शक्ति और सिद्धान्तानुसार व्यवहार का अभाव। उक्त बात की चर्चा होने के एक दिन पहले उसे अकस्मात् एक सभासद मिला जो विवाद की सत्यता या न्यायपुरःसरता की अपेक्षा उसका वज़न और योग्यता अधिक विचारता था। सर राबर्ट उसे एक ओर ले गया और बिना कुछ विचारे एकदम उसके हाथ में एक हज़ार पाउंड के नोट देकर बोला कि "मुझे अमुक दिन आपके मत और रोब-दाब की आवश्यकता है।" इस पर अरिस्टाइडीज़् * ने उत्तर दिया कि "सर राबर्ट! आपने बहुत से ऐसे अवसरों पर मुझसे मित्रभाव सूचित किया है कि जब

---

* अरिस्टाइडीज़् ग्रीस का एक राजनीति-विशारद था। ईसवी स के ४९० वर्ष पहले जो मराटन का युद्ध हुआ था उसमें दस सेना-पतियों में से यह भी एक था। दूसरे वर्ष यह राज्य में एक अच्छे पद पर नियत हुआ और बहुत लोक-प्रिय हो गया। पर थेमिस्टाक्लीस

मेरा लाभ और प्रतिष्ठा दोनों संशय में थे। मैंने सुना है कि हाल में मेरी पत्नी की जो दरबार में असाधारण प्रतिष्ठा हुई वह केवल आपके अनुग्रह का परिणाम है। इसलिए—" ऐसे कहते हुए नोट को अपनी जेब में रख फिर कहने लगा—"जो आपको इस अवसर पर मैं अपने मत और दबदबे का लाभ न दे सकूँ तो मैं अपने को केवल कृतघ्न राक्षस समझूँगा।" यों कहकर दोनों चले गये। सर राबर्ट को जन-स्वभाव के इतिहास में एक नवीन वार्ता देख आश्चर्य हुआ और वह सभासद यथार्थ लालच के काम को अपने वचन-चातुर्य से प्रत्युपकार का कार्य बना देने से जितना प्रसन्न था उतना सर राबर्ट की क़ीमती दलील से न था।

## शेक्सपियर, बटलर और बेकन

शेक्सपियर, बटलर* और बेकन ने अपने पीछे होनेवालों के लिए उत्कृष्ट, सरस और गम्भीर होना बहुत कठिन कर दिया है।

---

इससे ईर्ष्या करने लगा जिससे ईसवी सन् के लगभग ४८३ वर्ष पहले इसे देश-निर्वासन का दण्ड दिया गया परन्तु ३ वर्ष के अनन्तर जब ज़र्क-सीस् ने ग्रीस पर बड़ी सेना सहित आक्रमण किया तब यह फिर बुला लिया गया और थेमिस्टाक्लीस ने इसे अपना विश्वास-पात्र बनाया। ईसवी सन् के ४७९ वर्ष पहले जो प्लेटिया की लड़ाई हुई उसमें यह सेनापति बनाया गया और इसकी सहायता से ही उसमें विजय हुआ। यह वृद्ध होकर ईसवी सन् के ४६८ वर्ष पहले मृत्यु को प्राप्त हुआ। मरते समय इतना निर्धन था कि चन्दे से इसकी अन्त्येष्टि क्रिया की गई थी। यह इतना प्रामाणिक था कि इसकी ईमानदारी लोक-प्रसिद्ध हो गई है।

* बटलर हास्य और व्यङ्ग का बहुत प्रसिद्ध लेखक था।

## मौन

जब तुम्हें कुछ कहना न हो तब कुछ मत कहो। निर्बल उत्तर से तुम्हारा प्रतिपक्षी दृढ़ होता है इसलिए निर्बल उत्तर की अपेक्षा मौन कम हानिकारक है।

## जन-समुदाय

धूप-छाया के रेशमी कपड़े के समान जन-समुदाय को हमें सब स्थितियों में देखना-भालना चाहिए, नहीं तो उसके रङ्गों से हमें भ्रम हो जायगा। गोल्डस्मिथ* ने लिखा है कि जो

---

* गोल्डस्मिथ का जन्म १० नवम्बर सन् १७२८ को आयरलैंड में हुआ। सन् १७४५ में वह ट्रिनिटी कालेज, डबलिन में भरती हो गया पर सन् १७४९ में पिता की मृत्यु होने से उसने बी० ए० पास करके कालेज छोड़ दिया। इसके बाद वह एक कुटुम्ब का अध्यापक नियत हुआ; पर उस कुटुम्ब के मालिक से ताश खेलते समय कुछ झगड़ा हो गया जिससे उसने वह नौकरी छोड़ दी। तब उसके चाचा ने, डबलिन जाकर क़ानून पढ़ने के लिए, ५० पौंड दिये पर उन्हें वह रास्ते में ही जुए में हार गया। उसके चाचा ने फिर वैद्यक पढ़ने के लिए एडिनबरा जाने को उसे रुपया दिया। वहाँ वह १० मास रहा और उसने रसायन-शास्त्र का कुछ ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद उसने इधर-उधर बहुत यात्रा की पर जब जेब में सिर्फ़ थोड़े से पैसे रह गये तब वह सन् १७५६ में लंदन को लौट आया। वहाँ वह कुछ काल तक दवाख़ाने में नौकर रहा, फिर उसने स्वयं वैद्यक करना आरम्भ कर दिया, फिर वह किसी छापेख़ाने में प्रूफ़-संशोधक हो गया पर अन्त में वह साहित्य की ओर झुका। उसने कई ग्रन्थ लिखे पर सन् १७७० में "ऊजड़ ग्राम" के छपने से उसका बड़ा

मनुष्य यूरप की पैदल यात्रा कर सब स्थानों को भली भाँति देखे भाले उसका निर्णय उससे बिलकुल भिन्न होगा जो गाड़ी में बैठकर देश भर में फिरा हो। तत्त्व-वेत्ता जन-स्वभाव की पर-ताल करने में अपनी स्थिति को अनेक अवस्थान्तर से देखेगा कि जिससे दृश्य वस्तु को देखने के लिए उसे बहुत से दृष्टि-बिन्दु मिलें। एक ओर वह जन-स्वभाव को शिष्टाचार की रीति-रस्म और मर्यादा में देखेगा और दूसरी ओर वनवासियों की निरा-चार स्वतन्त्रता में देखेगा। वह बड़े आदमियों के साथ दासत्व का आचार किये बिना और नीच मनुष्यों के साथ नीचता बिना हेल-मेल रख सकेगा। सारांश यह है कि संसार में वह सबसे यथारुचि सम्बन्ध रक्खेगा; पर न तो नीच पद के मनुष्यों से वह यह कहेगा कि मैं उच्च पद का हूँ और न उच्च पदवालों से यह कहेगा कि मैं नीच पद का हूँ।

## बोलना, पढ़ना और लिखना

लार्ड बेकन ने लिखा है कि "बात-चीत करने से मनुष्य प्रत्युत्पन्न हो जाता है, पढ़ने से बहुश्रुत हो जाता है और लिखने से वस्तुमात्र की यथार्थता उसकी समझ में आ जाती है।" इसमें पहली बात कदाचित् सत्य है क्योंकि जिसे कुछ कहना नहीं होता वही प्राय: सबसे अधिक बोलने के लिए

---

नाम हुआ। मरते समय उदारता और अविवेक के कारण वह निर्धन हो गया था। ४ एप्रिल, सन् १७७४ को लंदन में उसकी मृत्यु हुई।

तैयार रहता है। पर पढ़ने से मनुष्य सदा बहुश्रुत हो यह ठीक नहीं; क्योंकि कितने ही मनुष्यों की स्मरण-शक्तियों में कुछ टिक नहीं सकता। कितनों ही की स्मरण-शक्ति में काम की बात एक नहीं रहती पर व्यर्थ बातें भरी रहती हैं; ऐसे मनुष्य बहुश्रुत तो होंगे पर उनमें उदासीनता का दोष भी होगा, इसी भाँति लिखने से भी वैसा परिणाम सर्वदा नहीं होता। जो ऐसा होगा तो हमारे कितने ही बड़े-बड़े ऐसे ग्रन्थकार भी वस्तुमात्र की यथार्थता जानने का दावा करने को तैयार हो जायँगे कि जिनके लेखों को उनके पाठक ही वास्तव में शुद्ध कर सकते हैं। पर यदि बुद्धि से धन का मुक़ाबिला किया जायगा तो हम यही कहेंगे कि मनुष्य की बोल-चाल से हम इतनी अटकल लगा सकते हैं कि उसके पास कितना रुपया तैयार है; उसके पढ़ने से यह अनुमान कर सकते हैं कि उसने कितना रुपया इकट्ठा कर लिया है, और उसके लेख से यह जान सकते हैं कि वह अपने धनी के ऊपर कितने की हुण्डी लिख सकता है।

## अपव्ययी

यदि कुछ मनुष्य अपने धन का आधा भाग दूसरे आधे को किस भाँति ख़र्च करें यह समझने की शिक्षा में लगावें, तब उसे बहुत उत्तम मार्ग में लगाया हुआ कह सकते हैं। जो मनुष्य बड़ी-बड़ी दो सम्पत्तियाँ उड़ा दे, जान-बूझकर दो बार सङ्कट में पड़े और अन्त में भीख माँगता-माँगता मर

जाय, वह दया योग्य नहीं होता। उसे सङ्कट से अनुभव नहीं हुआ और ख़ाली बैठे रहने से परिताप नहीं हुआ। वह मनुष्य अपने पूरे जीवन में भोगे बिना ही लक्ष्मी की निन्दा करता रहा है, और बुद्धि को पाये बिना ही ख़रीदता है।

## मधुरता

धन से हम दूसरों के साथ उपकार करने में समर्थ तो होते हैं; पर योग्यता और मधुरता से उपकार कर सकने के लिए जिस बात की आवश्यकता है वह धन से नहीं मिल सकती। तुच्छ वस्तु भी ऐसी रीति से दी जा सकती है कि जिसमें वह बड़ी भारी गिनी जाय। मिगारा के निवासियों ने अपने नगर का राज्य सिकन्दर को समर्पण किया। इस पर संसार-विजयी सिकन्दर को हँसी आई, पर जब उन्होंने कहा कि "हमने सिवा आपके और हर्क्यूलिस* के अपना राज्य अब तक और किसी को अर्पण नहीं किया" तब उसने बहुत प्रसन्नता से उसे स्वीकार किया।

## जय अथवा पराजय

परिणाम से निर्णय करने की भूल का सब तिरस्कार करते हैं और सब उसे करते हैं, क्योंकि प्रत्येक उदाहरण में साहस का परिणाम जय हो तो उसे पराक्रम कहते हैं और पराजय हो तो उसे अविवेक कहते हैं। साउंड नामक खाड़ी में जब

* हर्क्यूलिस ग्रीस का एक बड़ा पराक्रमी पुरुष था।

नेलसन लड़ा तब केवल परिणाम से ही यह निश्चय हो सका था कि या तो यह राज-दरबार में जाकर राजहस्त का चुम्बन करेगा या सांग्रामिक न्यायालय से दण्ड पावेगा।

## अल्पज्ञता

तुम जिन्हें समझते हो उन विषयों में कोई मनुष्य अत्यन्त अज्ञान हो तो उन बातों पर, जो उसकी शक्ति में हों, विचार करके तुम्हें उसके विषय में निर्णय करना चाहिए।

## सन्देह

तुमको जिसके साथ मेल करे बिना न बने उसकी ईमानदारी पर तुम्हें सन्देह हो जाय और उसके मित्र हों और तुम्हारे न हों तो उसके साथ संसर्ग नहीं करना चाहिए। जो तुम उससे व्यवहार रक्खोगे तो उसमें बड़ा भय रहेगा क्योंकि वह तो दो और तुम अकेले हो।

## मौन

यह ठीक कहा गया है कि जीभ से मन और शरीर दोनों की स्थिति की परीक्षा हो सकती है। पर तत्त्ववेत्ता या चिकित्सक के यह निश्चय करने के पहले रोगी को अपना मुख अवश्य खोलना चाहिए। कितने ही मनुष्य ऐसे गाढ़ मौन में डूबे रहते हैं कि उनके मन के विषय में हम कोई अटकल नहीं लगा सकते। जो वे मूर्ख हों तो ऐसा मौन यथार्थ में बहुत

अच्छा है पर जो बुद्धिमान् हों तो यह मूर्खता है; इसलिए ऐसे मौनी पुरुषों के विषय में निर्णय करने का सर्वोत्तम मार्ग यही है कि वे कब, कहाँ और कैसे मुसकुराते हैं इसका अवलोकन किया जाय। किसी छोटी बात पर हँसने की अपेक्षा अच्छी बात पर गम्भीर रहने से अधिक मूर्खता सूचित होती है। और अनेक भाँति के अज्ञान में से मौन सबसे कम लाभ-कारक है क्योंकि बातून यद्यपि नया विषय आरम्भ नहीं कर सकते तो भी उसका प्रस्ताव तो कर सकते हैं।

## बुद्धि और धन

संसार की विषमता प्रत्यक्ष बात है। इसे हम किसी भाँति भी दूर नहीं कर सकते। इस प्रत्यक्ष विषमता के ४ कारण हैं—१ बल, २ बुद्धि, ३ धन और ४ पदवी। इनमें पहली दो से प्रकृति की अत्यन्त ग्राम्य अवस्था में, और दूसरी दोनों से कुछ अंशों में सुधरी और सभ्य मण्डली में विषमता होती है। कदाचित् यह चारों अन्त में अधिकार में ही मिलाई जा सकती हैं। लेकिन ऐसे अधिकार का वास्तविक लक्षण समझने में मनुष्य का असमर्थ होना बहुत सम्भव है। दृष्टान्त चाहो तो बुद्धि की अपेक्षा पदवी और धन को पसन्द करना जितना साधारण है उतना और कुछ नहीं, तथापि इससे अधिक असङ्गत भी और कुछ नहीं है। धन की अपेक्षा बुद्धि उत्तम प्रकार का अधिकार है यह बात अनेक भाँति से

सिद्ध की जा सकती है, क्योंकि वह इतनी अधिक अहार्य, अनाश्य, विकार-रहित और नियमित है; पर बुद्धि की धन से बढ़कर उत्कृष्टता तो इससे ही समझ में आ जायगी कि—सबसे शुद्ध राज्य में बुद्धि का प्रभाव सबसे अधिक होगा; और जो सबसे अधिक दूषित राज्य है उसमें धन का प्रभाव सबसे अधिक होगा। इसलिए बुद्धि के गौरव से हम राज्य की निर्दोषता और शक्ति का निर्णय कर सकते हैं और धन की अधिकता से उसकी मति-क्षीणता और अधोगति समझ सकते हैं। पदवी की अपेक्षा बुद्धि से अधिक उत्तमता प्राप्त हो सकती है यह अनेक प्रकार से सिद्ध हो सकता है और विशेष करके इस विचार से सिद्ध होता भी है कि बहुत से मनुष्य अपनी पदवी के लिए यथार्थ में अपनी बुद्धि का उपकार मानते हैं पर आज तक किसी ने अपनी बुद्धि के लिए अपनी पदवी का उपकार नहीं माना। जब लिओनार्डो डी वींसी मर गया तब उसके राजा ने कहा कि "मैं सहस्रों लार्ड बना सकता हूँ पर एक लिओनार्डो मुझसे नहीं बन सकता।" ऐसे ही सिसरो ने एक भ्रष्ट कुलीन से कहा था कि "मैं अपने कुल में प्रथम हूँ, पर तुम तो अपने कुल में अंतिम हो।" और तब से जो लोग केवल अपने कुल का ही अभिमान रखते हैं उनकी आलुओं के साथ समानता करने का अभ्यास पड़ गया है; उनमें जो अच्छापन है वह सब पृथ्वी के अन्दर है; कुलीनों को उनके लिए नीचे

उतरना चाहिए क्योंकि वे उनसे मिलने को ऊपर नहीं उठ सकते।

## बुद्धि का सर्वदा सफल न होना

बड़े-बड़े उत्तम गुणोंवाले मनुष्यों को भी जीवन में सर्वदा सफलता प्राप्त नहीं होती; पर इसका दोष प्रायः औरों में नहीं, उनमें ही होता है। जहाज़ का सब सामान ठीक हो, पाल और तोपें तैयार हों; पर जो उसमें जहाज़ को सीधा रखने का भार और कर्ण न हों तो न वह भली भाँति लड़ सकता है और न शीघ्रता से भाग सकता है; और कम दृढ़, पर अधिक वश में रहे ऐसे जहाज़ से उसे परास्त होना पड़ता है। मनुष्य का भी यही नियम है। उसमें बुद्धि और चतुरता दोनों हों पर जो कहाँ, क्यों और कैसे उनका प्रयोग किया जाय यह बतानेवाली दूरदर्शिता और विवेक न हों तो उसे जहाँ कुछ मिलने को न हो वहाँ विजय प्राप्त हो और जहाँ सर्वनाश होने को हो वहाँ उसकी हार हो; उसकी अपेक्षा कम चतुर, पर अधिक परिवर्तनशील मनुष्य, जिसका हर एक विषय में समान बल हो, अधिक सफलता प्राप्त कर सकता है। जो निराशा से दुखी होकर यह समझते हैं कि हमारे गुण की किसी ने परीक्षा नहीं की वे प्रायः अपना इतिहास लिखकर छोड़ जाते हैं, पर अपने दुर्भाग्य का इतिहास लिखकर वे केवल अपनी भूलें ही समझाते हैं; और अपने संरक्षकों को अन्धा बताकर उन्हें विचारवान् सिद्ध

कर देते हैं। क्योंकि उन्हें कुछ न दीखा हो यह बात नहीं पर बहुधा जो देखना चाहिए उससे भी अधिक वे देख लेते हैं; क्योंकि दूसरे दरजे के कामों के आधार पर पहले दरजे का पारितोषिक माँगने का आडम्बर बहुधा किया जाता है। निराश हुए मनुष्य एक आश्रयदाता के अन्याय या दूसरे के अनुपकार पर हम करुणा करें इस बात की कोशिश में जो स्वाभिमान उनमें होता है उसे स्वीकार नहीं करते और ज्ञान-पुरःसर विराग उनमें न हो उसे धारण कर लेते हैं और इससे हमें केवल हँसाते हैं।

## धमकानेवाले

जो लोग सबसे अधिक धमकाते हैं वे उसका सबसे कम निर्वाह करते हैं। सुरङ्ग खोदते समय, जिसमें सबसे अधिक हानि हो उसमें सबसे कम शब्द होता है, और यदि हम बिजली का विचार करें तो यह बात सम्भव है कि जो उससे मरते हैं वे उसका शब्द नहीं सुनते; पर पीछे से जो बड़ी गर्जना होती है, जिससे मूर्ख लोग बहुत डरते हैं, वह वास्तव में निर्भयता का चिह्न है।

## समय

समय सबसे अधिक अवर्ण्य वस्तु होने पर भी विरुद्ध भावमय है; भूत तो चला गया; भविष्य आया नहीं; और वर्तमान

के वर्णन का जब तक हम प्रयत्न करें उसके पहले ही वह भूत हो जाता है और बिजली की चमक के समान दिखाई देकर लुप्त हो जाता है। समय सबका परिमाण-निरूपक है पर स्वयं परिमाण-रहित है; यह सबको प्रकट करता है पर स्वयं अप्रकट है। दिशाओं के समान यह भी अगम्य है क्योंकि इसका अन्त नहीं और जो इसका अन्त होता तो यह उनसे भी अधिक अगम्य होता। यह मूल में नाइल और अंत में नाइज़र नदी की अपेक्षा अधिक गहन है और धीरे-धीरे चढ़ती हुई धारा के समान बढ़ता है पर बहुत शीघ्र-गामी प्रवाह के समान जाता रहता है। यह सुख के बिजली के पङ्ख लगाता है पर दुःख के पैर सीसे के बना देता है; आशा को अटका देता है पर भोग को क्षणभर में नष्ट कर देता है। यह कान्तिरूपी कामिनी के लावण्य को चुरा लेता है जो केवल चित्र में ही रह जाता है, गुणी मनुष्यों का कीर्ति-स्तम्भ बना देता है पर उन्हें रहने को घर नहीं देता; यह असत्य का क्षणिक और कपटी ख़ुशामदी है पर सत्य का परीक्षित तथा विश्वासपात्र मित्र है। समय सबसे अधिक बली और असन्तुष्ट लुटेरा है क्योंकि कुछ लेता नहीं, यह जताकर भी सब कुछ ले जाता है; हमसे संसार और संसार से हमको ले लिये बिना इसे सन्तोष नहीं होता। यह सदा उड़ा करता है पर उड़ने में हर एक वस्तु को पकड़ लेता है और यद्यपि यह मृत्यु का वर्तमान मित्र है पर भविष्य में यह उसका पराजय करेगा। समय आशा का लालन-पालन करनेवाला पर लोभ

की समाधि है। यह मूर्ख लोगों का बहुत कड़ा शिक्षक पर पण्डितों का हितैषी सलाहकार है क्योंकि मूर्खों को जिस-जिस से भय होता है उस-उस से ही यह उन्हें मिला देता है और पण्डित जो कुछ चाहते हैं वह उन्हें दे देता है, पर यह ऐसी वाणी से सूचना देता है कि जिसे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी बहुत समय तक नहीं मानते, और उपयुक्त समय चला जाने पर मूर्ख उस पर विश्वास करते हैं। बुद्धि इसके आगे चलती है, अवसर इसके साथ चलता है और परिताप इसके पीछे चलता है। जो इससे मित्रता कर ले उसे अपने शत्रुओं से नहीं डरना चाहिए पर जो इससे शत्रुता करे उसे अपने मित्रों से कुछ आशा नहीं रखनी चाहिए।

## यात्री

जो ज्ञान केवल देशाटन करने से मिल सकता हो वह बहुधा महँगा गिना जाता है। जैसे व्यापारी सामान ख़रीदकर लाता है वैसे ही यात्री ज्ञान लाता है, जिसका घर बैठकर आनन्द करनेवाले उपयोग करते हैं। जो मनुष्य अपने घर पर कुटुम्बियों के साथ रहे तथा संसार की साधारण बातें जानता हो वह परदेश की प्रजा के रस्म-रिवाज के विषय में बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकता है; लेकिन इसके विपरीत जो मनुष्य जन्म भर यात्रा करता सब देशों की सैर करे पर बुद्धि से काम न ले वह संसार की आवश्यक बातों में भी अज्ञान रह सकता है।

# सत्य

सत्य का मन्दिर वास्तव में स्फटिक से बनाया गया है पर उसके बनानेवाले मनुष्य थे इसलिए उसमें जो मसाला लगा है वह अच्छा नहीं है। यह बड़े खेद की बात है कि सत्य यदि किसी पक्ष, मत या पन्थ के साथ मिला हुआ न हो तो वह बहुत कम हमारा आकर्षण करता है और उसका कुछ आदर नहीं होता; अमिश्रित और शुद्ध सत्य खान से निकले हुए निर्दोष सुवर्ण के समान प्रचार के अयोग्य होता है। सर वाल्टर रेले ने कहा है कि जो मनुष्य सत्य के अत्यन्त निकट चलता हो उसे इस बात की सँभाल रखनी चाहिए कि कहीं वह उसका सर्वनाश न कर दे; लेकिन उसे सत्य से कुछ भय नहीं होता पर उसके कपटी मित्रों से अवश्य होता है; इस-लिए जो आदमी लोगों की प्रसन्नता या अप्रसन्नता पर कुछ ध्यान न दे केवल वही अपने समय का ऐसा इतिहास लिखने के लिए समर्थ हो सकता है जो भविष्य के लिए संग्रह करके रक्खा जा सके।

जो मनुष्य सत्यता के साथ सच्चे हृदय से विवाह किया चाहता हो, उसे उससे किसी दान-दहेज की आशा नहीं रखनी चाहिए और वह जैसी हो वैसी ही ग्रहण कर लेनी चाहिए। विवाह-नियम ऐसा होना चाहिए कि पति सत्यता पर अस्खलित प्रेम रक्खे, उसका पालन करे, उसकी आज्ञा

माने और इन बातों का पालन केवल मरण-पर्यन्त ही नहीं किन्तु मृत्यु के अनन्तर भी करे। क्योंकि यह बन्धन सिर्फ़ मृत्यु से तो क्या पर समय से भी नहीं तोड़ा जा सकता है। इसलिए सत्य-उपासक सब वर्तमान वस्तुओं से परे है। ऐसे लोभ-हीन और निष्कपट मनुष्य पर दुराग्रही मनुष्य आक्रमण करते हैं क्योंकि उसमें कोई दुराग्रह नहीं होता; जो मनुष्य रिश्वत देना चाहते होंगे उन्हें वह अच्छा नहीं लगेगा क्योंकि अकेले उसे ही वे नहीं ख़रीद सकते; और सब पक्षवाले उसकी निन्दा करेंगे, क्योंकि वह किसी पक्ष का अवलम्बन नहीं करता।

यह एक पुरानी कहावत है कि सत्य का निवास कूप में है। पर यह दुर्भाग्य की बात है कि बहुत से मनुष्य उसे बाहर निकालने के लिए इतनी लम्बी ज़ञ्जीर काम में लाते हैं कि उसको पूरा करने में उसका जन्म बीत जाता है और जो जीते-जी उसे पूर्ण कर सकें तो बहुधा पिछले अङ्कड़े तैयार होने के पहले ही सिरे के अङ्कड़ों में काई लग जाती है। कितने ही मनुष्य ऐसे हैं जो या तो ज़ञ्जीर के बिना ही या बहुत छोटी ज़ञ्जीर से उसे कुएँ में से निकालना चाहते हैं; ये दोनों अपना अभीष्ट सिद्ध नहीं कर सकते। इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य ऐसी ज़ञ्जीर तैयार करेगा जिसमें एक भी अङ्कड़ा कम या ज़्यादा न हो; और पहले अङ्कड़े पर वह 'शास्त्र का पार नहीं' और अन्तिम पर 'आयु अल्प और विघ्न अनेक हैं' यह लिखेगा।

## प्रजा-पीड़क

बन्दीगृह में रह-रहकर जो बड़ी-बड़ी युक्तियाँ बनाई और सिद्ध की गई हैं तथा बड़े-बड़े ग्रन्थ आदि से अन्त तक लिखे गये हैं उनसे केवल यही सिद्ध होता है कि प्रजा-पीड़क अभी तक मनुष्य के मन को क़ैद करने की बेड़ियों का अनुसन्धान नहीं कर सके हैं।

## ऐकमत्य

ऐकमत्य, यदि केवल उसका ही विचार किया जाय तो, न चाहने योग्य है और न कुछ लाभकारी है परन्तु दूसरी बातों के सम्बन्ध में उसका विचार करने से वह शायद चाहने योग्य और लाभकारी भी हो जाय। यदि एक बुरी बात में सब मनुष्य एकमत हों तो ऐसे प्रसङ्ग में ऐकमत्य हानिकारक है। सत्य ज्ञान-मन्दिर के गुप्त स्थान में छिपा रहता है और शङ्का वह देहली है जिसके द्वारा हम वहाँ पहुँचते हैं। लूथर* ने पोप के अस्खलित होने के विषय में शङ्का आरम्भ की और बड़े भारी सुधार का मुख्य नायक अपने को बना उसका समाधान किया।

---

* मार्टिन लूथर ने रोमन कैथोलिक धर्म पर आक्षेप किया और यह प्रसिद्ध किया कि पोप अस्खलनशील नहीं है। फिर उसने और रीतियों पर भी आक्षेप किया और धर्म में सुधार किया जिससे जर्मनी, हालैंड, इँगलैंड और स्काटलैंड से पोप का प्रभुत्व जाता रहा।

कोपर्निकस्* और न्यूटन ने अपनी नई सङ्कलना की सचाई प्रतिपादन करने के पहले औरों की झूठी सङ्कलनाओं की सचाई में शङ्का की। कोलम्बस्† नवीन संसार का अनुसन्धान करने के पहले प्राचीन संसार के मत से भिन्न था और गेलीलिओ‡ का पार्थिव शरीर भी आकाश के पिण्डों के भ्रमण की सूचना देने के कारण कारागृह में बन्द किया गया था। यथार्थ में देखा जाय तो हमें जो-जो ज्ञान प्राप्त हुआ वह एकमत होनेवालों से नहीं बल्कि मतभेदवालों से हुआ है; और जिन्होंने और सबको अपने मत में रखकर अपना कार्य समाप्त किया उन्होंने केवल अपने ही मत से विचार आरम्भ किया। क्योंकि जो मनुष्य किसी समुदाय का नायक है उसे समुदाय से अलग होकर ही अवश्य चलना पड़ेगा। रुधिर-सञ्चालन का आविष्कर्ता प्रख्यात हार्वी जो उस समय के सब डाक्टरों से भिन्न न होता तो इस समय के सब डाक्टर उसकी बात को स्वीकार

---

* कोपर्निकस् एक गणितज्ञ था जिसने पृथ्वी के ब्रह्माण्ड का केन्द्र होने पर शङ्का की और यह प्रमाणित किया कि पृथ्वी भी उन ग्रहों में से एक है जो सूर्य्य के चारों ओर फिरते हैं।

† कोलम्बस् के समय में यह विचार प्रचलित था कि पृथ्वी चपटी है लेकिन कोलम्बस् ने उसे गोल माना।

‡ गेलीलिओ के ज़माने में यह माना जाता था कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर फिरता है पर उसने यह बताया कि पृथ्वी सूर्य के आसपास फिरती है। उसने ही दूरवीक्षण-यन्त्र का आविष्कार किया था।

न करते। इन सब विचारों से हमें सिर्फ़ यह शिक्षा मिलनी चाहिए कि मतान्तर के कारण किसी को सताना अविकल ज्ञान के विरुद्ध है। यह बात यथार्थ में शोकजनक है कि ऐसे लोगों के अपरिमित उत्साह और आग्रह से कितना दुःख पैदा हुआ है जो मनुष्य-जाति उनके समान विचार करे यह चाहने की अपेक्षा वह बिलकुल विचार ही न करे यह चाहते। पञ्चम चार्ल्स* जब राज छोड़ सेंट जूस्ट के मठ में रहा तब यन्त्रों की युक्तियों में और मुख्य करके घड़ी बनाने में अपना समय बिता आनन्द करता था। एक दिन वह बोल उठा कि "वाह! मैं कैसा असाधारण मूर्ख हूँ कि मैंने इतने धन और मनुष्यों का वृथा नाश केवल ऐसे असम्भव प्रयत्न के लिए किया कि सब मनुष्य एक भाँति विचार करें जब मैं थोड़ी सी जेब-घड़ियों में भी एक सा समय नहीं रख सकता!"

## परतन्त्रता

कुराज्य की व्यवस्था प्रजा को उसका स्वत्व न देने से आरम्भ होती है और स्वत्व के यथार्थ गौरव को समझने की शक्ति के

---

* पंचम चार्ल्स स्पेन, इटली, पोर्चुगाल, हालेंड, बेलजियम, बरगंडी और आस्ट्रिया का राजा था। उसने इस बात की कोशिश की थी कि इन सब देशों की शासन-प्रणाली तथा रीति-रस्म समान हों पर इसमें उसे सफलता नहीं हुई। इसलिए वह राज्य अपने लड़कों को बाँट वन में चला गया था।

भी नाश में समाप्त होती है। हीन स्थिति में पहुँची हुई प्रजा अपनी स्थिति से भले ही सन्तुष्ट रहे पर किसी फ्रेंकलिन* या हावर्ड† का हृदय उसे ऐसी स्थिति में देख कभी सन्तुष्ट नहीं रह सकता। दार्शनिक जानते हैं कि आशातीत परतन्त्रता का लक्षण प्रजा की ऐसी ही उदासीनता है, जैसे वैद्य जानते

---

* फ्रेंकलिन अमेरिका का एक उत्तम लेखक और राजनीति-विशारद था। उसका जन्म १७ जनवरी, सन् १७०६ को बोस्टन में हुआ। उसका एक भाई किसी छापेखाने में नौकर था जिसके पास उसने सब से पहले काम सीखा। फिर १७ वर्ष के वय में वह फ़िलेडल्फ़िया चला गया; वहाँ एक प्रेस में कंपोज़िटर हो गया। इसके बाद उसने एक मनुष्य के साझे में अपना छापाख़ाना खोल लिया जिसमें उसके साझी ने ही सब रुपया लगाया। उन्होंने बड़ी योग्यता से एक समाचार-पत्र निकाला जिससे फ्रेंकलिन का बड़ा नाम हुआ। इस पर राज्य में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई और वह कई उच्च पदों पर रहा। १७ एप्रिल, सन् १७९० को उसकी मृत्यु हुई।

† हावर्ड एक लोकहितैषी अँगरेज़ था जिसका जन्म सन् १७२६ में हुआ। जब उसका वय केवल १९ वर्ष का था तब उसका पिता बहुत सा धन छोड़ मर गया। सन् १७५६ में उसने लिस्बन के भूकंप के परिणाम को देखने के लिए वहाँ की जल-यात्रा की। जिस जहाज़ में वह था वह पकड़ लिया गया और हावर्ड फ्रांस के एक कारागार में बन्द किया गया। वहाँ से अपने मुक्त होने के पहले जो कष्ट उसने वहाँ सहन किये और देखे उनसे उनका विशेष अनुसन्धान करने की उसकी इच्छा हुई। फिर उसने बन्दीगृहों को देख-भाल उनमें बहुत सुधार कराया। सन् १७९० में उसकी मृत्यु हुई।

हैं कि रोगी के मरण-समय का लक्षण उसकी पीड़ा का बन्द होना है।

## क्षमा करने योग्य अपराध

जो महापुरुषों से कुछ छोटी-छोटी भूलें हो गई हों तो उन्हें क्षमा कर देना चाहिए। जो कदाचित् किसी बड़े आदमी से कुछ भूल हो जाय तो उस पर जो पढ़े-लिखे मूर्ख विजय-ध्वनि करते हैं उसकी अपेक्षा और किसी बात से इतनी व्याकुलता नहीं होती। पर तुम्हें याद रखना चाहिए कि जैसे सूर्य में धब्बे देखने के लिए काजल पड़े हुए शीशे की आवश्यकता होती है वैसे ही बड़े आदमियों में दोष देखने के लिए ईर्ष्या या दुराग्रह हैं; और बहुधा छोटी-छोटी बातों को ऐसे दुराग्रही मनुष्य बढ़ा देते हैं; क्योंकि संकीर्ण-हृदय मनुष्यों की बुद्धि इतनी ही होती है और जो वह भी उनके पास से जाती रहे तो उनके पास कुछ भी न रहे।

## कहीं-कहीं बुद्धि की चपलता की उपयोगिता

कितने ही ऐसे मनुष्य हैं जिनका आचरण ऊपर से देखने-वालों को विरुद्ध, परिवर्तन-शील और असङ्गत दीखता है, तो भी ऐसे लोग जो करना चाहते हैं उसका रहस्य जाननेवाले समझते हैं कि वे जैसे दीखते हैं उससे बिलकुल उलटे हैं, क्योंकि जैसे कुत्ता ख़रगोश के पीछे जहाँ वह जाय वहाँ दौड़ता

फिरता है उसी भाँति ऐसे मनुष्य भी चाहे जैसे परिवर्तन में भी अपने उद्देश को नहीं छोड़ते। हम जानते हैं कि हवा की चक्की पवन के हर एक फेर के साथ फिरती है और एक ही दिन में दस स्थान बदलती है पर केवल एक कार्य साधने के लिए ही दिन-रात फिरा करती है।

## सद्गुण और दुर्गुण

जैसा लोग समझते हैं उसकी अपेक्षा उत्तम मनुष्य अधिक सुखी और नीच अधिक दुखी रहते हैं क्योंकि सद्गुणों का लाभ और दुर्गुणों की हानि प्राय: मरने के पहले ही भोगनी पड़ती है ; क्योंकि सद्गुण की अपेक्षा दुर्गुण के आत्म-समर्पण करनेवाले अधिक हैं; और बहुधा मनुष्य दुर्गुणों से बचने के यत्न करने की अपेक्षा, उनमें लिप्त होने के कारण अधिक कष्ट भोगते हैं। यदि यह मान भी लिया जाय कि दुर्गुणी मनुष्य उस शारीरिक पीड़ा से बच जाते हैं जो अधिक विषय-भोग और पाप के अन्त में उत्पन्न होती है तो भी आत्मा के शान्त और सद्गुण-रूपी सूर्य से प्रकाशित भलेमानस के हृदय में दुर्गुण सद्गुण की बराबरी नहीं कर सकता। एक नामी धर्मोपदेशक ने कहा है कि "हमारे विचार, समुद्र के जल के समान, जब आकाश की ओर जाते हैं तब उनमें कटुता और खारीपन नहीं रहते और वे रमणीय करुणारूप हो मधुर होकर मनुष्य-जाति पर प्रेम और दया की वृष्टि करते हैं।"

## युद्ध

युद्ध एक ऐसा खेल है कि जिसमें राजाओं को कदाचित् ही सफलता होती है; फिर साधारण मनुष्यों का तो कहना ही क्या है ? रक्षित होना भी आक्रमण किये जाने के समान ही दुःखदायी है; और कृषिकारों को बहुधा रक्षक की ढाल आक्रमण करनेवाले की तलवार की अपेक्षा कम हानिकारक नहीं हुई। केवल मतान्तर के लिए युद्ध करना जितना हानिकारक है उतना ही अपमानजनक है क्योंकि यह तो न्याय को छोड़ बल को, और विवाद को छोड़ तोप को, काम में लाने के समान है। ऐसे युद्ध के उत्तेजकों ने यह समझ रक्खा है कि जो लड़ते-भिड़ते नहीं ऐसे मनुष्य जन्म लेकर वृथा पृथ्वी का बोझ बढ़ाते हैं। पर हमें आशा है कि यथार्थ ज्ञान, जो शुद्ध धर्म और विमल बुद्धि से उत्पन्न होता है, धीरे-धीरे संसार की व्यवस्था सुधारेगा।

## युद्ध और योद्धा

वारबर्टन ने लिखा है कि ऐसा कोई देश-विजयी न्याय-प्रवर्तक या धर्म-संस्थापक कभी नहीं हुआ जिसमें उत्साह और नीति दोनों न हों—उत्साह है लोगों के चित्त पर असर पैदा करने के लिए और नीति है उत्साह को उत्तम मार्ग पर लाने के लिए। मुझे इस प्रसङ्ग में केवल युद्ध और योद्धाओं के विषय में ही

लिखना है इसलिए पहले से ही मैं यह कहना उचित समझता हूँ कि ऐसे मनुष्यों में उत्साह की अपेक्षा नीति अधिक देखी गई है। यह मैं स्वीकार करता हूँ कि किसी-किसी विशेष प्रकृति के असाधारण मनुष्य, जैसे क्रामवेल या मुहम्मद, में उक्त विषम मिश्रण अवश्य होता है। पर ऐसे विरुद्ध पदार्थ के मिश्रण को तेल और सिरके के मिश्रण के समान एक सा रखने के लिए बार-बार हिलाने की आवश्यकता होती है। आलस्य के समय तो इसे मिश्रण कहते ही नहीं; क्योंकि नीति उत्साह को दबा लेती है। इसके विपरीत तृतीय विलियम तथा वाशिंगटन में वारबर्टन के कहने से भी अधिक समान गुणवाले तीन और ही पदार्थ मिले थे—साहस, गम्भीरता और सदुद्योग। पर इन मनुष्यों में उत्साह सबसे कम था। ह्वाइट-रचित "इंस्टीट्यूट्स आफ़ टेमर लेन" नामक पुस्तक देखने से मालूम होगा कि तैमूर के सिवा और कोई ऐसा पुरुष नहीं हुआ जो उत्साह के साथ सिर्फ़ कुछ सम्बन्ध ही न रक्खे पर उसका तिरस्कार भी करता हो। इसकी उन्नति का आधार केवल साधनों की साध्यों के साथ और कारणों की कार्यों के साथ योजना थी। इसमें ज़रा भी उत्साह नहीं था और दूसरों के उत्साह का भी यह तिरस्कार करता था तिस पर भी यह पहले लँगड़ा ऊँट हाँकनेवाला होकर फिर २६ परगनों का राजा हुआ। इसलिए वारबर्टन के समान लेखकों के जो-जो वचन हों उनको वेदवाक्य मानना ज़रूरी नहीं है।

## दुष्टता

पृथ्वी फिरती है इस बात का प्रमाण हमें पृथ्वी के किसी स्थल की परीक्षा करने से नहीं मिलता; पर पृथ्वी के बाहर के किसी अन्तरिक्ष स्थान से मिल सकता है। ऐसे ही पाप में आसक्त मनुष्य वैसे ही और मनुष्यों के साथ अपनी समानता करने से नहीं समझ सकते कि वे पाप में कितने लिप्त हैं। यह जानना हो तो उन्हें किसी उज्ज्वल महानुभाव या महात्मा पर, जो उनसे दूर हो, दृष्टिपात करना चाहिए। पासकल ने लिखा है कि जब सब चीज़ें चलती हैं तब कुछ नहीं चलता दीखता है जैसे कि चलते हुए जहाज़ में। उसी भाँति जब सब पाप की ओर दौड़ते हैं तब कोई पाप करता नहीं दीखता। इनमें से जो पहले पाप करना छोड़े वह देख सकता है कि उसके साथी कितने भयानक मार्ग में पड़े हैं।

## ज्ञान और अज्ञान

अज्ञानी ज्ञानियों को केवल उस शक्ति के कारण अच्छा समझते हैं जो किसी को नहीं दी गई है। पर इसका कारण केवल यही है कि जो शक्ति सबको दी गई है उसका उपयोग ज्ञानी भली भाँति कर सकते हैं। एक दर्वेश की छोटी सी कहानी का इस सिद्धान्त के समर्थन में कहना अनुचित न होगा। एक दर्वेश जङ्गल में अकेला यात्रा करता था तब उसे अकस्मात् दो

व्यापारी मिले। उसने व्यापारियों से कहा—"क्या तुम्हारा ऊँट खो गया है?" उन्होंने उत्तर दिया कि "हाँ, यथार्थ में खो गया है।" दर्वेश ने कहा कि "कहीं वह दक्षिण नेत्र से काना और बायें चरण से लँगड़ा तो नहीं है?" व्यापारियों ने कहा कि "हाँ, है।" दर्वेश ने कहा कि "उसका आगे का दाँत तो नहीं गिर पड़ा है?" व्यापारियों ने कहा—"हाँ।" दर्वेश ने कहा—"क्या उसके एक ओर शहद और दूसरी ओर गेहूँ लदे थे?" व्यापारियों ने कहा कि "हाँ, यथार्थ में लदे थे; और चूँकि तुमने हाल में उसे देखा है और भली भाँति याद रक्खा है इसलिए कृपा कर हमें वहाँ ले चलो।" दर्वेश ने कहा—"महाशयो! मैंने न तो कभी तुम्हारा ऊँट देखा और न तुम्हारे सिवा और किसी से उसकी बाबत कुछ सुना।" व्यापारियों ने कहा—"वाह! आपने ख़ूब कहा! पर उस पर जो रत्न थे वे कहाँ हैं?" दर्वेश ने कहा कि "मैंने न तो तुम्हारा ऊँट देखा न रत्न देखे।" इस पर दोनों व्यापारी उसे पकड़कर क़ाज़ी के पास ले गये पर वहाँ देख-भाल करने पर उसके पास कुछ नहीं निकला और उस पर झूठ बोलने या चोरी का अपराध आरोपित करने का कोई कारण नहीं मिला। तब वे उस पर जादूगर होने की शङ्का करने लगे। उस समय दर्वेश ने बहुत शान्तिपूर्वक न्यायालय में कहा कि "तुम्हारे आश्चर्य से मुझे बड़ा आनन्द हुआ और मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरे ऊपर तुम्हारा सन्देह

होने के कितने ही कारण हैं। लेकिन मैं बहुत समय से एकान्त में रहता आया हूँ और निर्जन वन में भी देख-भाल करने के लिए मुझे बहुत से विषय मिल जाते हैं। जिस मार्ग से मैं आता था उस पर एक ऊँट के पैर के चिह्न देखकर मैंने समझा कि वह अपने मालिक से अलग भाग आया है क्योंकि वहाँ मनुष्य के पाद-न्यास का एक भी चिह्न नहीं था। उसने मार्ग के एक ओर की ही जड़ी-बूटी चरी थीं इससे मैंने उसे काना जाना; मार्ग के एक ओर ही पाद-न्यास ठीक-ठीक दीखते थे और एक ओर ठीक-ठीक नहीं उभड़े थे, इससे मैंने उसके लँगड़े होने का अनुमान किया; और जो रूख चर लिये थे उनके आगे का कुछ भाग बिना कटा रह जाता था इससे मैंने सोचा कि उसका आगे का दाँत टूट गया है; और उस पर लदे हुए माल का पता तो मुझे ऐसे लगा कि मार्ग के एक ओर तो चींटियों का झुण्ड बहुत व्यग्र था जिससे मैंने गेहूँ जाने और दूसरी ओर मक्खियों का झुण्ड था जिससे मैंने शहद जाना।"

## बुद्धि-विलास

मन अथवा शरीर का तीक्ष्ण बुद्धि के अतिरिक्त ऐसा एक भी गुण नहीं है कि जो तत्काल और एकदम चित्त का आकर्षण कर सकता हो। एक रसिक लेखक ने लिखा है कि नर्म-शील बुद्धि को परकीया के समान रखना बहुत अच्छा है लेकिन

स्वकीया बनाने के लिए तो विचार-शक्ति को ही पसन्द करना चाहिए। जो मनुष्य विवेक को छोड़ परिहास-शील बुद्धि के अधीन हो जाता है वह सूर्य की स्थिर किरणों के प्रकाश को छोड़कर बिजली की चमक के आश्रय से यात्रा करनेवाले के समान बड़ी गड़बड़ में पड़ जाता है। तीक्ष्ण बुद्धि उन थोड़ी सी वस्तुओं में से एक है कि जिनका लक्षण कहने की अपेक्षा प्रशंसा अधिक बार करनी पड़ती है। एक धर्माध्यक्ष ने अपने पुजारी से कहा कि "बुद्धि क्या होती है?" उसने उत्तर दिया कि "ब—गाँव के धर्मोपदेशक का अधिकार ख़ाली हुआ है उसे मुझे दे दो, इसे ही बुद्धि कहते हैं।" धर्माध्यक्ष ने कहा कि "साबित करो तो वह तुम्हें दे दिया जाय।" पुजारी ने उत्तर दिया कि "यह उत्तम वस्तु का उत्तम मनुष्य को देना है।" नर्म-शील बुद्धि के एक चमत्कार से सेंट जेम्स के गिरजे में राज्य के पुजारियों का भोज कुछ दिन के लिए बन्द होने से बच गया था। चार्ल्स राजा ने अपने पादरियों के साथ स्वयं भोजन करने का एक दिन निश्चय किया था और यह समझा था कि यह भोज बन्द करने का सबसे कम अरुचिकर तरीक़ा है। डाक्टर साउथ को आशीर्वाद उच्चारण करना था, और जब राजा पादरियों को भोज देता था तब आशीर्वाद उच्चारण करने का प्रचलित नियम यह था कि "ईश्वर राजा की रक्षा करे और भोजन को आशिष दे।" इस चतुर पादरी ने इस नियम में परिवर्त्तन करके कहा कि "ईश्वर राजा को आशिष दे और

भोजन की रक्षा करे।" सुनते ही राजा बोल उठा—"ज़रूर, उसकी रक्षा ज़रूर होगी।"

डाक्टर जान्सन* ने कहा है कि "बुद्धि से एक सी वस्तुएँ पहचानी जाती हैं और विवेक से विजातीय वस्तुओं में भेद जाना जाता है। इन दोनों के कार्य इतने विरुद्ध हैं कि उनका एक मनुष्य में न होना स्वाभाविक है।" डा० जान्सन ने अपनी लेखनी से जो कुछ लिखा उससे यह सिद्धान्त इतना ठीक प्रतीत होता

---

* डाक्टर जान्सन इँगलेंड का एक अत्यन्त प्रसिद्ध कवि हो गया है। वह एक पुस्तक-विक्रेता का पुत्र था। सन् १७०६ में लिचफ़ील्ड में उसका जन्म हुआ। सन् १७२८ में वह पेमब्रुक कालेज, आक्सफ़ोर्ड, में भरती हो गया पर तीन वर्ष के अनन्तर निर्धनता के कारण बी० ए० पास किये बिना ही उसे वह कालेज छोड़ना पड़ा। इसके बाद उसने एक किताब-फ़रोश के यहाँ नौकरी कर ली। सन् १७३६ में उसने एक बज़ाज़ की विधवा से विवाह कर लिया जो अवस्था में उससे बहुत बड़ी थी और उसके रुपये से एक स्कूल खोला जो बहुत दिन नहीं चला। सन् १७३७ में वह लंडन आया और वहाँ उसने साहित्य-सेवा आरम्भ की। सन् १७४७ से ८ वर्ष तक उसका समय विशेष कर कोष बनाने में व्यतीत हुआ जो सन् १७५५ में छपकर तैयार हुआ। इससे उसका नाम तो बड़ा हुआ पर लाभ कुछ नहीं हुआ। सन् १७६२ तक वह बहुत निर्धन रहा पर फिर उसे तीन सौ पौंड वार्षिक की पेंशन मिली। इसके बाद वह आराम से रहने लगा और विशेषकर अपने सम-कालीन विद्वानों के पास समय बिताया करता था। सन् १७७५ में उसे आक्सफ़ोर्ड विश्व-विद्यालय से डी० सी० एल० की उपाधि मिली और सन् १७८४ में वह लंडन में मृत्यु को प्राप्त हुआ।

है कि यह सत्य ही समझा जाता है पर मुझे ऐसा मालूम होता है कि वह इनके निर्णय में एक बात भूल गया, कि विजातीय वस्तुओं के पहचानने में हम जिस शक्ति से काम लेते हैं उससे ही समानता पहचानने में लेते हैं। जैसे एक चित्र की समानता की परीक्षा करने पर कोई कहे कि और बहुत सी बातों में तो यह नहीं मिलता पर एक बात में मिलता है इसलिए यह चित्र बिलकुल एक सा है तो यह बात बिलकुल ग़लत है। लेकिन ऐसा हो नहीं सकता क्योंकि जिस शक्ति से हम एक अवयव की समानता समझ सकते हैं उसी से औरों का वैधर्म्य जान सकते हैं। परन्तु डा० जान्सन का कहना ठीक न होने का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि एक दूसरे से भिन्न वस्तु ढूँढ़ने में जिस बुद्धि की आवश्यकता होती है उसकी ही एक सी वस्तु ढूँढ़ने में होती है। जो मिस्टर शेरीडन के सङ्ग-साथ में रहे हैं वे इसके अनेक उदाहरण बता सकेंगे। मुझे ऐसा सौभाग्य केवल एक बार हुआ था; जब वह ग्रह के समान प्रकाश करता था तब मैं भी वहाँ एक उपग्रह के समान था। अपने आकर्षण के प्रभाव से उसने हमको प्रातःकाल तक नहीं छोड़ा और जब उसके आनन्द-पूर्ण मुख और नर्मालाप की अनुपम शक्ति का मैं विचार करता हूँ तब मुझे भास होता है कि वह तीक्ष्ण बुद्धि के सिंहासन को सूर्य के रथ में उसके सारथी की अपेक्षा अधिक तेज से प्रकाशित करता था। पर अपने प्रकृत विषय के दृष्टान्त में मैं उनमें यही भेद बताना चाहता हूँ कि सूर्य का

सारथी तो अपने अभाव से दिन को रात्रि कर देता था पर शेरीडन अपने वाङ्-माधुर्य के प्रकाश से, तीक्ष्ण बुद्धि के चमत्कार से और नर्म-भाषण में सफल-प्रयत्न होने से रात्रि का दिन कर देता था।

## सांसारिक चातुर्य

जिस मनुष्य को संसार का ज्ञान है वह जो कुछ जानता हो सिर्फ़ उसका ही सबसे अधिक उपयोग नहीं करेगा पर जो नहीं जानता होगा उसका भी करेगा और मूर्ख अपना पाण्डित्य दिखाने के प्रयास से जितनी प्रतिष्ठा प्राप्त करे उससे अधिक वह अपना अज्ञान छिपाने की तात्कालिक बुद्धि से प्राप्त करेगा। स्काटलैंड में 'क्युरेटर' शब्द का उच्चारण 'क्युराटर' करने का रिवाज पड़ गया है। लार्ड मैन्सफ़ील्ड ने कचहरी में आये हुए वहाँ के एक बैरिस्टर से अँगरेज़ी उच्चारण की भूल सुधारने के लिए कहा कि "क्युरेटर कहिए, महाशय।" बैरिस्टर ने तुरन्त उत्तर दिया कि "आप जैसे कुशल वक्ता के मुख से भूल सुधारी जाने के कारण मैं अपना बड़ा सौभाग्य समझता हूँ।"

## यौवन और वृद्धावस्था

युवक समझते हैं कि हमारी मूर्खता को वृद्ध लोग सुख समझते हैं; और वृद्ध समझते हैं कि युवक हमारी गम्भीरता

को बुद्धिमानी समझते हैं। पर दोनों आपस के विचार में भूल करते हैं। यद्यपि भूल दोनों करते हैं पर मैं उसे सुधारने का प्रयत्न नहीं करूँगा क्योंकि ऐसी पारस्परिक भूल से दोनों को सन्तोष होता है। एक अति चपल फ़्रांस-निवासी सज्जन के समान मैं वृद्धों पर इतना अधिक कटाक्ष नहीं करता कि उन्हें अच्छी शिक्षा देने का जो अभ्यास पड़ गया है उसका यह कारण है कि वे स्वयं बुरा दृष्टान्त दिखाने को समर्थ नहीं हैं; पर ख़ास उनके और दूसरों के लाभ के लिए भी मैं वृद्धों को चिढ़ने के बदले प्रसन्न रहने की सलाह देता हूँ क्योंकि गम्भीरता बुद्धिमानी का चिह्न होने की अपेक्षा बहुधा अज्ञान का चिह्न होता है। वृद्धों को प्रसन्नता अपने जीवन का बड़ा भारी अवलम्बन समझना चाहिए। प्रसन्नता के बिना वृद्धावस्था सूर्य के बिना ठण्डे देशों के शीतकाल के समान है; और प्रसन्नता की वृत्ति यौवन में ही हासिल करनी चाहिए, जिससे वृद्ध होने पर उसका उपयोग किया जा सके।

## ज्ञान-हीन उत्साह

जो कोई पक्ष अच्छा हो तो उसके अनुयायी के विचारहीन समर्थन से उसकी जितनी हानि होगी उतनी उसके प्रतिपक्षी के उग्र आक्षेप से न होगी। मतान्तरगामी जूलियन * ने अपने

* जूलियन रोम का एक सार्वभौम राजा था। उसने जहाँ तक हो सका क्रिश्चियन धर्म का ख़ूब विरोध किया और उसके विरुद्ध

वैमनस्य से क्रिश्चियन धर्म की जितनी हानि की उससे कहीं बढ़कर थिओडोरेट* आदि ने ज्ञान-हीन उत्साह और विवेक-हीन श्रद्धा से साधुओं के चमत्कार और कान्स्टेन्टाइन † के प्रकाशमय 'क्रास' के समर्थन से की।

समाप्त

---

एक पुस्तक भी लिखी है। वह एक योग्य शासक और प्रसिद्ध लेखक था।

* थिओडोरेट साइरस् का धर्माध्यक्ष ( Bishop ) था। उसका जन्म सन् ३०० ई० के लगभग हुआ था।

† कांस्टेन्टाइन रोम का एक सार्वभौम राजा था। उसने एक बार इटली पर चढ़ाई की तो वहाँ उसे आकाश में सूर्य्य के नीचे एक प्रदीप्त क्रूश (Cross) की आभा दिखाई दी। इसलिए क्रास के झण्डे के नीचे उसने अपने शत्रुओं को परास्त किया।